चेतन

[संक्षिप्त संस्करण]

उपेन्द्र नाथ अश्क

नोलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग-१

पाठकों के लिए एक संकेत

चेतन—पंजाबी निम्न-मध्य-वर्ग के एक युवक के जीवन-संघर्ष की एक झलक प्रस्तुत करता है। उपन्यास का नायक वही है। लेकिन क्या वास्तव में वही उपन्यास का नायक है? क्या बस्ती ग़ज़ाँ, जालन्धर, लाहौर और शिमला की तंग सीली गलियाँ, उनके ऊँचे-नीचे मकान और उनकी दीवारें (जो उनके बीच रहने वालों के भाग्य पर हर तरह से छा जाती हैं) या फिर इन बस्तियों का तंग-दस्त, तंग-दिल छोटे बाबू लोगों का दबा-घुटा वर्ग। (जिस पर हाय-हाय की फटकार बरसती रहती है) क्या इस उपन्यास का नायक नहीं?

चेतन इसी वर्ग का एक भावुक नमूना है। मध्य-वर्ग का यह व्यक्ति, यह चेतन, अपनी अकेली हस्ती को बहुत बड़ी चीज़ समझता है। यह बड़ी और क़ीमती चीज़, जब ठोस वास्तविकता की चट्टानों से टकराती है तो जतन से पाले हुए उसके सपने, [illegible]री विडम्बनाएँ और सुनहरे आदर्शवाद सिसकियाँ लेने लगते [illegible]। ठोकरों पर ठोकरें, ज़हर के घूँट पर घूँट, अन्दर-ही-अन्दर नफ़रत और गुस्से के उबाल पर उबाल और हार-थककर सजीले सपनों का ज़िन्दगी के बाट-बखरों से समझौता! और तब वह क़ीमती चीज़—वह उसकी अपनी अकेली हस्ती—बड़ी दर्दनाक बन जाती है। 'ईश्वर' और धर्म की तरह 'मनुष्यता,' 'संस्कृति,' 'कला,' 'प्रेम'—सब पूँजी के बाज़ार में ही अपनी असली क़ीमत रखते हैं, इस सच्चाई को चेतन बड़ी करारी चोटें खाकर सीखता [illegible]। चुपचाप अपने आँसू अन्दर पीकर वह सीखता चला जाता है।

वह पहले 'प्रकृति की गोद में अपनी चोटें छिपाता था तो अब कला की शरण में आ जाता है'—क्योंकि इसमें 'अपने कटु-वातावरण

से उसके पलायन' में 'आत्माभिव्यक्ति' का सुख है। तभी उसको कुछ मिलता है—कुछ!....किन्तु कला में भी उसको निष्कृति का असली मार्ग नहीं मिलता। क्योंकि वह अभी तक अपनी अकेली हस्ती को बड़ी चीज़ समझता है। हालाँकि वह पूरे सिलसिले की एक बड़ी कड़ी है। उससे अलग कुछ नहीं।

और यों केवल चेतन इस उपन्यास का नायक नहीं रह जाता। इसका असली नायक एक-के-पीछे एक लगा हुआ इन कड़ियों का वह सिलसिला है, जिनके बिना चेतन महज़ हवा में हाथ-पाँव मारने वाली एक छाया की तरह रह जाता है। इस सिलसिले के सबसे भरे-पूरे और सजीव व्यक्ति हैं—चेतन की माँ—सब्र और सन्तोष की देवी; उसका पिता—नशे और क्रूरता का देव; उसके भाई साहब—हर खरखशे से बचने के लिए छड़ी उठाकर बाहर निकल जाने वाले; कुन्ती—उसके प्यार की पहली चीज़ और उसके सबसे गहरे प्रेम को पाने वाली नीला और उस प्रेम की आड़—उसकी भोली-भाली बीवी चन्दा! और चेतन के सामाजिक जीवन को बनाने वाले अन्य दूसरे लोग—जैसे 'हुनर' साहब—गाँवों से आकर शहर में रंग जमाने वाले शायर; सरदार जगदीश सिंह—समाज के शरीफ़ लुटेरों के हाथ का खिलौना; विशेषकर कविराज रामदास—चेतन जैसे होनहार नवयुवकों का 'भला करने' और उनकी प्रतिभा को 'चूसने वाली' एक सबसे मोटी, सबसे चिकनी, चालाक और अच्छी-भली जोंक; फिर म्यूज़िक कॉलेज के डायरेक्टर और संगीत विशारद बनने के सपने लेने वाला ग़रीब दुर्गादास........!

फिर चेतन क्या है?

जिस पर्दे पर इन सब लोगों का फ़िल्म चलता है, चेतन वह पर्दा है। इस हंगामे से अलग वह सिर्फ़ एक छाया है, जो पाठक को कभी-

कभी उदास कर देती है—कभी-कभी बहुत उदास कर देती है, क्योंकि वह सारा फ़िल्म उसी पर अंकित हुआ है। लेखक ने स्वयं उसे एक कैनवस का स्थान और दर्जा दिया है।

और यों यह उपन्यास निम्न-मध्य-वर्ग के प्रतीक एक व्यक्ति के मानस-पट पर हर उस घटना-दुर्घटना, आशा-आकाशा, सफलता-असफलता, प्यार और चोट और उनकी ऊहापोह का उपन्यास है, जो निचले मध्य-वर्गीय जीवन का ताना-बाना कसते और ढीला करते हैं।

लेकिन इस वर्ग के प्रतीक—इस चेतन ने एक बुद्धिजीवी कलाकार की राह पकड़ ली है। यह राह असन्तोष की है, झल्लाहट की है, अपने और दुनिया भर के ऊपर क्रोध की है, इन झल्लाहटों—याने इनके कारण को—दूर करने की है। भागने की नहीं, अपने आपको—याने समाज को बदलने की है।

मध्य-वर्ग का पाठक इस उपन्यास मे अपने वर्ग का एक नमूना इतने नज़दीक से देख लेता है कि उस परिवार का अन्दर-बाहर, उनके पीछे और आगे का भरा-पूरा 'क्लोज-अप चित्र'—इतनी ओर से लिया गया उसकी आँखों के सामने आता है कि इसका जोड़ उसे हिन्दी के किसी अन्य उपन्यास मे कम—और शायद ही कहीं—मिलेगा।

रही उपन्यास की कला तो वह हमारे पुराने मन्दिरों की मूर्तिकला की याद दिलाती है, जिनकी दीवारें मूर्तियों से भरी होती हैं। एक बीच की बड़ी मूर्ति, फिर अगल-बगल दो-चार उससे छोटी, फिर इनके चार ओर इन मूर्तियों की कथा चित्रित करती हुई अनेक मूर्तियाँ....देवी देवता, उनके गण, उनके सेवक और उनकी लीलाएँ....**(शमशेर बहादुर सिंह की एक आलोचना के आधार पर)**

कोई उत्कृष्ट कलाकृति लेखक ही से नहीं, पाठक और आलोचक से भी श्रम और समझदारी की माँग करती है।

चेतन

उस जागरूक (अन्तर अथवा बाह्य) द्वन्द्व
के नाम
जो आज के निम्न-मध्य-वर्गीय का
भाग्य ही नहीं, सम्बल भी है।

१

तंग आकर आखिर एक दिन चेतन चुपचाप अपनी भावी पत्नी को देखने के लिए बस्ती ग़ज़ाँ—जालन्धर की एक निकटवर्ती बस्ती—की ओर चल पड़ा।

चुपचाप अपने मन में उस लड़की का चित्र बनाता (जिसकी चर्चा इतने दिनों से उसके घर में बराबर हो रही थी) चेतन चला जा रहा था। दिन ढल रहा था और बाज़ारों में छिड़काव के कारण मिट्टी की सोंधी-सोंधी महक फैल रही थी। चारों ओर खासी चहल-पहल थी। 'बाजियाँ वाला बाज़ार' में अपनी-अपनी दुकानों के तख़्तों पर बैठे दो कलावन्त क्लार्नेटों पर मुँह फुला-फुलाकर अपनी कला का परिचय दे रहे थे। कुछ आगे चौरस्ती अटारी में, गाकर किस्से बेचने वाले दो पंजाबी कवि तहमद लगाये, लट्ठे की खुले गले वाली क़मीज़ें पहने, उल्टी-सीधी पगड़ियाँ बाँधे, पान से ओठ लाल किये, अनपढ़ सास और पढ़ी-लिखी बहू की लड़ाई का किस्सा गा-गाकर सुना रहे थे और भीड़ जैसे अपनी ही कटी हुई पतंग को दूसरे के हाथों तार-तार होते देख, खुश होने वालों की भाँति, बड़े मज़े से सुन रही थी।

इन सबकी उपेक्षा करता हुआ चेतन चौक सूदाँ से होकर छत्ती गली में दाखिल हुआ और 'बड़ा बाज़ार' की भीड़ से किसी तरह बचता-बचाता बस्ती के अड्डे पर आकर एक ताँगे में बैठ गया। ताँगे में उस समय केवल दो ही सवारियाँ बैठी हुई थीं। चेतन चाहता था कि चार बजे से पहले ही बस्ती पहुँच जाय। ताँगे वाले से उसने पूछा, "क्यों भाई कितनी देर है?"

"बस एक सवारी और ले लूँ बाबू जी, चलता हूँ!"

तभी एक हाँपते-काँपते लाला दूर से आते दिखायी दिये। ताँगे वाले ने वहीं से हाँक लगायी, "ताँगा बस तैयार ही है सेठ जी!"

और सेठ जो आकर पिछली सीट पर चेतन के साथ लद गये।

तब ताँगे वाले ने फिर ज़ोर से पुकारा, "चलो भाई कोई एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को!"

चेतन का धैर्य जाता रहा। चिढ़कर उसने कहा, "अब चल भी! चार सवारियाँ तो हो गयीं, चालान करायेगा क्या?

हँसकर ताँगे वाला बोला, "आपका क्या जाता है बाबू जी, आगे बैठा लूँगा।"

चेतन का जी चाहा, ऐसे पाजी ताँगे वाले को छोड़कर दूसरे पर जा बैठे, पर अन्य कोई ताँगा तैयार न था और उसे जल्दी थी। बोला, "अच्छा ज़रा तेज़ी से चल, एक सवारी के पैसे मैं और दे दूँगा।"

प्रसन्न होकर ताँगे वाले ने दुआ दी, टिटकारी भरी और ताँगा हवा से बातें करने लगा।

—०—

२

बस्ती के बड़े महराबदार दरवाज़े के बाहर, नयी और पुरानी बस्ती के बीच बने चौक में आकर चेतन चुपचाप ताँगे से उतरा। उसने ताँगे वाले को पैसे दिये और लपककर बायीं तरफ़ नये हिस्से की एक गली की ओर बढ़ा। तेज़ चलता हुआ वह लड़कियों की पाठशाला के पास से गुज़रा और एक उड़ती हुई दृष्टि उसने उसके बन्द दरवाज़े पर भी डाली। गली के कोने वाले मकान के सामने जाकर वह रुका और उसने ज़ोर से आवाज़ दी, "मुल्कराज, मुल्कराज!"

एक छोटे क़द के पतले-दुबले लड़के ने किवाड़ खोले और जैसे हँसने की नक़ल उतारते हुए कहा, "आओ, आओ !"

चेतन अन्दर चला गया। "देखो," वह बैठते हुए बोला, "मुझे जल्दी है। एक मामले में तुम्हारी सहायता लेने आया हूँ। यहाँ तुम्हारी गली में जो स्कूल है, उसमें 'बेरी वाली गली' के पण्डित दीनबन्धु की लड़की पढ़ती है।"

"चन्दा ? हाँ-हाँ !"

"तुम उसे जानते हो ?"

'अरे मैं, बस्ती का रहने वाला, बस्ती की लड़कियों को न जानूँगा ? और फिर वे तो हमारे दूर के शरीक* होते हैं।"

"लड़की यहीं पढ़ती है न ?"

"हाँ-हाँ !"

"तो उठो। छुट्टी होने वाली होगी, मुझे पहचान नहीं, वह निकले तो ज़रा बता देना।"

उठते हुए एक अर्थ-भरी दृष्टि से चेतन की ओर देखकर मुल्कराज ने कहा, "क्यों ?" और अपने वही साधारण मैले कपड़े पहने, वह गली में आ गया। जब चेतन भी बाहर निकल आया तो मुल्कराज ने किवाड़ बन्द करके कुण्डी लगा दी।

गली के सामने चौक में, एक हाथ में छोटी-सी बाँसुरी थामे उस पर 'जग विच्च मैंनूँ कमलिए हीरे' की तर्ज़ का कोई गीत गाता और दूसरे से डुगडुगी बजाता हुआ, एक मदारी लोगों को इकट्ठा करने की कोशिश में था। उसके गिर्द तमाशाइयों की काफ़ी भीड़ जमा हो गयी थी।

मुल्कराज और चेतन उस गली से निकलकर प्रकट तमाशा देखने

---

*शरीक = ख़ानदानी

के उद्देश्य से भीड़ के पास आ खड़े हुए। गली की ओर देखते हुए मुल्कराज ने कहा, "अब छुट्टी होने ही वाली है।"

तभी छोटी-छोटी लड़कियाँ अपनी तख़तियाँ और बस्ते लिये पाठशाला के फाटक से निकलीं और पेड़ की डाली से भिन्न दिशाओं को उड़ जाने वाली चिड़ियों की तरह बिखर गयीं।

मुल्कराज बोला, "अब कुछ देर बाद ही ऊँचे दर्जों में भी छुट्टी होगी।"

चेतन ने जैसे यह बात नहीं सुनी, मुल्कराज के कन्धे पर हाथ रखते हुए उसने पूछा, "तो तुम्हें पसन्द नहीं!"

"पसन्द को तो कोई ऐसी बुरी वह नहीं, पर तुम्हें अपनी राय दे दी।" मुल्कराज ने कन्धे सिकोड़ते हुए कहा, "ढीली-ढाली, सुस्त, मझोले क़द की लड़की है। साधारण युवतियों की तरह मैंने उसे कभी हँसते बोलते, इठलाते-खेलते नहीं देखा। तुम ठहरे चालाक चुस्त! तुम्हारे साथ उसकी निभ सकेगी, कह नहीं सकता।"

"रंग कैसा है?" चेतन ने पूछा।

"गेहुँआ है, गोरा तुम उसे नहीं कह सकते।"

चेतन का उत्साह मन्द पड़ गया। उसने सोचा कि वहीं से वापस हो जाय। फिर ख़याल आया—माँ ने पूछा तो क्या जवाब दूँगा और स्वयं ही सोच लिया—कह दूँगा कुरूप है। लेकिन फिर अन्तर में किसी ने कहा—कौन जाने सुन्दर ही हो!

तभी मुल्कराज ने उसके बाज़ू को छूते हुए धीरे से कहा, "छुट्टी हो गयी है, बड़े दर्जों की लड़कियाँ आने लगी हैं।"

चेतन चौंककर मुड़ा और दोनों कुछ तिरछे होकर ऐसे खड़े हो गये कि न मालूम हो तमाशा देख रहे हैं, न मालूम हो बाज़ार में किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

एक बारह-तेरह वर्ष की सुन्दर लड़की, हाथ में किताबें था

मानों माप-मापकर क़दम रखती हुई, जैसे अपनी चाल की सुन्दरता से अभिज्ञ, तीन-चार सहेलियों के साथ जा रही थी। जाते-जाते उसने एक चंचल दृष्टि उधर भी डाली। चेतन का दिल धक-धक करने लगा और उसके गाल सुर्ख़ हो गये।

अनायास ही उसने मुल्कराज के बाज़ू को छुआ। इशारे से मुल्कराज ने बता दिया कि यह नहीं।

चेतन शरमिन्दा-सा चुप खड़ा हो गया, फिर उसने कहा—"मैं चलता हूँ।"

"अब तो वह आने ही वाली है।"

"नहीं मैं चलता हूँ !"

"पागल हो गये हो ?"

इस बीच मे छोटी-बड़ी लड़कियों की कई टोलियाँ निकल गयीं। पर चेतन कल्पना-ही-कल्पना मे उस चंचल किशोरी का चित्र देखने में इतना मस्त था कि शेष कौन आया कौन गया, इसकी उसे सुध न रही। तभी मुल्कराज ने उसके कन्धे को छुआ और जैसे अपने ही कन्धे से बात करते हुए धीरे से कहा, "वह आ रही है।"

उत्सुकता से चेतन ने देखा—एक मझले क़द की, कुछ मोटी-सी, गेहुँए रंग की लड़की जैसे घर के ही धुले, मटमैले कपड़े पहने, सीधी-साधी चाल से चली आ रही है। उसके दोनों हाथों पर स्लेट थी, जिस पर लगा हुआ किताबों का अम्बार जैसे उसके वक्ष का सहारा लिये पड़ा था। उसकी आँखें जैसे धरती में गड़ी जा रही थीं।

चुपचाप वह उसके पास से होकर गुज़र गयी।

मदारी का खेल ख़त्म हो गया था। भीड़ के ऊपर से पैसों की थाली वाला हाथ उसने चेतन के आगे कर दिया। लाचारी से एक 'उँहँ' करके चेतन वहाँ से चल पड़ा और ताँगे की पिछली सीट पर जा बैठा।

मुल्कराज ने सड़क पर ही से पूछा, "क्यों?"

चेतन जैसे विवशता से सिर्फ़ मुस्कराकर रह गया।

मुल्कराज बोला, मैंने तो कहा था कि शादी........"

चेतन ने बात काटकर कहा, "इस मोटी-मुटल्ली लड़की से? हरगिज़ नहीं!"

—o—

३

इसी वर्ष स्थानीय कॉलेज से चेतन ने बी० ए० की परीक्षा दी थी और उसकी माँ को उसके विवाह की चिन्ता लग गयी थी। पिता का अपना ही खर्च मुश्किल से चलता था। माँ ने जैसे-तैसे अब तक चेतन की शिक्षा का प्रबन्ध किया था। पर उसे लाहौर भेजना तो उसके बस के भी बाहर था। इन्हीं कारणों से अब माँ और चाहती थी कि उसका यह बेटा, जब इतना पढ़-लिख गया है तो उसका कर्तव्य है कि कहीं नौकरी करे, घर-बार बसाये और इस प्रकार शीघ्र ही नौकरी से रिटायर होने वाले अपने पिता और गृहस्थी के झंझटों से रिटायर होने वाली माँ को सहारा दे।

किन्तु चेतन की उच्चाकांक्षा इस तरह सीमित होने को तैयार न थी। कारागार के सीखचों में बन्द व्यक्ति के अरमानों की भाँति, वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। यद्यपि परीक्षा-फल निकलने से कई दिन पहले उसने अपने ही स्कूल में नौकरी कर ली थी तो भी वह चाहता था कि यदि बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाय तो जैसे भी हो, लाहौर जाकर एम० ए० या एल एल० बी० करने का प्रयत्न करे।

जब वह लाहौर में शिक्षा पाये हुए अपने मुहल्ले के मित्रों को देखता तो अपने आपको उनके सामने निरा स्कूल का छात्र पाता।

क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, क्या देशी, क्या विदेशी—सभी विषयों पर वे बड़ी सुगमता से अँग्रेज़ी में धारा-प्रवाह बोलते चले जाते थे। स्वयं उससे तो अँग्रेज़ी का एक शुद्ध वाक्य भी न बोला जाता था। इसलिए लाहौर भाग जाने को उसका मन छटपटाया करता था।

तभी एक दिन बस्ती से लक़वे की बीमारी से लाचार एक वृद्ध महाशय अपने हिलते हुए शरीर को डण्डे के सहारे थामे, एक दूसरे व्यक्ति के कन्धे पर हाथ रखे, उसके घर आये। बैठक के साथ जो कमरा था, चेतन उस समय उसी में बैठा कहानियों की एक पुस्तक पढ़ने का प्रयास कर रहा था। प्रयास इसलिए कि पढ़ने की अपेक्षा वह स्वयं कहानी लिखने को अधिक व्यग्र था, पुस्तक तो वह केवल प्रेरणा के लिए पढ़ रहा था।

मकान के बाहर, मुहल्ले के खुले चौक में, खड़े होकर उन वृद्ध के साथ आने वाले व्यक्ति ने चेतन के दादा का नाम लेकर आवाज़ दी।

चेतन के दादा भोजन करके बड़े इत्मीनान से ऊपर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उन अपरिचित व्यक्तियों को अपना नाम पुकारते सुन, हुक्का हाथ में ही लिये, वे नीचे बैठक में आ गये और उन्हें सादर बैठाकर आप भी बैठ गये। इसके बाद उन आगन्तुकों की बातें सुनकर दादा के चेहरे पर जो उल्लास खेलने लगा था और धीरे-धीरे होने वाली बातों की जो भनक चेतन के कान में पड़ी थी, उससे उसने जान लिया था कि उन महानुभावों के आने का प्रयोजन क्या है। उसे पूरा विश्वास था कि अभी उसके दादा उसे आवाज़ देंगे और उसे कुछ मनोरंजन का सामान मिलेगा। पर ऐसा नहीं हुआ। वह प्रकट पुस्तक में ध्यान जमाये इसी बात की प्रतीक्षा करता रहा, पर उसके दादा ने कोई आवाज़ न दी और कुछ बातें करने के बाद वे ऊपर, सम्भवतः चेतन की माँ से कुछ पूछने चले गये।

ऐसी दशा में पहले वह स्वयं उठकर बैठक में आ जाया करता था

और आगन्तुकों को अवसर दे दिया करता था कि वे उससे बातें करके विवाह सम्बन्धी उसके विचारों को जान लें या फिर वह अपने मित्र अनन्त को बुला लाता था और वे दोनों मिलकर आगन्तुकों को लड़कियों के पिता होने का दण्ड दिया करते थे। किन्तु उस दिन दादा के चले जाने पर भी वह उठकर वहाँ न जा सका। लकवे के कारण शरीर-कम्पन की बीमारी में ग्रसित, प्रतिक्षण अत्यन्त दयनीय रूप में अपने हाथ और गर्दन को हिलाते रहने वाले, उन बुज़ुर्ग की आकृति में कुछ ऐसी बात थी कि वह उनसे किसी तरह के परिहास का विचार मन में न ला सका। उनका स्वर इतना धीमा, गम्भीर और संयत था कि साधारण लोगों की अपेक्षा उनके व्यक्तित्व से अनायास ही श्रद्धा हो आती थी। भागकर पास की गली से अपने मित्र अनन्त को बुला लाने की इच्छा भी तब उसे नहीं हुई।

कुछ देर बाद दादा ने एक काग़ज़ उनके हाथ में लाकर दिया। चेतन समझ गया, उसके दादा ने उसकी माँ से पूछकर चारों अंग* लिखकर दिये हैं।

इसके बाद नमस्कार करते हुए वे वृद्ध उठे। जाते-जाते चेतन के पास आकर उन्होंने अपना काँपता हुआ हाथ उसके सिर पर फेरा और कहा, "अब तो परीक्षा हो चुकी है बेटा, अब इतनी मेहनत न किया करो। कुछ दिन आराम करो और सेहत बनाओ!" बस इतना कह, पक्षाघात से विवश हिलते हुए अपने शरीर को जैसे-तैसे सम्हालते हुए, वे बैठक की सीढ़ियाँ उतर गये। न उन्होंने दूसरों की भाँति उसकी

* लड़के का, लड़के की मां का, उसके पिता तथा उसके दादा का, अपना और ननिहाल का गोत्र बताने को चारों अंग बताना कहते हैं। पुराने विचार के हिन्दुओं में यदि लड़के के इन चारों अंगों में कोई लड़की के चारों अंगों में किसी से मिल जाय तो सगाई नहीं होती।

शिक्षा-दीक्षा, वेतन या विचारों के सम्बन्ध में प्रश्न किये, न अपने ही बारे में कुछ बताया ।

उनके चले जाने के बाद चेतन के मन में प्रबल आकांक्षा उठी कि वह अपनी माँ अथवा दादा से उनके इस आगमन का ठीक कारण पूछे, पर वह मन मारकर बैठा रहा ।

शाम को खाना खाते समय उसे पता चल गया कि उसका अनुमान ग़लत न था। लकवे की बीमारी के मारे वे बुज़ुर्ग रिटायर्ड-ओवरसियर थे । उनके साथ उनका छोटा भाई था, जिसके ईंटों के दो भट्टे 'काला बकरा' में थे। उसी की लड़की के सम्बन्ध में बात करने वे आये थे । तब खीझकर चेतन ने अपनी माँ से कहा था, "दादा न जाने क्यों उनको साफ़ इन्कार नहीं कर देते । क्यों व्यर्थ दो भलेमानुसों को परेशान करते हैं !"

माँ ने आँखों में आँसू भरकर वही पुरानी बातें दोहरानी शुरू की थीं—'बच्चा यदि तू घर न बसायेगा तो मैं मुहल्ले में किस तरह मुँह दिखा सकूँगी ? ब्याह, शादी और बीसियों दूसरे संस्कारों और त्योहारों पर किसी-न-किसी घर से कुछ-न-कुछ आता रहता है । मेरे घर अब तेरे ब्याह के सिवा इतनी जल्दी और कौन-सा उत्सव होगा कि मैं उन सबका बदला चुका........"

इन बातों का कोई जला-कटा उत्तर देने के बदले चेतन ने अपना वही पुराना अस्त्र प्रयोग में लाने का विचार किया । माँ की बात काट-कर गम्भीरता से उसने कहा, "मैं तुम्हारी सब बातें मानता हूँ, पर मैं लड़की देखे बिना शादी न करूँगा और इस बात के लिए शायद वे तैयार न हों ।"

माँ ने कहा, "वे दिखा देंगे ।"

और माँ ने ठीक ही कहा था । दूसरे ही दिन वे वृद्ध फिर आये और उन्होंने कहा कि परमात्मा की कृपा से अंग तो नहीं मिले और

आग्रह किया कि यह नाता अब हो ही जाना चाहिए। तब दादा ने उत्तर दिया कि उनकी और बहू की ओर से तो कोई आपत्ति नहीं, वे तो घर अच्छा चाहते हैं—भलेमानुस लोग! बाक़ी किसी चीज़ की उन्हें परवाह नहीं.......पर लड़के के पिता से भी पूछ लेना चाहिए। और फिर सकुचाते-सकुचाते उन्होंने कहा कि लड़के को मना लेना भी आप ही का काम है।

इस पर वृद्ध ने दादा से चेतन को बुलाने के लिए कहा था और दादा ने चेतन को आवाज़ दी थी।

जैसे गहरे लाल रंग के ऊपर हल्का पीला रंग उसकी ललाई को नहीं छिपा पाता, इसी तरह जब पहले ऐसे अवसरों पर चेतन आकर बैठा करता था तो उसके चेहरे पर जो हल्की-सी गम्भीरता होती थी उसके नीचे शरारत साफ़ छिपी दिखायी देती थी। किन्तु उस दिन जब रोग से विवश उन वृद्ध के सामने चेतन जाकर बैठा तो उसकी वह शरारत ऐसी छिप गयी जैसे उसका कभी अस्तित्व ही न था। चुप गम्भीर, शरमाया-शरमाया-सा वह जाकर बैठ गया।

बड़े मीठे स्वर में हकलाते-हकलाते उन बुज़ुर्ग ने पूछा, "क्यों बेटा, तुम्हें इस रिश्ते में कुछ आपत्ति तो नहीं?"

चेतन ने चाहा आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछे, "किस रिश्ते में?" —पर न तो वह आश्चर्य का प्रदर्शन कर सका और न कुछ पूछ ही सका, बस चुप बैठा रहा।

उन वृद्ध ने कहा, "तुम्हें लड़की दिखा देंगे बेटा, मैं स्वयं आज़ाद-ख़याल आदमी हूँ। जिसके साथ जीवन भर का नाता हो, उसे देखा तक न जाय, इसे मैं अन्याय समझता हूँ।"

चेतन फिर भी चुप बना रहा। उसकी सब मुखरता न जाने कहाँ उड़ गयी!

फिर कुछ देर बाद वे बोले, "रहे तुम्हारे पिता जी तो भाई उनकी

सेवा में उपस्थित होकर भली-भाँति उनकी अनुमति प्राप्त कर ली जायगी। तुम्हारी ओर से तो कोई आपत्ति नहीं ?"

चेतन का गला सूख-सा रहा था, उसके कण्ठ में जैसे गोला-सा अटक गया था, पर उनके अन्तिम वाक्य से उसे जैसे ज़बान मिल गयी। धीरे से बोला, "जी....जी....मैं अभी आगे पढ़ना चाहता हूँ।"

"तुम जैसे अध्ययनशील, बुद्धिमान युवक से ऐसी ही आशा है बेटा," उन्होंने समर्थन करते हुए कहा, "आगे ज़रूर पढ़ो ! गुण अपने पास हो तो क्या बुरा है ? कोई छीन तो लेगा नहीं ! और दो वर्ष तो पलक झपकते बीत जायँगे। चन्दा उन लड़कियों में से नहीं, जो पति के मार्ग का रोड़ा बन जायँ। सरल, सीधी, समझदार लड़की है, तुम्हारी पढ़ाई में किसी तरह की बाधा न डालेगी। फिर हमसे भी जहाँ तक हो सकेगा, तुम्हारी सहायता करेंगे।"

चेतन क्या कहे, वह तय न कर सका।

और अपने हिलते हुए हाथ जोड़कर बुज़ुर्ग ने विदा ली।

कृतज्ञता के बोझ से जैसे दबकर दादा भी उनके साथ उठे।

कुछ देर तक चेतन चुपचाप वहीं बैठा रहा था। फिर उसका सारा क्रोध पोते के विवाह की सुखद कल्पना में डूबे, धीरे-धीरे हुक्का गुड़गुड़ाते हुए अपने सत्तर वर्ष के बूढ़े दादा पर उतरा। चीख़कर उसने कहा, "मैंने कितनी बार आपसे कहा है कि मुझे तंग न किया करें, फिर क्यों आप लोग मुझे सताते हैं ! मैं घर छोड़कर चला जाऊँगा।" और पैर पटकता हुआ वह अपने कमरे में जाकर लेट गया।

दोपहर को उसकी माँ जब खाना खाने के लिए उसे बुलाने आयी तो वह छत की ओर टकटकी लगाये चारपाई पर लेटा था।

माँ चारपाई पर जाकर बैठ गयी और प्यार से बोली, "खाना नहीं खाओगे आज ?"

बिना उसकी ओर देखे रुखाई से चेतन ने कहा, मुझे भूख नहीं।"

इस वाक्य के पीछे जो बवण्डर छिपा हुआ था, वह शायद माँ से छिपा न रहा। खाना खाने के लिए फिर उसने नहीं पूछा।

कुछ क्षण तक चुप रहकर वह बोली, "आज ज्वाली महरी की लड़की आयी थी।"

चेतन चुप रहा।

"उसकी ससुराल भी तो बस्ती ग़ज़ाँ ही में है," माँ ने कहा, "बेचारी बड़ी दुखी है। अभी दो वर्ष भी नहीं हुए कि उसका ब्याह हुआ था। छः महीने हुए उसके घर लड़का हुआ था। सब तरह का आनन्द था........"

एक दीर्घ-निश्वास छोड़कर और सहज ही भर आने वाली आँखों को पोंछकर माँ ने कहा, "आज बेटा वह विधवा है। कुछ ही दिन हुए उसके पति की बदली सम्मासट्टा की ओर किसी रेगिस्तानी स्टेशन पर हुई थी। वहाँ जाते ही उसे ज्वर हो आया। उस वीराने में अपना कौन था? दूसरे ज्वाली की लड़की बच्चे से थी और रेल का डाक्टर भी इन छोटे स्टेशनों पर कहाँ आता है! बेचारा अकेला चार-पाँच दिन बेहोश पड़ा रहा। यहाँ तब ख़बर पहुँची जब वह सभी व्याधियों से सदा के लिए मुक्त हो चुका था।"

चेतन का क्रोध बिलकुल जाता रहा। ज्वाली की लड़की के दारुण दुख से जैसे दुखी होकर उसने कहा, "तुम बीरो की ही बात कर रही हो न?"

माँ ने कहा, "हाँ-हाँ, उसी की! उन्हीं की गली के पास तो उनका घर है।"

"किनका?"

"पण्डित दीनबन्धु का!"

"कौन दीनबन्धु ?"

"वही जो आज बस्ती से आये थे।" माँ ने तनिक-सा हँसकर कहा, "आये थे तुम्हारे लिए ! बातों-बातों में बीरो से लड़की की बात चली थी। उसने कहा, "भाभी, लड़की तो ऐसी सुशील और हँसमुख है कि क्या कहूँ। स्वर तो इतना मीठा है कि जो दो मिनट उससे बात कर लेता है, उस पर निछावर हो जाता है।"

चेतन चुप रहा।

"तू जाकर देख क्यों नहीं आता, न पसन्द होगी न करना !"

माँ यह कहकर चुप हो गयी और चेतन मन-ही-मन उस भोली-भाली लड़की के चित्र बनाने लगा।

कुछ देर बाद जब फिर माँ ने उससे खाना खाने के लिए कहा तो वह चुपचाप उठ खड़ा हुआ।

माँ की बातों का, उस भोली-भाली लड़की की उस प्रशंसा का जो बीरो से मिलने के बाद वह प्रतिदिन किया करती थी और उस लड़की को एक नज़र देख आने के लिए माँ के अनुरोध का खयाल करके चेतन मन-ही-मन हँस पड़ा। सिनेमा के चित्रों की भाँति गत कई दिनों के दृश्य उसकी कल्पना के सम्मुख घूम गये और सिर नीचा किये वह उन्हीं के विवेचन में मग्न चलता आया। उसे नहीं मालूम— कब वह अड्डे पर ताँगे से उतरा; कब उसने पैसे दिये और कब वह इतने लम्बे, तंग, जन-संकुल बाज़ारों को पार करके इतनी दूर चला आया। जब उसने सिर उठाया तो वह चौरस्ती अटारी के निकट पहुँच गया था।

सन्ध्या के सूरज की अन्तिम मुस्कान ऊँचे श्वेत मकानों की छतों को सुनहरा बना रही थी। जब धीरे-धीरे चलता हुआ चेतन मुहल्ले में दाख़िल हुआ।

—•—

४

माँ रसोई-घर में बैठी खाना पका रही थी जब चेतन ने जाकर कहा, "देख आया हूँ तुम्हारी बस्ती वाली शहज़ादी भी ! उससे तो मैं सात जन्म शादी करने की बात नहीं सोच सकता।"

माँ रोटी बेल रही थी। रुककर उत्सुकता से उसने पूछा, "तुमने कहाँ देखा उसे ?"

"बस्ती में और कहाँ !" चेतन ने उत्तर दिया।

माँ रोटी बेलना छोड़कर चौखट में आ खड़ी हुई। चेतन कहता गया, "अपने शरीर का, अपने कपड़ों का, अपनी किसी बात का उसे होश नहीं—बाल बिखरे, कपड़े मैले—ऐसी फूहड़ लड़की से मैं ब्याह करूँगा ? ठीक ही वह मेरी पढ़ाई में मुझे मदद देगी !"

"तो बहुत ही कुरूप और फूहड़ है ? बीरो तो कहती थी........" माँ ने कहना चाहा........

चेतन फुफकारता हुआ-सा, चबा-चबाकर कहने लगा, "बीरो कहती थी....बीरो कहती थी....बीरो तो....।"

पर माँ ने बात काटकर कहा, "बेटा सीधी लड़कियाँ अच्छी होती हैं और बनाव-सिंगार—मैं तो इससे पहले ही जली बैठी हूँ। अपनी भाभी ही को देख लो। वह ताश-शतरंज में लगा रहता है, यह बनाव-सगार में और मैं उनकी बाँदी बनी सारा दिन घर का काम करती हूँ।"

चेतन ने हँसकर रद्दा जमाते हुए कहा, "तो यह तुम्हारा काम करेगी, इस आशा से हाथ धो रखो !"

"तो ऐसी निकम्मी लड़की को लेकर मैं क्या करूँगी ?"

चेतन जाने लगा था। उसे रोककर माँ ने कहा, "तुम उन्हें चिट्ठी लिख दो।"

"चिट्ठी !" चेतन ने हैरानी से पूछा।

"हाँ, चिट्ठी के बिना वे बेचारे शायद दुविधा में रहें और शायद तुम्हारे पिता के पास वे हो आये हों, इसलिए तुम उन्हें लिख दो।"

"क्या लिख दूँ !"

"कोई बहाना बना दो, लिख दो, मैं अभी आगे पढ़ना चाहता हूँ, मैं जल्दी ब्याह नहीं कर सकता। जो तुम्हें ठीक लगे, लिख दो।"

यह कहकर वह जल्दी से अपने आसन पर जा बैठी और रोटी बेलने लगी।

चेतन नीचे अपने कमरे में गया, कपड़े बदले और अपने दोस्तों में गपशप करने निकल पड़ा। तभी ऊपर रसोई-घर की खिड़की से झाँककर माँ ने कहा, "देखो देर न लगाना, जल्दी आ जाना, और वह 'बुद्धू' कहीं मिले तो उसे भेजना। आकर खाना खा जाय, फिर मेरी ओर से चाहे सारी रात पड़ा ताश-शतरंज से सिर फोड़े !"

—•—

५

चेतन के बड़े भाई रामानन्द को माँ ने योंही 'बुद्धू' की उपाधि न दे रखी थी। घर के सुख-दुख तो दूर रहे, अपनी परेशानियाँ तक उन्हें छू न पाती थीं, पिता की डाँट-डपट, मार-पीट; माँ के गिले-शिकवे, कोसने-उलाहने; पत्नी के ताने-मेहने और रोना-रूठना—कोई बात उनकी निर्लिप्तता को भंग न कर पाती।

यह वीतरागता उस ढीठपने ही का दूसरा रूप थी, जो प्रायः रोज़-रोज़ की डाँट-डपट या मार-पीट के कारण बच्चों में पैदा हो जाया करती है। पण्डित शादीराम भी, जिन्हें मार-पीट की कला में अपूर्व दक्षता

प्राप्त थी, कई बार अपने बड़े बेटे की इस सहनशीलता से हारकर कह उठते, 'पीटते-पीटते मेरे हाथ दुखने लगते हैं, लेकिन इस 'डहूस' के कान पर जूँ भी नहीं रेंगती,' और उनके इस ढीठपने से चिढ़कर वे पंजाबी भाषा की एक लोकोक्ति सुनाते :

दो पइय्याँ, विस्सर गइय्याँ
सदका मेरो ढूई दा*

पण्डित जी साधारणतः पढ़ाई के सिलसिले ही में पीटते। यदि वे अपने किसी बेटे के हाथ में पुस्तक देख लेते तो पहले मामूली तौर पर, बड़े स्नेह से, हँसते-हँसते, पुस्तक लेकर उसके दो-चार पृष्ठ उलटते। फिर सहसा उसकी परीक्षा लेने के लिए (जैसी भी पुस्तक हो, उसके अनुसार) कोई अँग्रेज़ी, गणित, भूगोल अथवा इतिहास का प्रश्न पूछ बैठते। यदि उत्तर ठीक होता तो लड़के की पीठ ठोंकते, उसे उठाकर चूम लेते और प्रसन्नता से उसके भविष्य के सम्बन्ध में कई उत्साह-भरी भविष्यद्वाणियाँ करते हुए अपने उस जोश में और भी कठिन प्रश्न पूछते—परिणाम सदैव ठुकाई होता।

चेतन भी बचपन में दो-तीन बार पिटा था, इस बुरी तरह कि वह बहुत देर तक बीमार रहा था; किन्तु बचपन में पिटा सो पिटा, उसके बाद यथाशक्ति उसने ऐसा अवसर न आने दिया। वह सदा उनकी मार-पीट से बचने, उनके सामने न पड़ने, जिस समय वे घर में हों, उस समय घर से ग़ायब हो जाने के बीसों बहाने सोच लेता। उसका छोटा भाई, छोटा होने पर भी, उसकी इस 'दूरदर्शिता' से लाभ उठा लेता और पिता की मार-पीट से बचने के उपाय सोचने और उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने में सदैव उसकी सहायता करता।

जब पण्डित जी घर पर होते तो दोनों छोटे भाई सदा उनके सामने

***दो पड़ीं भूल गयीं; सदके मेरी पीठ के !**

जाने से बचने के बीसों बहाने सोच लेते। वे इस बात का भी विशेष ध्यान रखते कि पण्डित जी आयें तो उन दोनों के हाथ में तो क्या, घर के किसी कोने में भी उन्हें पुस्तक का कोई पृष्ठ तक न दिखायी दे। बाहर मुहल्ले ही से उनकी आवाज़ सुनकर वे पुस्तकें छिपाना शुरू कर देते। पण्डित जी नीचे होते तो वे तुरन्त ऊपर की पुस्तकें छिपा देते और जब वे ऊपर आते तो बहाने से नीचे जाकर, वहाँ यदि कोई पुस्तक पड़ी हो तो उसे उड़ा देते। वे लेट जाते तो उनके पाँव तथा पिंडलियाँ इस निष्ठा से दबाते कि वे ख़र्राटे लेने लगते।

किन्तु चेतन के ये बड़े भाई (यों चाहे सदा उपन्यास पढ़ते या आवारागर्दी करते) जब पण्डित जी घर आते तो तुरन्त पुस्तकें ले बैठते। न केवल वे घर से गुम रहने या पण्डित जी के समक्ष जाने से बचने के उपाय न सोचते, वरन् जब पण्डित जी घर आते तो वे सदा घर ही में बने रहते—सम्भवतः अपनी आवारागर्दी का हाल छिपाने और पढ़ने में अपनी निष्ठा उन्हें बताने के लिए! फिर चेतन और उसके छोटे भाई की-सी सतर्कता और चाबुकदस्ती भी उनके यहाँ न थी। वे न हाज़िर-जवाब थे, न जल्दी बहाने सोच सकते थे। पिटने पर भी वे सदा अपने पिता से चिपके रहते और इसीलिए प्रायः घर तो घर, बाज़ार में भी पिटते!

....एक बार वे एक दावत के सिलसिले में (पूर्ववत् भाई साहब साथ थे) सड़क की ओर से जाने के बदले लाइन-लाइन थानेदार के यहाँ जा रहे थे कि सहसा एक सिगनल की ओर संकेत करके उन्होंने पूछा, "इसे अँग्रेज़ी में क्या कहते हैं?"

भाई साहब ने तुरन्त उत्तर दिया, "सिंगल!"

और दड़ से एक थप्पड़ उनके मुँह पर पड़ा, "यह पंजाबी भाषा का नहीं कम्बख़्त, अँग्रेज़ी का शब्द है। स्टेशन मास्टर का लड़का होकर गँवारों की तरह 'सिंगल' 'सिंगल' बके जा रहा है।"

और पण्डित जी भाई साहब की मरम्मत करते हुए रास्ते से ही लौट आये।

....'चीचोकी मलियाँ' स्टेशन के सामने एक मिलेट्री का डिपो था। चेतन के बड़े भाई उस समय आठवीं श्रेणी में पढ़ते थे और चेतन छठी में। वह पहली बार अपने बड़े भाई के साथ चीचोकी मलियाँ आया था। एक दोपहर जब अपने पिता के साथ वे दोनों डिपो के सामने से जा रहे थे, चेतन ने सहसा अपने भाई से प्रश्न किया, "यह बैरक-सी क्या है, भरा जी *?"

भाई साहब ने बोर्ड पढ़ते हुए बताया, "चीचोकी मलियाँ मिलेट्री डिपोट...."

अभी उन्होंने वाक्य पूरा भी न किया था कि पूरे ज़न्नाटे के साथ एक थप्पड़ उनकी कनपटी पर पड़ा और उनकी आँखों के आगे तारे नाचने लगे, "आठवीं जमात में पढ़ता है और यह भी मालूम नहीं कि शब्द 'डिपो' है 'डिपोट' नहीं।"

और पण्डित जी ने काँटे वाले से वहीं कुर्सी मँगायी और भाई साहब से पुस्तक लाने को कहा। चेतन पानी पीने के बहाने खिसक गया। पीछे भाई साहब की जो दशा हुई उसका अनुमान लगाया जा सकता है।

मैट्रिक तक मार-पीट के बल पर किसी-न-किसी प्रकार पढ़कर चेतन के भाई साहब कॉलेज में दाखिल तो हो गये, किन्तु परीक्षा में सफल होना उन्होंने उतना आवश्यक नहीं समझा। अँग्रेज़ी में कमज़ोर थे, किन्तु संस्कृत से तो जैसे उनके प्राण जाते थे। यह बात वे कभी न समझ पाते कि यह क्लिष्ट भाषा, जो न किसी सरकारी नौकरी में काम आती है, न किसी व्यापारिक दफ़्तर में, जो आर्यों के समय में भी जन-साधारण की भाषा न थी, आज-कल क्यों पढ़ायी जाती है? और एक दिन

---

*भरा जी = भाई साहब

गर्मी की छुट्टियों से पहले, तीन महीने की फ़ीस लेकर वे दिल्ली भाग गये थे और वहाँ एक पेंटर की दुकान पर शिष्य हो गये थे। दुर्भाग्य से पण्डित शादीराम के एक पुराने मित्र ने उन्हें देख लिया और इस प्रकार भाई साहब को न केवल विवश होकर लौट आना पड़ा, बल्कि उसी कॉलेज में फिर से शिक्षा पाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

पिता की कठोरता से भाई साहब घबराये नहीं, मार के भय से वे कॉलेज में प्रविष्ट तो हो गये, किन्तु क्लास में बैठकर प्रफ़ेसरों के शुष्क लेक्चर सुनने की अपेक्षा कॉलेज के सुहाने उपवन के किसी घने वृक्ष की छाया में बैठकर नित्य नये मनोरंजक उपन्यास पढ़ने लगे। वे सब उपन्यास भाई साहब 'महन्तराम बुक सेलर' की दुकान से, दो पैसे प्रति-दिन के हिसाब से, किराये पर ले आते। भाई साहब वह राशि-राशि ज्ञान दीमक की भाँति चाट गये थे और साहित्य के उस महान्-कोप को चाट जाने पर भी वे दीमक ही की भाँति कोरे-के-कोरे थे।

परिणाम वही हुआ जिसकी उन्हें आशा थी। उनकी हाज़रियाँ कम हो गयीं। भाई साहब परीक्षा में न बैठ सके और जब एक बार नहीं बैठे तो फिर नहीं बैठे।

कॉलेज से पिंड छूटा तो भाई साहब ने जीविकोपार्जन की चिन्ता करने की अपेक्षा ताश और शतरंज को अपना साथी बनाया। इसमें कुछ उनका दोप था, कुछ उनके पिता का। जब भाई साहब दिल्ली से आ गये तो माँ के परामर्श से पण्डित जी ने इस कंचल 'बोते'* को बाँधने के विचार से, उसकी नाक में नकेल डालना आवश्यक समझा। किसी काम पर लगाने या कोई कला-कौशल सिखाने के बदले पण्डित जी ने उनकी शादी कर दी।

इसके पश्चात् यद्यपि दूसरे वर्ष भाई साहब ने कॉलेज जाने से साफ़

---

*ऊँट।

इन्कार कर दिया तो भी पण्डित जी को उन्हें नौकर कराने की चिन्ता नहीं हुई। एक बार माँ के अनुरोध से तंग आकर वे उन्हें आडिट आफ़िस में, अपने एक मित्र के पास, अवश्य ले गये, किन्तु जब उसने उन्हें केवल पैंतीस रुपये मासिक पर 'आफ़िस ब्वाय' रखने से अधिक कुछ करना स्वीकार न किया तो पण्डित जी ने अपने उस मित्र को बीसियों गालियाँ दीं और कहा, "पैंतीस रुपये तो मैं रोज़ शराब पर खर्च कर देता हूँ कम्बख़्त!" और अपने इस थर्ड डिवीज़न मैट्रिक पास सुपुत्र को लेकर चले आये।

फिर यद्यपि पण्डित जी ने उनकी नौकरी लगाने के हेतु फ़िरोज़पुर, लाहौर और दिल्ली जाने के लिए चेतन की माँ से कई बार रुपये लिये, किन्तु वे बाज़ार शेखाँ के साक़ी की दुकान तक होकर ही लौट आये।

रहे भाई साहब तो उन्होंने अपने लिए मॉटो बना रखा था—"सोचो मत।" इसी मॉटो पर अक्षरशः चलने का परिणाम था कि इस बेकारी और बेरोज़गारी के होते भी एक लड़का और दो लड़कियाँ उनके यहाँ हो गयी थीं। एक मर चुकी थी और दूसरी को उनकी पत्नी कूल्हे से लगाये फिरती थी और वे स्वयं अपने इन बीवी-बच्चों को पालने के लिए कहीं नौकरी ढूँढ़ने की बात एकदम भुलाये, गुलछर्रे उड़ा रहे थे! कभी जब माँ या पत्नी मारे व्यंग्य-कणों के उनका दम नाक में कर देतीं तो वे किसी चौखट में बैठ घुटनों पर हथेलियाँ टिका, ठोड़ी को हथेलियों में रख अतीव एकाग्रता से सोचने की कोशिश करते, पर कुछ क्षण इसी मुद्रा में रहने के पश्चात् सहसा सिर को झटककर वे उठते और सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान या पण्डित बनारसी दास सूत वाले की दुकान पर जाकर किसी ताश या शतरंज की टोली में सम्मिलित हो जाते।

किन्तु चेतन की माँ अपने इस बेटे की बेकारी और अकर्मण्यता तथा उसकी बहू के कर्कश, झगड़ालू स्वभाव से अत्यन्त दुखी थी।

जब अपने सुपुत्र को काम में लगा देखने के लिए पिता के समस्त प्रयत्न शराबखाने तक जाकर ही समाप्त हो गये तो माँ ने कहीं से ऋण लेकर उसे एक लाण्डरी खोल दी।

बात वास्तव मे यो हुई कि भाई साहब के प्रिय मित्र सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान पर, जहाँ शीतकाल में सोडे का बाज़ार सर्द और शतरंज की महफ़िल गर्म रहती थी, फ़िरोज़पुर का एक व्यक्ति आया जो शतरंज का ज़बरदस्त खिलाड़ी था। उसने पहली ही बैठक में भाई साहब को, जो उस इलाके में शतरंज के चैम्पियन माने जाते थे, निरन्तर कई बार मात दे दी।

जब बिसात उठी तो एक सच्चे खिलाड़ी की तरह भाई साहब ने उसके खेल की भूरि-भूरि प्रशंसा की और लेमोनेड की एक बोतल खोलते हुए उसे दूसरे दिन के लिए आमन्त्रित किया। तब उसने बताया कि वह तो काम की खोज में जालन्धर आया है। उधर से निकला था, शतरंज बिछी देखकर बैठ गया, नहीं उसे तो काम-धन्धा ढूँढ़ना है। भाई साहब का कुतूहल बढ़ा और वे उसे उसके अड्डे—स्टेशन की सराय—तक छोड़ने गये। बातों-बातों में उन्हें यह ज्ञात हो गया कि उसका नाम राजाराम है। वह लाण्डरी के काम मे निपुण है, पहले उसकी अपनी लाण्डरी थी। भाई साहब को उसने यह भी बताया था कि वह प्रसिद्ध डायर और ड्राई क्लीनर* ही नहीं, राष्ट्रीय कवि भी है। और आन्दोलन में जेल जाने के कारण ही उसकी लाण्डरी चौपट हो गयी थी। अब फ़िरोज़पुर छोड़कर वह जालन्धर आया है कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाय जो थोड़ी-बहुत पूँजी लगाने को तैयार हो तो साझे में लाण्डरी खोले।

शतरंज के इस कुशल खिलाड़ी और राष्ट्रीय कवि के दुर्भाग्य से भाई साहब को बड़ी सहानुभूति हुई, किन्तु शतरंज और ताश की

*रँगने और धोने वाले।

चैम्पियनशिप के अतिरिक्त उनके पास कुछ न था। फिर भी उन्होंने उसे दूसरे दिन आने के लिए कहा और सान्त्वना दी कि वे उसके लिए कुछ-न-कुछ प्रबन्ध अवश्य करेंगे।

उस दिन दिये जले जब चेतन घर आया तो उसने देखा कि माँ बर्तन मल रही है और उसके पास ही एक औंधी बाल्टी पर बैठे हुए भाई साहब लाण्डरी के काम की प्रशंसा के पुल बाँध रहे हैं।

चेतन उस समय जल्दी में था, इसलिए उसने भाई साहब की पूरी बात नहीं सुनी, किन्तु उस दिन के पश्चात् उसने देखा कि लाण्डरी के काम में भाई साहब का उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। दिन का पर्याप्त समय वे घर ही में रहने लगे हैं, ड्राइक्लीनिंग और डाइंग की कला में उन्हें पर्याप्त दक्षता प्राप्त होती जा रही है और जितना समय वे घर पर रहते हैं, माँ को लाण्डरी के लाभ समझाते रहते हैं........।

एक दिन उसने सुना भाई साहब कह रहे थे, "यदि मैं ताश-शतरंज में व्यर्थ समय नष्ट करता रहा तो इसमें मेरा क्या दोष है। मुझे किसी ने कोई कला-कौशल सिखाया ही नहीं। मैं दिल्ली भाग गया था, यदि मुझे वहाँ से वापस न बुलाते तो मैं अब तक वहाँ प्रसिद्ध पेंटर हो गया होता। अब भी यदि मैं लाण्डरी का काम सीख जाऊँ तो न केवल अपना, बल्कि सारे परिवार का बोझ अपने कन्धों पर उठा लूँ।"

माँ बहुत प्रसन्न हुई कि अन्त में सुबह का भूला शाम को घर आ गया है। उसी दिन से वह इस बात का जतन करने लगी कि अपने इस बेटे को किसी-न-किसी प्रकार लाण्डरी के लिए रुपये इकट्ठे कर दे। सुयोग भी आ उपस्थित हुआ। पण्डित शादीराम को उन दिनों 'सट्टे' की नयी-नयी लत लगी थी। दुनिया भर के साधु-सन्तों, पीरों-फ़क़ीरों की सेवा-शुश्रूषा के पश्चात् वे इसी व्यसन के कारण ख़ासे ऋणी भी हो गये थे। लेकिन तभी उन्हें छावनी के एक ज्योतिषी महाराज के

यहाँ से 'दड़े' * का एक नम्बर मिल गया और इसे भाई साहब का भाग्य कहिए या उनके फ़िरोज़पुरी मित्र का कि वह नम्बर आ गया और पण्डित जी को साढ़े तीन हज़ार रुपये मिल गये।

यद्यपि उस समय पण्डित जी के सिर पर लगभग उतना ही ऋण था और माँ की इच्छा थी कि परमात्मा ने जब उनको सुअवसर दिया है तो उन्हें उसका पूरा लाभ उठाकर सट्टे को सदैव के लिए 'नमस्कार' कह देना चाहिए, लेकिन पण्डित जी अपने भगवान को इतना कृपण न समझते थे। पत्नी के उपदेश भरे परामर्श के उत्तर में "भगवान तेरी लीला अपरम्पार है!" का नारा बुलन्द करते हुए उन्होंने कहा, "जिस भगवान ने एक बार दिया है, वह फिर क्यों न देगा!" और केवल डेढ़ हज़ार का ऋण उतारा; फल, मिठाई, कपड़ों और रुपयों का एक थाल ज्योतिषी जी के घर पहुँचाया और शेष रुपया अस्सी-नब्बे प्रतिदिन के हिसाब से सट्टे पर लगाते रहे। और डेढ़ हज़ार का फिर साढ़े तीन हज़ार ऋण बनाकर वे अपने स्टेशन पर वापस चले गये।

माँ ने भाई साहब की प्रेरणा और सहायता से जैसे-तैसे उस रुपये में से तीन-चार सौ बचा लिया था। दो-तीन सौ कहीं से उधार लिया और लाण्डरी खोलने की व्यवस्था कर दी। बड़े तमतराक से भाई साहब ने अड्डा होशियारपुर में एक तबेला किराये पर लिया, कपड़े धोने के लिए घाट बनवाये और बड़े-बड़े विज्ञापनों के साथ, जिनमें उनके मित्र फ़िरोज़पुरी राष्ट्रीय कवि ने अपने बैतों में लाण्डरी के गुण-गान बखान करने में बड़ी उदारता से काम लिया था, 'भारत लाण्डरी वर्क्स' के उद्घाटन की घोषणा कर दी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस लाण्डरी में राष्ट्रीय कवि बराबर के साझीदार थे।

***दड़ा = सट्टा = एक तरह की लाटरी है जिसमें १०० तक नम्बर होते हैं। जिसका नम्बर आ जाता है उसे सौ गुना पैसे मिलते हैं।**

लाण्डरी खोलने में भाई साहब ने इतनी निष्ठा और लगन का परिचय दिया कि चेतन को आपसे आप उनकी सहायता के लिए तैयार होना पड़ा। अपने कॉलेज के होस्टल, स्कूल के होस्टल, अपने कॉलेज और स्कूल ही के नहीं वरन् अपने मित्रों की सहायता से दूसरे स्कूलों के होस्टलों से भी उसने 'भारत लाण्डरी' के लिए कपड़े लाने का प्रबन्ध कर दिया।

कुछ महीनों तक मज़े में काम चलता रहा। फिर क्या हुआ, कैसे हुआ, चेतन को कुछ भी ज्ञात नहीं, किन्तु जहाँ-जहाँ से उसने कपड़े लाकर दिये थे, वहाँ-वहाँ से उसके पास निरन्तर शिकायतें पहुँचने लगीं। उसके एक मित्र ने उलाहना दिया कि तीन सप्ताह तक उसे कपड़े नहीं मिले और जब लाण्डरी में गया तो धोबियों ने उसके कपड़े पहन रखे थे। एक दूसरे ने शिकायत की कि उसने अपनी बहन की जो साड़ी रँगने के लिए दी थी, जब वह उसे लेने गया तो उसे कोई दूसरी ही साड़ी मिली। चेतन उन दिनों परीक्षा की तैयारी कर रहा था। जब इन शिकायतों, उलाहनों और अभियोगों में प्रतिदिन वृद्धि होने लगी और सब ओर त्राहि-त्राहि मच गयी तो एक दिन अपनी पुस्तकों को पटककर वह लाण्डरी पहुँचा। तब उसने देखा कि कपड़ों और उनके झमेलों से मुक्त होकर, तबेले के घने पीपल की छाया के नीचे, भाई साहब अपने उस फ़िरोज़पुरी मित्र के साथ बिसात बिछाये बैठे हैं, उसे मात पर मात दे रहे हैं और नन्दासिंह की दुकान पर उसने उन्हें जो शिकस्त दी थी, उसका भरपूर बदला चुका रहे हैं........

चेतन बोला, बका, भाई साहब ने लाण्डरी का काम देखने का वचन भी दिया, किन्तु दशा सुधरने के बदले प्रतिदिन बिगड़ती हीं।

गयी। अन्त में एक दिन उसने सुना कि भाई साहब लाएडरी को उसके भाग्य पर छोड़कर काँग्रेस के डिक्टेटर हो गये हैं।

भाई साहब ने अपने उस फ़िरोज़पुरी मित्र से जहाँ लाएडरी के लाभ सुन रखे थे, वहाँ कारावास के राजनीतिक-जीवन के विषय में भी बहुत-सा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बड़े-बड़े नेता पकड़े जा चुके थे, इसलिए जो भी नेता बनने और जेल जाने को तैयार होता, डिक्टेटर बन सकता था। घर में माँ और पत्नी के कोसनों, लाएडरी में धोबियों और ग्राहकों के तगादों और दूसरे व्यावसायिक झगड़ों से भाई साहब का जीवन इतना कटु हो गया था कि उन्हें जेल की कोठरी कहीं अधिक लुभावनी लगती थी।

भाई साहब ने जिस निष्ठा से लाएडरी खोली थी, उससे कहीं अधिक निष्ठा से वे राष्ट्र-सेवा में निमग्न हो गये। दिन-रात वे काँग्रेस के काम में व्यस्त रहते। अपने लम्बे छरहरे शरीर पर खादी की शेरवानी और खादी ही का चूड़ीदार पायजामा पहने, सिर पर तिरछी गाँधी टोपी रखे वे शुतर-बे-मुहार* की भाँति घूमते और घर वालों को इस प्रकार देखते मानो वे किसी नाली में किलबिलाने वाले अत्यन्त उपेक्षणीय, हेय, अन्धे, बुच्चे कीड़े हों।

चेतन के मन में अपने भाई का सम्मान, घर में नित्य नयी दी जाने वाली गालियों के बावजूद, बढ़ने लगा था कि उसे काँग्रेस की एक सभा देखने का सुयोग मिला और उसे ज्ञात हो गया कि भाई साहब के लिए काँग्रेस की डिक्टेटरी भी लाएडरी से अधिक महत्व नहीं रखती।

उस दिन भाई साहब ने उससे अनुरोध किया था कि वह उस दिन की सभा देखने अवश्य आये और उन्होंने यह बताया था कि प्रेस के विषय में सरकार ने जिस कठोरता की नीति से काम लिया है, उसके

*शुतरे-बे-मुहार = बेलगाम का ऊँट।

विरुद्ध प्रोटेस्ट के तौर पर समाचार-पत्र बन्द हो गये हैं। देश में चारों ओर प्रोटेस्ट सभाएँ हो रही हैं। इसी सम्बन्ध में उन्होंने भी सभा की व्यवस्था की है, जिसमें वे स्वयं एक बहुत ज़ोरदार भाषण देने जा रहे हैं। इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि उन्हें सभा में गिरफ्तार कर लिया जाये। उन्होंने चेतन से अनुरोध किया कि वह उनका भाषण सुनने अवश्य आये और चलते-चलते यह भी कहा कि यदि सम्भव हो तो एक-आध फूल-माला ज़रूर ख़रीद कर लेता आये।

जब वह चौक इमाम नसरुद्दीन में पहुँचा तो सभा प्रारम्भ हो चुकी थी। वह एक ओर खड़ा हो गया। उसने देखा कि डाइंग और ड्राई क्लीनिंग के विशेषज्ञ, राष्ट्रीय कवि सभापति के आसन की शोभा बढ़ा रहे हैं और भाई साहब एक समाचार-पत्र से किसी नेता का वक्तव्य पढ़ रहे हैं। इसी को शायद वे भाषण देना कहते थे। चेतन ने देखा कि उनके हाथ काँप रहे हैं, उनकी टाँगें काँप रही हैं, यहाँ तक कि तख़्त और उस पर रखी हुई मेज़ भी काँप रही है।

तभी एक ओर से जनता उठ खड़ी हुई और 'पोलीस' 'पोलीस' का शोर मच गया। इस भगदड़ में चेतन हाथ में माला लिये हुए समीप ही खड़ी एक बैलगाड़ी पर चढ़ गया। दूसरे क्षण उसे पता चला कि जिसे लोग पुलिस समझते थे, वह तो एक भयभीत साँड़ है। न जाने किस पाजी ने उसे सभा की ओर भगा दिया था। कभी वह डरकर एक ओर जाता, कभी दूसरी ओर, किन्तु जब साँड़ भय की सीमा पारकर, निर्भीक हो गया तो श्रोताओं ने, जो भाषण सुनने की अपेक्षा यह तमाशा देखने लगे थे, उसे रास्ता दे दिया। लोग फिर इकट्ठे होने लगे। चेतन भी बैलगाड़ी से उतरकर सभा के मध्य रखे हुए तख़्त की ओर बढ़ा। उस समय उसने देखा कि वहाँ न सभापति महाशय हैं और न वक्ता महोदय और लोग मंच पर चढ़कर हुल्लड़ मचा रहे हैं........

जब चेतन घर पहुँचा तो उसे पता चला कि वक्ता महोदय तो उससे

कहीं पहले घर पहुँच गये हैं और बड़े आराम से खर्राटे भी ले रहे हैं।

एक लम्बी अवधि के पश्चात् होशियारपुर की एक नयी लाण्डरी का विज्ञापन चेतन के हाथ लगा जिसकी प्रशंसा में वही बैत छपे थे, जो कभी लाण्डरी के हिस्सेदार उन राष्ट्रीय-कवि ने 'भारत लाण्डरी वर्क्स' की प्रशंसा में लिखे थे।

दूसरे दिन जब भाई साहब उठे तो लाण्डरी की तरह काँग्रेस की डिक्टेटरी भी उनके मस्तिष्क से विलुप्त हो गयी थी। और क्योंकि ग्रीष्म ऋतु आ गयी थी, इसलिए भाई साहब ने सरदार नन्दासिंह सोडावाटर वाले की दुकान को अपना अड्डा बनाने का निश्चय कर लिया था।

—•—

६

अपने बड़े भाई की प्रकृति के इस पक्ष पर विचार करता हुआ चेतन जब 'बाजियाँ वाला बाज़ार' में पहुँचा तो उसने देखा कि उसके भाई पण्डित बनारसी दास की दुकान पर चन्द बेफ़िक्रों के साथ ताश खेल रहे हैं। बाज़ी शुरू हो चुकी है और वे बड़ी तन्मयता से पत्ते लगा रहे हैं।

चेतन चुपचाप दुकान के तख़्ते पर जा खड़ा हुआ। तब फिर अपने पत्तों पर एक उल्लास भरी दृष्टि डालकर उन्होंने अपने सामने बैठे हुए साथी को आदेश दिया, "माँगो भी अब जल्दी कि सारी उम्र पत्ते ही लगाते रहोगे!"

धीमी आवाज़ में साथी ने कहा, "सात!"

तब दूसरे ने कहा, "आठ!"

लेकिन उनसे भी बढ़कर, जैसे उछलकर, चेतन के भाई ने कहा,

"ग्यारह !" और फिर इस बात की प्रतीक्षा किये बिना कि चौथे को भी कुछ बोलना है, उन्होंने कहा, "रंग पान" और पत्ता फेंक दिया।

चुपचाप दुकान के तख्ते पर खड़ा चेतन सोचने लगा, 'ये लोग कैसे इस व्यर्थ के खेल में समय नष्ट कर सकते हैं ! कोई काम नहीं, काज नहीं, आशा नहीं, आकांक्षा नहीं। बस, किसी तरह समय को ज़िबह किये जाते हैं !'—चारों खिलाड़ी तन्मय होकर भूत-भविष्य की चिन्ताओं को भुलाकर खेल में निमग्न थे।

वहीं खड़े-खड़े दुकान के मालिक पण्डित बनारसी दास की सारी दिनचर्या चेतन के सामने घूम गयी।

सुबह आठ बजे सोकर उठते तो दुकान खोलते। दुकान क्या खोलते इस बात की भण्डी दिखा देते कि मित्र आ सकते हैं। तब दिन-दिन भर ताश खेलते, न नहाने धोने की फ़िक्र, न खाने-पीने की चिन्ता। दादा नोन-तेल बेचते थे, इन्होंने इन सब झंझटों से छुट्टी पाकर रुई और सूत का काम शुरू कर दिया था। कौन दो-दो पैसे की चीज़ें तोलता फिरे। एक-दो देहाती फँस जाते तो उतनी बचत निकल आती जितनी उनके दादा को दिन भर तराजू से जूझकर प्राप्त न होती। दो दिन कमाते तो चार दिन बैठकर खाते। जिस दिन चार मित्र न आते उस दिन खोये-खोये से दुकान पर बैठे रहते, फिर स्वयं ही उठकर उन्हें इकट्ठा कर लाते। शादी तो इस हालत में क्या होती, रहा रोटी का प्रश्न तो उसके लिए यार-बाश मौजूद थे। कभी-कभी खुद भी दो रोटियाँ सेंक लेते। जब और कोई डौल न होता तो सेर-दो-सेर दूध पीकर पड़ रहते।

"यह भी कोई जीवन है।" और निमिष भर के लिए चेतन के सामने अपनी आकांक्षाएँ घूम गयीं—"कीड़े !"—उसने मन-ही-मन उपेक्षा से कहा, "किसी दिन योंही मौत के मुँह में जा पड़ेंगे।"

तभी उसने देखा, उसके बड़े भाई अपने एक प्रतिपक्षी के साथ

गुत्थम-गुत्था हो रहे हैं। चेतन का ध्यान उधर नहीं था। बात यह हुई कि उनके एक प्रतिपक्षी ने रंग का पत्ता छिपा लिया। लेकिन चेतन के भाई को धोखा देना आसान न था, एक थप्पड़ उसके मुँह पर जमाते और गाली देते हुए उन्होंने कहा, "यह पत्ता कब का अपनी माँ के पास छिपा रखा था।"

एक तो तीन-चार घण्टे से पीसते रहने का दुख, दूसरे चालाकी के पकड़े जाने का गुस्सा, तीसरे थप्पड़ की चोट, चौथे गाली........उसने थप्पड़ के जवाब में तानकर घूँसा दे मारा और दोनों गुत्थम-गुत्था हो गये। इससे पहले कि दूसरा कोई उनकी मदद करता, रुई तोलने के बाटों से दोनों के सिर फट चुके थे। चेतन जब चौंका तो उसने देखा कि एक को पण्डित बनारसी दास ने पकड़ रखा है और दूसरे को दुर्गादास अपनी बाहों में बाँधे हुए हैं और दोनों घायल सिंह की तरह एक दूसरे को ताक रहे हैं और दहाड़ों के नाम पर गालियाँ दे रहे हैं।

चेतन को तब याद आया कि वह तो अपने भाई को बुलाने आया था। वह आगे बढ़ा और श्री रामानन्द का हाथ थाम उन्हें घर की ओर ले चला।

फटे हुए सिर से बहता हुआ रक्त लिये जब श्री रामानन्द घर पहुँचे तो अपने पुत्र को लोहू में लथपथ देख माँ के हाथ-पाँव फूल गये। अपना सब गुस्सा उसे भूल गया और रोने की हद तक चीखकर उसने चेतन से कहा कि लपककर वह पानी गर्म करे, इतने में वह स्वयं अन्दर से कपड़ा लायी। "मैं कहता हूँ, कुछ नहीं, मैं कहता हूँ, कुछ नहीं,"—रामानन्द के यह कहते रहने के बावजूद माँ ने इस प्रकार, जैसे वह कोई दूध पीता बच्चा हो, उस ताश और शतरंज के चैम्पियन का सिर अपनी गोद में लेकर घाव धोया और पट्टी बाँध दी। तब उलाहने

के स्वर में थकी-रुआँसी आवाज़ में उसने पूछा, "कहाँ से यह चोट खा आया तू ?"

चेतन ने बता दिया कि खेलते-खेलते झगड़ा हो गया था।

तब चेतन की भाभी श्रीमती चम्पावती (जो इस समय तक उधर से उदासीन अपने कमरे में बैठी ब्लाउज़ सी रही थीं) वहाँ आ गयीं और चीख़कर बोलीं, "मैं कहती हूँ आपको यही सब कुछ करना है तो मुझे मायके भेज दो।"

चेतन के भाई तब पहली बार कराहे। तब बीमार बनने ही में उन्होंने अपनी कुशल समझी। झगड़े का सिगनल होता देख चेतन ने माँ से कहा कि खाना परोस दो, मैं नीचे बैठक ही में जाकर खा लूँगा। और झटपट वह थाली लेकर वहाँ से खिसक गया।

नीचे अपने कमरे में जाकर खाना खाने के बाद चेतन ने पानी बाहर कुएँ ही से पी लिया। ऊपर जाना उसे उचित नहीं लगा। फिर जैसे निश्चिन्त होकर वह माँ के आदेशानुसार बस्ती ग़ज़ाँ के पं० दीनबन्धु को चिट्ठी लिखने लगा। ऊपर होने वाले झगड़े का स्वर उसकी तन्मयता को भंग न करे, इस विचार से उसने किवाड़ भी लगा लिये और कलम दवात लेकर बड़े इत्मीनान के साथ बैठ गया।

तब ऊपर उठने वाले तूफ़ान ने कितना ज़ोर पकड़ा, कितने बादल गरजे, कितना पानी बरसा, यह सब उसे मालूम नहीं हुआ। कभी-कभी बन्द किवाड़ों को भेद कर आने वाले भावज के कर्कश स्वर से उसे तूफ़ान के पूरे ज़ोरों पर होने का आभास मिल जाता था।

कलम दवात ले बैठने पर भी वह चिट्ठी न लिख सका, क्योंकि चिट्ठी लिखना और खाना खाना दोनों एक-सी बातें न थीं, और फिर उस समय जबकि ऊपर तूफ़ान उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था। तभी जब वह हैरान था कि क्या करे और क्या न करे, उसे बाहर किसी अपरिचित कण्ठ की आवाज़ सुनायी दी—"रामानन्द, रामानन्द !"

कोई आगन्तुक उसके भाई का नाम लेकर पुकार रहा था।

वह क्षण भर रुका, किसी ने फिर बैठक के किवाड़ खटखटाये। उठकर उसने दरवाज़ा खोला। देखा—पतले छरहरे शरीर, लम्बी नाक, छोटी ठोड़ी और गोरे रंग का एक युवक नफ़ीस सूट पहने खड़ा है।

"रामानन्द है?" उसने पूछा।

"जी, हाँ।"

"कहना हुनर आया है।"

"हुनर साहब?"

"हाँ।"

और जैसे निमिष-मात्र के लिए आगन्तुक को आँखों से पीकर चेतन भागता हुआ ऊपर पहुँचा और जाकर भाई को बड़े उत्साह से उसने यह समाचार दिया कि हुनर साहब आये हैं।

"हुनर!" चेतन के भाई उछलकर उठे। अपने उस मित्र के आगमन को जैसे दैवी सहायता जानकर उस झगड़े से अपना दामन बचा, वे सीढ़ियों की ओर लपके।

माँ ने कहा, "खाना तो खाते जाओ।"

"मैं आज खाना नहीं खाऊँगा," यह कहते हुए वे जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गये।

तब उनकी पत्नी ने चीखकर क्या कहा, वह सब उन्होंने नहीं सुना।

—•—

७

उस लम्बे क़द के छरहरे-से युवक को चेतन मुग्ध-सा खड़ा देखता रह गया। उसके बड़े भाई ने कितनी बार उसे इस युवक की कवित्व-

शक्ति की कहानियाँ सुनायी थीं। किस प्रकार कॉलेज के दिनों ही में वह आशु कविता कर लेता था।

हलवाई ख़ुश कि दाम ज़्यादा किये वसूल
मैं ख़ुश कि रेवड़ियों में चवन्नी भी आ गयी

या

तार इस मतलब का आया है मुझे भूपाल से
रात भर भैंसे की दुम हिलती रही भूचाल से

ये और ऐसे कितने ही उनके शेर चेतन ने अपने भाई से सुनकर याद कर रखे थे। तब उसे क्या मालूम था कि ये हुनर साहब के नहीं, बल्कि हास्य-रस के एक और प्रख्यात कवि के हैं।

लाहौर के एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र के सम्पादन-विभाग में हुनर साहब काम करते थे। चेतन की बड़ी भारी आकांक्षा थी कि वह भी किसी समाचार-पत्र का सम्पादक बने। इसीलिए हुनर साहब के प्रति उनके मन में वही भाव था जो किसी महान् व्यक्ति के दर्शनार्थ आने वाले श्रद्धालु के मन में होता है। हुनर साहब की बातें, उनकी आकृति, उनकी वेश-भूषा, उनका सभी कुछ उसे साधारण लोगों से कुछ भिन्न जान पड़ा।

तीनों एम्प्रेस गार्डन की ओर जा रहे थे। हुनर साहब लाहौर की दिलचस्पियों का ज़िक्र कर रहे थे—वहाँ के मुशायरे, वहाँ की सम्पादक मण्डली, वहाँ की मजलिसें—और चेतन मुग्ध-सा सुन रहा था। उसकी दृष्टि तो उनके मुख से हटती ही न थी। उस चेहरे की एक-एक भंगिमा उसके मन पर अंकित हो रही थी और हुनर साहब की बातें उसके कानों से होकर सीधे उसके हृदय में स्थान बना रही थीं। उसके मस्तिष्क में लाहौर का वातावरण अपनी समस्त विभिन्नता और मनोरंजकता के साथ घूम जाता और अपने सीमित क्षेत्र का विचार करके

उसका दम घुटने-सा लगता और उसे महसूस होता कि अध्यापक तो गुलामों का गुलाम है और सम्पादक तो सम्राट है, अपने विचारों का बादशाह—स्वच्छन्द और स्वतन्त्र!

तीनों जाकर लॉन में बैठ गये। तब हुनर साहब ने धीमे स्वर में गाकर एक शेर सुनाया :

फिर एक तक़सीर कर रहा हूँ. ख़िलाफ़े-तक़दीर कर रहा हूँ
फिर एक तदबीर कर रहा हूँ. ख़ुदा अगर क़ामयाब कर दे

और कहने लगे, यह हफ़ीज़ का शेर है—जालन्धर के मशहूर कवि हफ़ीज़ का और उन्हें इसकी कला पर नाज है। शिमले के एक मुशायरे में हम सबको बुलाया गया था, वहीं हफ़ीज़ ने यह शेर लिखकर सुनाया। सब सिर धुनने लगे। तब मैंने अपने एक शागिर्द 'साहिर' को एक शेर लिखकर दिया। इत्तफ़ाक देखिए, उसकी बारी पहले आ गयी। उसने वह शेर पढ़ा तो लोग कुर्सियों से उछल पड़े। वह दाद मिली कि हफ़ीज़ साहब का मुँह ज़रा-सा निकल आया। जब उनकी बारी आयी तो उन्होंने अपना शेर पढ़ा ही नहीं।

चेतन ने उत्सुकता से कहा, "कृपया अपना वह शेर सुनाइए!"

गर्व के साथ सिर उठाकर हुनर साहब ने शेर सुनाया :

मैं अपनी तक़ीदर का हूँ कायल, हरीफ़ तदबीर पर है मायल
ख़ुदा के दर पर हैं दोनों सायल, जिसे ख़ुदा कामयाब कर दे

और उछलकर चेतन ने कहा, "वाह तक़दीर का कायल होना तो यही है, 'जिसे ख़ुदा कामयाब कर दे।' 'जिसे' ने यह बात पैदा कर दी है कि वाह क्या कहने हैं!"

उस समय चेतन को क्या मालूम था कि जिस शेर पर वह सिर धुन रहा है वह तो किसी दूसरे मस्तिष्क की उपज है और हुनर साहब को तो वह कहानी गढ़ने ही की दाद दी जा सकती है। लेकिन तब चेतन के हृदय में श्रद्धा का अगाध समुद्र कहीं से उमड़ पड़ा और उसका जी

चाहा कि हुनर साहब के चरण चूम ले।

इसके बाद हुनर साहब ने कई दूसरे प्रसिद्ध उर्दू कवियों की पूरी की पूरी ग़ज़लें अपने नाम से सुना डालीं। पर इसे जालन्धर की सीमित दुनिया में रहने वाला, आर्य-समाजी कॉलेज में बी० ए० तक हिन्दी पढ़ने वाला चेतन क्या जानता।

रात को हुनर साहब के घर पर मजलिस जमी। वे अपने बहनोई साहब के यहाँ ठहरे थे। शेर पर शेर, ग़ज़ल पर ग़ज़ल सुनाते जाते थे। शेर उनकी ज़बान से ऐसे निकले पड़ते थे, जैसे वर्षा-ऋतु में अनायास ही पहाड़ पर झरने फूट पड़ते हैं। उनका मस्तिष्क काव्य का एक समुद्र था, जिसकी ऊर्मियाँ असंख्य और अगनित थीं।

चेतन के मन में कभी-कभी यह सन्देह अवश्य सिर उठाता कि इतनी-सी आयु में उन्होंने इतनी ग़ज़लें कैसे कह डालीं और इतना कुछ कहने पर भी उनका कोई संग्रह क्यों नहीं छपा। पर प्रायः प्रत्येक ग़ज़ल के साथ किसी-न-किसी कवि-सम्मेलन की जो एक कहानी हुनर साहब सुनाते थे, उसके कारण वह सन्देह ज़ोर न पकड़ पाता और संग्रह के बारे में जब उसने झिझकते हुए प्रश्न किया तो उन्होंने कहा कि प्रकाशक तो दयानतदार मिलते नहीं, फिर कोई संग्रह छपवाये भी तो कैसे और क्यों ?

अन्त में एक बजे के लगभग हुनर साहब ने अपनी एक कहानी सुनानी शुरू की जो उन्होंने हाल ही में लिखी थी। तब चेतन के बड़े भाई जम्हाइयाँ लेने लगे। दिल-ही-दिल में अपने इस असाहित्यिक भाई को उनकी अरसिकता पर कोसते हुए चेतन ने हुनर साहब से स्वयं अपनी आरम्भिक कोशिशों का ज़िक्र किया और सकुचाते हुए अपने दो-एक शेर भी सुनाये और कहा कि कहानी लिखने में उसकी रुचि अधिक है।

"तुम कहीं लाहौर होते"—हुनर साहब ने चेतन का उत्साह बढ़ाते हुए कहा. "ऐसी प्रतिभा है तुममें कि कुछ ही दिनों में चमक उठते।"

भाई साहब की जम्हाइयाँ उत्तरोत्तर बढ़ रही थीं। इसलिए चेतन ने छुट्टी ली और मन-ही-मन हुनर साहब को अपना गुरु मान लिया और निश्चय कर लिया कि जैसे भी हो वह लाहौर जाकर दम लेगा।

घर आकर उसने सबसे पहले उन पं० दीनबन्धु को चिट्ठी लिखी कि वह लाहौर अवश्य जायगा। विवाह का जुआ वह अपने गले में नहीं डालना चाहता। उसकी आकांक्षाएँ बड़ी हैं। उसके रोज़गार का भी कोई भरोसा नहीं। उनको या उनकी लड़की को व्यर्थ का कष्ट होगा।

—०—

८

दूसरे दिन चेतन अपने बड़े भाई को बताये बिना हुनर साहब को स्टेशन पर छोड़ आया और उस प्रोत्साहन के बदले में, जो उसके इस नये गुरु ने उसे दिया था, पाँच रुपये का एक अकिंचन-सा नोट भी उन्हें भेंट कर आया।

बात यह थी कि स्टेशन पर जाकर हुनर साहब को अचानक मालूम हुआ कि उनका बटुआ घर ही पर रह गया है। वे वापस चलने को तैयार हो गये थे। पर चेतन की श्रद्धा को गवारा न हुआ कि वे पाँच रुपये के लिए वह गाड़ी छोड़ दें, जिस पर जाना उनके कथनानुसार उनके लिए अत्यन्त आवश्यक था।

जब वह स्टेशन से घर वापस आया तो घर के बाहर मुहल्ले ही में उस 'लेक्चर' को सुनकर जो उसके भाई को ऊपर पिलाया जा रहा

था, और उन 'मृदु वचनों' से जो एक पुंसत्व भरी आवाज़ में उन पर निरन्तर बरसाये जा रहे थे, चेतन ने जान लिया कि उसके पिता आ गये हैं।

अपने पिता के प्रति चेतन के मन में सदैव एक भय-सा वर्तमान रहता था। जब वे अपने जाने धीमे स्वर में बात कर रहे होते तो दूर से ऐसा लगता जैसे लड़ रहे हैं—'माँ पेउ दिया गालाँ, दुद्ध घेउ दिया नालाँ'*—पंजाबी भाषा की इस कहावत को वे सर्वथा सत्य मानते थे। इसलिए पुत्रों से बातें करते समय वे उन्हें निरन्तर दूध-घी के ये घूँट पिलाया करते थे।

हुनर साहब को गाड़ी पर सवार कराने में चेतन को देर हो गयी थी। पिता की आवाज़ सुनकर उसका माथा ठनका। उसने कोशिश की कि चुपचाप नीचे अपने कमरे में जाकर कपड़े बदल ले और स्कूल चला जाय। शलवार, क़मीज़ और कोट पहन वह पगड़ी बाँधने ही लगा था कि जल्दी में शीशा उसके हाथ से गिर पड़ा और उसे आया जानकर उसके पिता ने आवाज़ दे दी।

उनकी आवाज़ सुनकर चेतन बिना पगड़ी बाँधे ऊपर चला गया।

"कहाँ गये हुए थे?"

उसके पिता ने इस प्रकार चेतन की ओर देखा जैसे वह पाँच-छः वर्ष का बच्चा हो जिसे झिड़कना और डाँटना अत्यन्त आवश्यक हो।

चेतन के कानों में अपने पिता का यह प्रश्न गूँज गया। उससे उत्तर तुरन्त न बन पड़ा। गला उसका सूखने-सा लगा, थूक निगलकर सिर्फ़ इतना ही कहा, "अपने एक मित्र को गाड़ी पर चढ़ाने गया था।"

तब चेतन के बड़े भाई ने कुछ कहने के लिए कन्धे हिलाये। दरअसल वे हुनर साहब के बारे में कुछ कहना चाहते थे, पर चेतन की आँखों में अनुनय का जो भाव था, उसका और उन झिड़कियों का

---

*माँ बाप की गालियाँ दूध-घी के घूँट

ख़याल करके जो उन्हें अभी-अभी मिल रही थीं, वे कन्धे हिलाकर ही चुप हो रहे।

"किस मित्र को छोड़ने गये थे?" पिता गरजे।

"लाहौर के एक मित्र को।" फ़र्श में आँखें गाड़े चेतन ने उत्तर दिया।

पर इससे पहले कि अपने कड़कते स्वर में (जो साधारणतः मुहल्ले के सिरे पर पंसारी की दुकान तक जा पहुँचता था) चेतन के पिता उससे पूछते, "किस मित्र को? मैं उसका नाम पूछता हूँ?" कि बाहर मुहल्ले में जैसे एकदम कोलाहल-सा उठ खड़ा हुआ और एक स्त्री के रोने की आवाज़ उच्च से उच्चतर होने लगी।

जालन्धर के उस कल्लोवानी मुहल्ले में ऐसा कोलाहल और ऐसा क्रन्दन रोज़ की बात थी। कुएँ की चर्खियों से पानी भरने पर; एक ओर लगी हुई टोंटियों से नहाने या दूसरी ओर लगी पत्थर की सिल पर कपड़े धोने या फिर मुहल्ले के चौक में खूँटों से बँधी हुई गायों, भैंसों या उन्हें छोड़ने वाले या उनके द्वारा उठाकर फेंक दिये जाने वाले बच्चों पर; दीवारों पर उपले थापने या उन उपलों को चुराकर ले जाने वालों पर; किवाड़ों के आगे घर का कूड़ा-करकट फेंकने या उस कूड़े-करकट के फैलाये जाने पर और यदि कुछ नहीं तो योंही बे-बात की बात पर प्रायः लड़ाई-झगड़ा हुआ करता था।

किन्तु रोज़ की बात होने पर भी लड़ाई में कुछ ऐसा आकर्षण है कि आदमी अनायास ही अपना काम छोड़कर उसे देखने लगता है। इस कोलाहल को सुनकर चेतन के पिता और उसके बड़े भाई अचानक उठकर बैठक में चले गये और माँ रसोई-घर की खिड़की में जा खड़ी हुई।

चेतन ने अवसर उपयुक्त समझा। स्कूल जाने में पहले ही देर हो गयी थी और हेडमास्टर की झिड़कियों का भी उसे डर था, इसलिए

वह नीचे को भागा। पगड़ी बाँधना भी उसने उचित न समझा। खूँटी से टोपी उतारकर सिर पर रखी और चल पड़ा।

वह मुहल्ले ही में था और लड़ने वालों पर एक उपेक्षा भरी दृष्टि डालकर खिसका जा रहा था कि ऊपर बैठक के बरामदे से उसके पिता की कड़कती आवाज़ आयी—

"स्कूल से सीधे घर आना!"

चेतन ने पीछे मुड़कर "अच्छा जी" कहा और भाग चला।

रास्ते भर वह कभी अपने पिता की क्रूरता, कभी मुहल्ले वालों की अपढ़ता, कभी हुनर साहब के विशाल अनुभव और कभी अपने सीमित घेरे की बात सोचता रहा। जब उसे खयाल आया कि उसे तो बस्ती के पं० दीनबन्धु को चिट्ठी डालनी थी तो वह स्कूल के फाटक पर पहुँच चुका था। उसे देर हो गयी थी और उसे विश्वास था कि हेडमास्टर ज़रूर गुस्सा होंगे और वह घबराकर मन-ही-मन हेडमास्टर के प्रश्नों का उत्तर सोचने लगा।

—०—

६

चेतन के पिता पं० शादीराम गठे हुए शरीर के पाँच फुट तीन इंच लम्बे रोबीले आदमी थे—गोल मुख, घुटा हुआ सिर और बड़ी-बड़ी ऐसी मूँछें जिनकी नोकें कानों तक पहुँचती थीं। आँखों में नशे के कारण लाल-लाल डोरे और कड़कती हुई कर्कश आवाज़—लड़कपन ही से न केवल पहले दर्जे के उद्दण्ड थे, वरन् पक्के शराबी भी।

चेतन के दादा पं० रूपलाल पटवारी थे। चेतन की दादी उसी समय परलोक सिधार गयी थीं जब चेतन के पिता केवल तीन वर्ष के थे। तब चेतन के पिता की देख-भाल का सब बोझ चेतन की परदादी

गंगादेई के सिर आ पड़ा था।

परदादी गंगादेई अत्यन्त पुराने और संकुचित विचारों की, सहस्रों देवी-देवताओं, पीरों-फ़क़ीरों में विश्वास रखने वाली और पुरोहिताई को प्रत्येक ब्राह्मण का धर्म समझने वाली, उद्दण्ड और कर्कशा ब्राह्मणी थीं। उनके समय का अधिक भाग अपनी पुरोहिताई और धर्म को बनाये रखने में लग जाता था, जो बचता था, उसमें कुछ लड़ाई-झगड़े और शेष पीरों-फ़क़ीरों की भेंटें हो जाता। इन सब झमेलों में अपने पोते की देख-भाल के लिए उन्हें जितना समय मिलता होगा, उसकी कल्पना की जा सकती है।

रहे चेतन के दादा पण्डित रूपलाल, सो वे भला अपने लड़के की खबरगीरी करते या पटवारीगीरी? अपने हलके के अतिरिक्त रियासत की लम्बाई-चौड़ाई में उन्हें घूमना पड़ता था! फिर वे अपनी इस रस्मों, रिवाजों, प्रथाओं और परम्पराओं की बेड़ियों में जकड़ी, धर्मपरायण माँ के अन्ध-भक्त थे। जो त्योहार वह मनाती, वे भी मनाते। वे चण्डी के उपासक थे और (उनके अपने कथनानुसार) इसी के फल-स्वरूप उनके स्वर से कर्कशता और स्वभाव में क्रोध की मात्रा कुछ अधिक थी, जो उनसे पं० शादीराम और फिर चेतन और उसके भाइयों को पैतृक-सम्पत्ति के रूप में मिली थी। किन्तु इस समस्त कर्त्तव्यपरायणता, धर्मनिष्ठा और कर्कशता के होते हुए भी उनके वक्ष में ऐसा भोला-भाला दिल था जिसे संसार के तीन-पाँच की कुछ खबर न थी। उनकी माँ जो कुछ कह देतीं, उसे ही वेद-वाक्य समझकर वे मन में रख लेते। इसलिए जब पाँचवें दर्जे ही में पोते को बोर्डिंग-हाऊस में दाखिल कराने के लिए परदादी गंगादेई ने अपने इस आज्ञाकारी पुत्र को आदेश दिया तो किसी प्रकार की आनाकानी किये बिना, पण्डित रूपलाल ने उसे मान लिया।

यों इस हालत में इसके सिवा चारा भी न था। कई बार पिता ने

शादीराम को अपने साथ कपूरथला ले जाकर रखा। पर 'हुक्मे हाकिम मर्गे मफ़ाजात*।' तहसीलदार, कानूनगो तथा माल अफ़सर जब दौरे पर होते तो उन्हें भी अपने हाकिमों की सुविधा के विचार से उनके साथ-साथ भागना पड़ता। नहाकर वे साफ़ा निचोड़ रहे होते कि हुक्म आ जाता और बालक शादीराम को मुहर्रिर के सुपुर्द कर वे सारा दिन बिना पूजा किये और इसीलिए बिना खाये-पिये भागते फिरते। इसलिए जब-जब अपने पुत्र को वे ले गये, एक महीना भी न गुज़रा कि वापस ले आये।

परदादी ने भी बालक शादीराम को अपने साथ यजमानों के यहाँ ले जाना शुरू किया था। किन्तु इतने यजमान थे और उनके यहाँ इतने दिन रहना पड़ता था कि उनके इस तजरुबे के फल-स्वरूप पं० शादीराम दो-तीन वर्ष एक ही श्रेणी में रहे।

एक तीसरी बात भी थी जिसने परदादी गंगादेई को यह प्रस्ताव करने पर विवश कर दिया और वह थी शादीराम की उच्छृङ्खलता। प्रायः जब परदादी बाहर जातीं, अपने पोते को किसी पड़ोसिन के घर छोड़ जातीं। माता-पिता तथा दादी के डर से मुक्त होकर बालक मनमाना उत्पात मचाता। इस नन्हीं-सी आयु ही में वह अखाड़े जाता, लड़ाइयाँ करता और सिर फोड़ता-फोड़वाता। इस उद्दण्ड बच्चे को होस्टल में दाख़िल कराने के अतिरिक्त परदादी को कोई चारा दिखायी न दिया।

लेकिन होस्टल में आकर शादीराम और भी उद्दण्ड हो गये। परदादी जब भी यजमानों के यहाँ से आतीं, होस्टल में पहुँचकर अपने पोते को कुछ दिनों के लिए घर ले आतीं। शादीराम उनसे यह कहकर कि होस्टल जा रहे हैं और होस्टल में यह बहाना बना करके कि घर जा रहा हूँ, जहाँ जी चाहता चले जाते। कई-कई दिन मित्रों के

*हाकिम की आज्ञा आकस्मिक मृत्यु के समान है।

घर रहते। परदादी को जभी पता चलता जब वे फिर होस्टल पहुँचतीं और वहाँ शादीराम को न पातीं।

हारकर परदादी ने आठवें दर्जे ही में पण्डित शादीराम का विवाह कर दिया। इससे उनकी सरगर्मियों में कमी तो क्या आती, हाँ, इस विवाह की खुशी में उन्होंने अपने घनिष्ठ मित्र देसराज के घर पहली बार मदिरा का भी रसास्वादन किया।

बात यह है कि पहले-पहल उन्होंने इसे 'दवा' समझा था। देसराज के पिता रिटायर्ड सब-जज थे। खाने-पीने वाले आदमी थे। और खाने-पीने वाले पिताओं के पुत्र (यदि उनकी माताएँ उन्हें शिक्षा न दें) सहज ही उनके अनुकरण में खाने-पीने लगते हैं।

देसराज के पिता बाज़ार शेखाँ में जाने के बदले घर में मँगाकर पीते थे। दोनों लड़के उन्हें रोज बोतल से शीशे के नन्हें से गिलास में उँड़लकर कुछ पीते और फिर सरूर में आकर कुछ मुखर होते देखते। देसराज के पिता हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ आदमी थे। उनके बीमार होने की कल्पना भी न की जा सकती थी। तब लड़कों ने समझा कि यह कोई स्वादिष्ट शक्ति-वर्द्धक औषधि है। उनकी उत्सुकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गयी। आखिर शादीराम के विवाह की खुशी में उन्होंने इस शक्ति-वर्द्धक औषधि का रसास्वादन करने की ठान ली। देसराज बोतल ले आये। दोनों ने एक-एक घूँट पिया। अत्यन्त कड़ुवी लगी। उन्होंने समझा कि दवा मज़ेदार नहीं है, शक्ति-वर्द्धक चाहे कितनी भी क्यों न हो। यह भी निश्चय उन्होंने कर लिया कि फिर इसे न पियेंगे। देसराज उसे वहीं-की-वहीं रख भी आया था। पर दूसरे ही दिन जैसे किसी पूर्व-निश्चय निर्णय के अनुसार दोनों मित्र आधी छुट्टी के समय घर आये और फिर वही एक-एक घूँट!

उनकी उद्दण्डता, उच्छृङ्खलता, निर्भीकता और उदारता ने मिलकर चेतन के पिता को अपने जीवन में उतनी हानि न पहुँचायी थी

जितनी इस तरल आग के रसास्वादन ने पहुँचा दी। क्योंकि तीन वर्ष मैट्रिक ही में रहकर जब चौथे वर्ष पं० शादीराम ने परीक्षा पास की तो देसराज के उन सब-जज पिता की कृपा से वे पक्के शराबी बन चुके थे।

—०—

१०

रही चेतन की माँ, सो वह उन पतिव्रता स्त्रियों में से थी, जिनके मस्तिष्क धर्मशास्त्रों, पण्डितों और पुरोहितों ने बुरी तरह जकड़ रखे हैं। स्वर्ग पाने के लिए ही वे पति को परमेश्वर समझती हों, यह बात नहीं। बचपन ही से उन्हें बताया जाता है कि पति अन्धा, काना, लूला, लँगड़ा, निर्धन, शराबी, जुआरी—कैसा भी क्यों न हो, पत्नी के लिए परमेश्वर है, उसकी अवज्ञा करना महापाप है। इसलिए पतिव्रत-धर्म उनके स्वभाव का एक अंग बन जाता है।

उसके पिता पं० शिवराम मिश्र होशियारपुर में पण्डिताई करते थे। उनकी पहली पत्नी चेतन की माँ को छोड़कर तब ही मर गयी थीं जब वह केवल तीन वर्ष की थी। उसके पिता घर से अत्यन्त विपन्न थे। यजमान भी उनके इतने अधिक न थे। इसलिए दूसरी जगह उनका विवाह शीघ्र न हो सका था। अन्त में उसकी माँ की मृत्यु के पूरे सात वर्ष बाद, जब उसके पिता एक दिन प्रगट किसी दूसरे की बारात में शामिल होने के लिए गये थे और उसके ताऊ ने उसके लिए कई तरह की चीज़ें ला देने का वादा भी किया था तो आश्चर्य-चकित बालिका ने देखा था कि विवाह से मिलने वाली मिठाई आदि की गठरी के स्थान पर वे स्वयं बहू को ही ले आये थे।

उस समय हर्ष-उल्लास और कई हैरान कर देने वाली रस्मों और

बधाइयों के मध्य उसकी बुआ ने उसके बार-बार पूछने पर कहा था, "यह तेरी नयी माँ है।"

अपनी सगी माँ के सम्बन्ध में लाजवती को (यही चेतन की माँ का नाम था) कुछ अधिक ज्ञान न था। बहुत हल्का-सा, जैसे युगों पहले देखे स्वप्न का-सा अपनी माँ का चित्र उसकी आँखों के सामने आया करता था। शायद पिता के रूखे व्यवहार के कारण स्नेह-विहीना लड़की की कल्पना ने उसकी माता का चित्र उसके मानस-पट पर बना दिया था। उसे कुछ ऐसा आभास था, जैसे उनके अँधेरे आँगन में, जहाँ सील का सदैव राज्य रहता था और ऊपर से खुला रहने पर भी जहाँ प्रकाश की किरणें बड़ी डरी-सहमी प्रवेश करती थीं। एक खाट पर मैली-सी, कहीं धर्मशान्ति अथवा शुद्धि में आयी हुई, रज़ाई में लिपटी उसकी माँ पड़ी है—पीला ज़र्द चेहरा, पिचके कल्ले, बन्द होती-सी आकांक्षा और खुमार से भरी आँखें और काँपता-सा हाथ जो उसने उसके सिर पर रखा था। ओठों पर पपड़ियाँ जमी हुई थीं। उसके सिर पर प्यार का हाथ रखते हुए उन्हीं सूखे ओंठों से उसने कुछ कहा भी था। पर वह सब उसे याद नहीं। यह चित्र कई बार चेतन की माँ ने देखा था। जब-जब कष्ट, उपेक्षा, निरादर, स्नेहाभाव के कारण वह विह्वल हुई, अपनी माँ की यही मूर्ति उसके सामने आती रही और उसके हृदय को शान्ति मिलती रही।

लेकिन उसकी यह नयी माँ तो उसकी समवयस्क ही थी। बहुत होगा तो दो-एक वर्ष बड़ी होगी। एकदम देहातिन थी—असभ्य और गँवार। न उसे बाल बाँधने का सहूर था, न कपड़ा पहनने की तमीज़! नाम था मालाँ (मालिन का संक्षिप्त) और वह प्रयत्न करने पर भी नाम के अतिरिक्त 'माँ' या 'भाभी' या 'बीबी' कहकर उसे न बुला सकी थी।

दबे-दबे, घुटे-घुटे, माँ-बाप के स्नेह से वंचित, बच्चों की बुद्धि या

तो बिलकुल जड़ हो जाती है या फिर उसमें एक असाधारण प्रखरता आ जाती है। बचपन में चेतन की माँ की बुद्धि भी तीक्ष्ण थी, अल्पवयस ही में वह बहुत कुछ समझने सोचने लगी थी। उसकी सहेलियाँ पास के मुहल्ले की पाठशाला में जातीं, पर उसे स्कूल जाने की मनाही थी। आज-कल की तरह शिक्षा व्यापक न हुई थी और पुराने विचारों के उसके पिता इतनी बड़ी लड़की का घर से बाहर निकलना अच्छा न समझते थे। लेकिन चेतन की माँ ने अपनी सहेलियों की पुस्तकों ही से उनका पढ़ा हुआ पाठ पूछ-पूछकर बहुत कुछ सीख लिया था, यहाँ तक कि एक दिन उसने जगदीश से सारे किस्से लेकर पढ़ डाले थे।

जगदीश उसके फूफा का लड़का था। वहीं रहा करता था। पढ़ता-पढ़ाता तो कुछ न था, पर किस्सा जो भी नया छपता, ख़रीदकर घर ले आता। एक दिन उन्हीं किस्सों में से एक को पं० शिवराम ने अपनी लड़की के हाथ में देख लिया। तब ढूँढ़-ढूँढ़कर सब किस्सों को तो उन्होंने आग लगा दी और साथ ही लड़के को भी पिता के घर भेज दिया, और चेतन की माँ को इतना फटकारा कि वह रो दी। उन किस्सों में क्या बुराई है, यह तब उस सरल, निरीह भोली-भाली बालिका को मालूम न था।

तब पढ़ाई छोड़कर चेतन की माँ ने अपना ध्यान सीने-पिरोने और कशीदे की ओर लगाया था। अपनी सहेलियों ही से पूछ-पूछकर उसने बहुत कुछ सीख लिया था। तब यह बुद्धि और यह सुघड़ता वह अपनी इस समवयस्क विमाता को सुसंस्कृत बनाने में लगाने लगी थी। उसके बाल वही गूँथती, उसे कपड़े वही पहनाती, उसे सीना-पिरोना वही सिखाती और इस तरह अपनी 'माँ को योग्य बनाने का प्रयास करती। लेकिन न पिता ने इस काम के लिए उसकी प्रशंसा की और न माता बनकर आने वाली इस समवस्यक

लड़की ने। पिता कठोर थे और माता को प्रशंसा करने का सहूर ही न था।

लेकिन चेतन की माँ इतने ही से प्रसन्न थी कि एक दिन पण्डित शादीराम से उसका विवाह हो गया।

यह ठीक है कि ब्याह के बाद तत्काल वह ससुराल न गयी और पुरानी प्रथा के अनुसार तीन बरस और अपने मायके में रही। किन्तु इन तीन वर्षों में लड़की से वधू बन जाने पर भी उसके दैनिक जीवन में कोई अंतर नहीं आया। हुआ केवल इतना कि घर में उसका जो थोड़ा बहुत मान था, वह भी कम हो गया।

बात यह हुई कि उसके चाचा का विवाह भी इस बीच में अमृतसर में हो गया और उसकी चतुर चची ने आते ही उसकी विमाता को अपने वश में कर लिया। इसलिए जब तीन वर्ष बाद एक दिन अचानक पं० शादीराम उसे लेने पहुँचे तो उसे दुख नहीं हुआ। उसकी आँखें भर आयी थीं, और चलते समय वह रोई भी खूब थी। पर यह रोना उस खुशी के लिए न था जो मायके में लड़कियों को प्राप्त होती है, बल्कि उस खुशी के अभाव के लिए था।

तभी जब वह ताँगे में बैठी थी और पिता ने ठण्डे प्यार का हाथ उसके सिर पर फेरा था तो चेतन की माँ के सामने सीलदार आँगन के अँधेरे में पड़ी अपनी उस रोगिनी माँ का चित्र घूम गया था और उसने दुपट्टे से मुँह ढाँप लिया था।

जिस मकान में लाकर पं० शादीराम ने उसे ठहराया था, वह उनका अपना मकान न था। सहज-ज्ञान ही से चेतन की माँ ने यह जान लिया था। क्योंकि मायके में अपनी ससुराल के पुराने जीर्ण-शीर्ण घर के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ भनक उसके कान में पड़ चुकी थी और मन-ही-मन उसने निश्चय भी कर लिया था कि बुरा तो, भला तो, जो

भी हो, वह उसे ही स्वर्ग समझेगी। इसलिए उसने अपने पति से इच्छा प्रकट की थी कि जैसा भी हो, वह अपने ही घर जायगी। जब सदा दूसरे के घर नहीं रहा जा सकता और एक दिन अपने घर जाना ही है तो क्यों न अभी से वहाँ रहने का स्वभाव डाला जाय।

और जब जीर्ण-शीर्ण ड्योढ़ी से गुज़रकर (पैरों की आहट ही से जिसकी छत और दीवारों की मिट्टी गिरती थी) वह आँगन में गयी तो कुछ क्षण मूक मर्माहत-सी खड़ी रह गयी थी। मायके में उसके पिता का घर भी पुराना ही था, अँधेरा भी था और सील भरा भी। सुन्दर भी वह कभी भी न था। लेकिन वह घर तो था। यह—यह तो खण्डहर था!

आँगन कूड़े-करकट से अटा पड़ा था। कहीं कोयले बिखरे थे और कहीं-कहीं कौवों तथा चीलों द्वारा आकाश से फेंकी हुई हड्डियाँ। सामने के दालान की दीवार में छोटी ईंटें साफ़ दिखायी दे रही थीं, मिट्टी शायद वर्षा से धुल गयी थी। रसोई-घर के किवाड़ जर्जर थे और कुण्डी लगी रहने पर भी दोनों किवाड़ों के बीच इतनी जगह बन जाती थी कि पूरी-की-पूरी बाँह अन्दर बड़ी सुगमता से जा सकती थी। चूहे तो क्या बिल्ली भी चाहे तो तनिक सिकुड़कर घुस सकती थी। इसी दरवाज़े से निकलकर धुएँ ने रसोई-घर के बाहर की दीवार को बिलकुल काला कर दिया था। बायीं ओर का दालान जला पड़ा था और गिरी हुई छत का मलबा और कोयले दरवाज़े से बाहर तक आ गये थे। इसके साथ ही ड्योढ़ी की ओर को एक बिना किवाड़ों का खुला रसोई-घर और था। आँगन की मुँडेर निरन्तर वर्षा और लिपाई-पुताई के अभाव के कारण नंगी हो गयी थी और सामने दालान की मुँडेर पर एक बिलकुल नंग-धड़ंग व्यक्ति एक टाँग इधर और एक टाँग उधर किये बैठा शून्य ही से बातें कर रहा था। हाथों को एक-दूसरे के पास लाकर उनसे हवा में आदमी बनाता हुआ दाँत किटकिटाकर 'लोहे का

आदमी, लकड़ी का आदमी, ज़ा !' कहता हुआ वह शून्य में बने हुए उन आदमियों को न जाने किधर उड़ा रहा था।

क्षण भर के लिए चेतन की माँ उस मिट्टी-सने, जैसे वर्षों से स्नान-वंचित उस व्यक्ति को देखती रही। उसने पति के शब्द, 'चुन्नी है पागल' नहीं सुने। तभी उस पागल ने उनकी ओर देखा और दाँत किटकिटाकर लोहे तथा लकड़ी के दो आदमी बनाकर उनकी ओर छोड़ दिये। चौड़ा मस्तक, चपटी मोटी नाक, ओठ कटे होने के कारण बाहर दिखायी देते दाँत, खड़े-खड़े रूखे बाल, काली नंगी स्वस्थ देह !—डरकर चेतन की माँ दो क़दम पीछे हट गयी थी।

तब उसके पति ने छत पर जाकर उस पागल को भगा दिया और आकर तनिक उल्लास से बताया कि वह उनका पागल चचा है और यह जला दालान और खुला रसोई-घर भी उसी का है, और उसी ने पागलपन की झोंक में इस दालान को आग लगा दी थी। फिर कुछ गर्व के साथ उसके पति ने कहा था—"बस डरता है तो मुझी से। यह नाक इसकी मैंने ही तोड़ी है। एक दिन यह घर से जाता न था, दादी को तंग करता था। मैंने जाने को कहा तो मुझ पर भी झपटा। पटककर मैंने इसे उस किवाड़ की चौखट पर दे मारा, तानकर दो घूँसे इसके रसीद किये। नाक की कोठी टूट गयी और ओठ फट गये। दादी को सबसे अधिक इसी पागल से प्यार है। वह बहुत रोयी-पीटी, किन्तु जो भी हो, फिर यह कभी मेरे सामने नहीं हुआ।"

और यह कहकर प्रशंसा पाने की इच्छा से पण्डित शादीराम ने अपनी इस नव-परिणीता पत्नी की ओर देखा। लेकिन चेतन की माँ का मुख पीला पड़ गया और वह सहमी हुई-सी अपने इस क्रूर पति को देखती रह गयी।

तब कुछ अप्रतिभ से होकर पण्डित शादीराम ने कन्धे झाड़े थे और चारों ओर निगाह दौड़ाकर कहा था, "मैंने तुम्हें बताया था न कि घर तो खण्डहर ही है।"

और वे खिसियानी-सी हँसी हँसे थे।

चेतन की माँ के चेहरे का रंग लौट आया। अपना निश्चय भी उसे स्मरण हो आया।

"मेरे लिए यही स्वर्ग है।" यह कहकर वह आगे बढ़ी।

और फिर कपड़े बदलकर आँगन को झाड़-बुहार, कोयलों, हड्डियों और कूड़े-करकट का अम्बार उसने एक कोने में लगा दिया था और दालान में भी सफ़ाई करके एक चारपाई के लिए थोड़ी-सी जगह बना ली थी।

इसके बाद अब तक उसके दिन कैसे गुज़रे थे? इस प्रश्न के उत्तर में केवल इतना कहना पर्याप्त है कि पहले दिनों से वे कुछ भिन्न न थे। और पहले दिनों का विवरण कुछ यों है :

आठवीं श्रेणी में ही शराब पीना शुरू करके उसके पति ने अपने विवाह तक, सब तरह के कर्म कर देखे थे। और उन लोगों में, जो स्वयं उतने शुद्ध-चरित्र नहीं होते दूसरों के चरित्र के प्रति जो एक तरह का सन्देह-सा होता है, वह पण्डित शादीराम के मन में भी था। वे केवल मैट्रिक तक पढ़े थे। नारी के प्रति उनका सन्देह और भी गहरा था। चेतन की परदादी उन दिनों यजमानों के वहाँ दौरे पर गयी हुई थी और स्वयं उन्हें स्कूल जाना होता था, जहाँ मैट्रिक की परीक्षा पास करते ही वे अध्यापक हो गये थे। इसलिए वे उसे उस खण्डहर में बन्द करके बाहर से ताला लगा जाया करते थे।

अपने पति के इस क्रूर-व्यवहार के प्रति भी उसके मन में किसी प्रकार का असन्तोष न था। अपने कर्मफल को (क्योंकि वह इस

जन्म के दुखों तथा कष्टों को पूर्व-जन्म के कर्मों का फल ही समझती थी।) उसने सन्तोष के साथ भोगना बहुत पहले सीख लिया था। अपनी ददिया सास (परदादी गंगादेई) के हाथों दालान के एक कोने में जमायी हुई चक्की को उसने अपने इस एकान्त की संगिनी बना लिया था। सुबह खाना बनाकर अपने पति को खिला-पिलाकर, उन्हें काम पर भेजकर, (बाहर से उनके ताला लगा देने पर भी) अन्दर से कुण्डी लगाकर, वह चक्की के पास आ बैठती और दूसरे दिन के लिए आटा पीसती। कभी दायें, कभी बायें और कभी दोनों हाथों से चक्की के दस्ते को घुमाते हुए वह मीठे, तरल, लगभग आर्द्र-स्वर से भजन गाया भी करती थी। जो उसे बचपन से याद थे। उन्हें गाते-गाते वह भक्तिरस में विभोर हो जाती और भूल जाती कि वह एकाकिनी है, उसके पति बाहर से ताला लगा गये हैं, उसका घर खण्डहर है, उसका वर्तमान दुखद है और भविष्य भी उज्ज्वल नहीं। एक अनिर्वचनीय सन्तोष से उसके मन-प्राण प्लावित हो जाते थे।

चक्की के बाद प्रायः वह चर्खा ले बैठती और अपने समस्त एकान्त को, अभाव को, दुख को कात-कातकर टोकरी में बन्द कर देती।

इसी तरह उसका दिन बीत जाता था और कभी वह खाना पका रही होती और कभी खाना पक चुका होता, जब पण्डित शादीराम आते। उनका समय पर आ जाना कुछ निश्चित न था। उसके इस आरम्भिक जीवन में (और बदली हुई पार्श्व-भूमि के साथ बाद में भी) ऐसे बहुत से दिन आये जब वह खाना पकाकर अपने पति की प्रतीक्षा में भूखी-प्यासी बैठी रही और वे रात-रात भर नहीं आये।

अभी उसे इस क़ैदखाने में बन्दी हुए अधिक दिन नहीं बीते थे कि संकट-चौथ का व्रत आ गया। चेतन की माँ के लिए यह बड़ा महत्वपूर्ण व्रत था। जब सन्ध्या को आकर पं० शादीराम ने किवाड़ खोले तो

दिन भर की भूखी-प्यासी लाजवती ने अपने पति से कहा कि वह व्रत से है और वे तिल और गुड़ ला दें ताकि वह भुग्गा (गज़क) बनाकर गणेश की पूजा करके व्रत उपार ले और फिर उसने यह भी प्रार्थना की कि सन्ध्या को कम-से-कम आज वे कहीं न जायँ।

पं० शादीराम ने उसे विश्वास दिलाया कि वे ऐसा ही करेंगे और जल्दी ही आने का वादा करके प्रकट उसके लिए तिल लेने चले गये। लाजवती ने उनके लिए खाना आदि पका लिया और फिर वह वहीं रसोई-घर के बाहर आँगन में बैठी, उनकी प्रतीक्षा करने लगी। धीरे-धीरे सन्ध्या का अँधेरा आँगन में छा गया। सामने के मकान की ऊँची और निरन्तर वर्षा के कारण काली पड़ जाने वाली दीवार साँझ के अँधेरे में और भी काली दिखायी देने लगी और उस दीवार की छतपर लगी हुई कौवों की सभा भी विसर्जित हो गयी। ऊपर निर्मल आकाश पर एक-दो तारे निकल आये। लाजवती ने उठकर सरसों के तेल का दिया जलाया और उसे रसोई-घर में रखकर नमस्कार किया। फिर वह प्रतीक्षा में मोढ़े पर बैठ गयी।

वहीं बैठे-बैठे तब उसने संकटमोचन दुःखहरन श्री गणेश की आराधना आरम्भ कर दी और अगणित बार :

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा

का पाठ किया। और व्रत के माहात्म्य के सम्बन्ध में भी सब कहानियाँ मन में दोहरा डालीं, किन्तु पं० शादीराम न आये। उधर अर्घ्य का समय हो गया। अब घर में स्वच्छ पवित्र जल न था, जिससे चन्द्रमा को अर्घ्य दिया जाय। डरते-डरते वह ड्योढ़ी में गयी कि दरवाज़े में खड़ी होकर सामने के मकान में रहने वाली ब्राह्मणी मलावी को आवाज़ दे। अन्दर से कुण्डी खोलकर दरवाज़े से सिर लगाये कितनी देर तक खड़ी रही, किन्तु उसे आवाज़ देने का साहस न हुआ। आखिर उसने सिर हटाया, किवाड़ अन्दर को खुल गया, क्योंकि

पण्डित जी का ख़याल था कि वे शीघ्र आ जायेंगे, इसलिए वे ताला लगाकर न गये थे।

सामने के मकान का दरवाज़ा बन्द था। मुहल्ले के सिरे पर म्यूनिसिपेलिटी का जो लैम्प जलता था, उसका प्रकाश उनके दरवाज़े तक न पहुँचता था। उस अँधेरे में खड़े-खड़े उसने कई स्त्रियों को आते-जाते देखा, पर जान-पहचान न होने के कारण वह किसी को बुलाने का साहस न कर सकी—सूखे ओठ, सूखा कण्ठ और शिथिल शरीर लिये हुए वह वहीं खड़ी रही। तभी मलावी अपने घर आयी, किवाड़ खोलकर उसने दिया जलाया और बहू को अपने घर की चौखट से लगी खड़ी देखा। पास आकर उसने कहा—

"शादी की बहू है, क्या बात है बच्ची, तू ऐसे क्यों खड़ी है?"

चेतन की माँ पहले कुछ न कह सकी थी। पुनः पूछने पर रुँधे गले से उसने कहा कि उसे कुछ जल चाहिए ताकि वह व्रत उपार सके।

मलावी ने उसे सहर्ष पानी ला दिया था और यह भी बता दिया था कि वह (पं० शादीराम) तो देसराज के यहाँ बेहोश पड़ा है। उसके आने की बाट वह कब तक जोहेगी? अपनी ओर से उसने यह प्रस्ताव भी किया था कि यदि भुग्गा न बना हो तो वह बाज़ार से उसे दूध ही ला देती है। पर चेतन की माँ का मन ऐसा खिन्न था कि मलावी को विदा देकर गज़क को मुँह लगाये बिना चन्द्रमा को अर्घ्य दे, पानी के दो घूँट पीकर ही उसने व्रत उपार लिया, रसोई-घर में वह आ बैठी, समय काटने के लिए उसने संकटमोचन दुःखहरन कुम्भोदर भगवान गजानन का जाप आरम्भ कर दिया था।

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा

न जाने कब वहीं बैठे-बैठे, जाप करते-करते वह ऊँघ गयी थी। आधी रात के लगभग पं० शादीराम ने नशे में चूर थरथराती आवाज़

में पुकारा था—'दरवाज़ा खोलो !'

चौंककर चेतन की माँ ने लपककर दरवाज़ा खोला था और उनके अन्दर आने पर बन्द कर दिया था। तब वे उसे बग़ल में लिये नशे से लड़खड़ाते, अन्दर अँधेरे दालान में आये थे। सरसों के तेल का एक दिया ताक में पड़ा टिमटिमा रहा था। कच्ची मिट्टी और सील की बू आ रही थी। उसी दिये के प्रकाश में जब उसने अपने पति की आँखों में वासना और मद की झलक देखी तो उपवास, भूख और उनींदे से थकी उसकी आत्मा काँप उठी थी।

लेकिन सुबह जब उसने शिकायत के स्वर में पण्डित जी से कहा कि वे उसे अकेली छोड़कर तिल लेने का बहाना करके चले गये और वह बैठी प्रतीक्षा करती रही और उसने बताया कि किस तरह उसे मलावी की सहायता लेनी पड़ी....तो....वह बात पूरी भी न कर पायी थी कि उसके पति ने सहसा उसके मुँह पर एक थप्पड़ जमा दिया था। ऐसी गालियाँ देते हुए, जो उसने पहली बार ही सुनी थीं, उसे डाँटा कि यदि वह एक दिन भूखी रह लेती तो मर न जाती, उनके आने की प्रतीक्षा उसने क्यों न की ? और क्यों उसने मलावी को बुलाया ? तब चेतन की माँ ने अपने पति के पाँवों पर झुककर क्षमा माँग ली थी।

बाद के इन लम्बे तीस वर्षों में परदादी गंगादेई और फिर चेतन के पिता के हाथों चेतन की माँ ने अगनित ऐसी ही यातनाएँ सहीं। इच्छा न होने पर भी वह अपनी ददिया सास के समस्त पूजा-पाठ, व्रत-नियम, पीर-फ़क़ीर रस्म-रिवाज मानती रही, उनकी डाँट-फटकार सुनती रही, मानसिक और शारीरिक यातनाएँ सहती रही, और यह क्रम तब तक जारी रहा जब तक इस क्रूर ददिया सास की मृत्यु ने चेतन की माँ को इन सब यातनाओं से मुक्त न कर दिया।

रहे उसके पति तो शराब वे रोज़ पीते, दीवाली के दिनों में जुआ

खेलते (और शराब पीकर खेलने के कारण सदैव हारते) सट्टा वे लगाते और दूसरे बीसियों तरीकों से रुपया लुटाते । फिर ऐसे अवसरों की कमी न थी जब वे दूसरी स्त्रियों को घर ले आये और उनके सामने (उनके कहने पर अथवा उन्हें प्रसन्न करने हेतु) उन्होंने चेतन की माँ को निर्दयता से पीटा । आयु भर (स्कूल की मास्टरी छोड़ रेलवे में तार बाबू, असिस्टेण्ट और फिर स्टेशन मास्टर होने पर भी) कभी उसे भड़कीला कपड़ा नहीं पहनने, दिया । कभी भूल से वह छत पर चली गयी तो चरित्रहीनता के बीस ताने उसे दिये, कभी घूँघट ऊँचा किया तो बीस गालियाँ दीं और एक बार उसे गली में देख लिया तो वहीं से घसीटते हुए अन्दर ले गये ।

लेकिन इतने पर भी चेतन की माँ ने अपने इस क्रूर, निर्दय पति को अपना समस्त प्रेम, समस्त श्रद्धा और समस्त आदर-सत्कार दिया । सदैव उनकी समृद्धि और उन्नति के लिए अनुष्ठान कराये, प्रति वर्ष जालन्धर के प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित आत्माराम से वर्ष-फल बनवाकर जप करवाये; सत्यनारायण की कथाएँ करायीं; पति की दीर्घायु की कामना से सब व्रत रखे; समय-कुसमय आत्माभिमान को तज उनकी सहायता की; उनके कारण चौदह वर्ष अपने पिता का मुँह न देखा (जिसने एक बार उनकी निन्दा की थी) और अन्य लोग तो दूर रहे, कभी अपने बच्चों से भी अपने पति की बुराई नहीं सुनी ।

—o—

११

स्कूल में उस दिन चेतन लड़कों को ठीक तरह पढ़ा न सका था। चुपचाप उन्हें अपना पाठ याद करने की आज्ञा देकर स्वयं मौन रूप से अपनी कुर्सी पर बैठकर अपनी वैवाहिक समस्या को सुलझाने-उलझाने में ही उसने अधिकांश समय काट दिया था।—एक लड़की थी कुन्ती! पण्डित शादीराम के एक परिचित की दौहित्री थी, इसका चेतन ने पता लगा लिया था। चेतन ने एक बार उसे 'बाजड़े' के मेले में देखा था और अपने अन्तर की गहराई में कहीं वह उसे चाहने लगा था। उसने कुन्ती से कभी बात भी न की थी। अनन्त के अतिरिक्त अपने इस मूक प्रेम की भनक भी किसी के कान में न पड़ने दी थी। वह गत् दो-तीन वर्ष से साँझ को सैर के लिए जाते समय चुपचाप पुरियाँ मुहल्ले से गुज़र जाता और बस। इससे अधिक अपनी प्रेमिका को पाने के लिए उसने कुछ न किया था। वह भी कदाचित् उसके प्रेम की बात जानती थी। पर चेतन ने कभी यह जानने का प्रयास नहीं किया। दृष्टि विनिमय ही से उसे इस बात का आभास मिलता—उस दिन स्कूल में इस या उस क्लास में लड़कों को पढ़ाते-पढ़ाते वह अपनी इस असमर्थता पर विचार करता रहा था और अन्त में उसने तय किया था कि यदि उसके पिता ने उस पर पण्डित दीनबन्धु की लड़की से विवाह करने के लिए ज़ोर दिया तो वह उन्हें कुन्ती के सम्बन्ध में अपनी चाहत की बात बता देगा। उसे पूरा विश्वास था कि उसके पिता कुन्ती के साथ उसकी सगाई कर देंगे। वह उनके मित्र की दौहित्री तो थी ही।

स्कूल से आते-आते मार्ग ही में अपने मित्र अनन्त को कुन्ती के सम्बन्ध में अपने निर्णय की बात बताकर, जब चेतन घर आया तो उसे पता चला कि उसके स्कूल जाने के कुछ ही देर बाद देसराज आया था और उसके पिता तभी से उसके साथ गये हुए हैं और माँ प्रतीक्षा में

बैठी है कि वे आ जायँ तो उन्हें खिलाकर स्वयं भी दो कौर खाये।

तब दिल-ही-दिल में अपने पिता के उस मित्र को कोसकर चेतन साँझ को नाश्ता करने बैठ गया था। पर इस बात का ध्यान आते ही कि माँ ने अभी सुबह का खाना भी नहीं खाया, वह पूरी तरह नाश्ता न कर सका था। किसी-न-किसी तरह चार कौर निगलकर वह नीचे अपने कमरे में चला गया था और अपने ध्यान को उसने साहित्य-सृजन में लगाने का प्रयास किया था।

घण्टों से वह कविता लिखने का प्रयास करता रहा था और जब असफल रहा था तो उसने एक कहानी भी लिखनी शुरू की थी, पर कभी बस्ती वाली उस चन्दा का और कभी पुरियाँ मुहल्ले वाली उस कुन्ती का, कभी अपने पिता की क्रूरता का और माँ की विवशता का ध्यान आ जाने से उसकी विचारधारा टूट जाती थी। इसलिए कविता तथा कहानी लिखने में उसे जो सफलता मिली थी, उसकी गवाही कापी के कटे-फटे पृष्ठ देते थे।

ज्योंही कापी, कलम और दवात अलमारी में बन्द करके वह ऊपर पहुँचा और उसने देखा कि सारा दिन प्रतीक्षा करके अब दो कौर खाकर माँ बर्तन मल रही है कि उसी समय बाहर से उसके पिता की कड़कती आवाज़ आयी, "चेतन!"

आँगन के एक ओर जो बड़ी-सी जगह छती हुई थी वहाँ चिड़ियों ने एक घोंसला बनाया था, अंडे दिये थे, जिनसे छोटे-छोटे बच्चे निकल आये थे। उस कर्कश आवाज़ को सुनकर चिड़ियाँ फुर से उड़ गयीं; 'बच्चे चीं-चीं' करने लगे; माँ के हाथ से बर्तन छूट गया और उसने (हाथ राख से सने होने के कारण) अँगुलियों के जोड़ों से धोती घुटनों पर कर ली और चेतन ने समझ लिया कि आज बाज़ार शेखाँ के ठेकेदार की जेब खूब गर्म हुई है।

तभी फिर आवाज़ आयी—"चेतन!"

नशे के कारण कुछ काँपती हुई, पर ख़ूब ऊँची कड़ी, घरघराती आवाज़ ! चेतन नीचे भागा और माँ जल्दी से उठकर लैम्प जलाने लगी।

ऐसे अवसरों पर सदैव माँ के हाथ-पाँव फूल जाते थे और पास पड़ी हुई चीज़ भी उसे दिखायी न देती थी। उस समय भी माँ को दियासलाई की डिबिया न मिल रही थी। आख़िर जब वहीं ताक में पड़ी वह मिल गयी और उसने लैम्प जलाना आरम्भ किया तो सीढ़ियों पर भारी-भारी क़दम रखते हुए पं० शादीराम ऊपर आ पहुँचे। शलवार जो सुबह ही पहनी थी, बेढंगी और मैली-कुचैली हो गयी थी। कमीज़ के बटन खुले थे। छाती के दो-चार श्वेत बाल दिखायी दे रहे थे और पगड़ी बग़ल में दबी थी।

मूछों को तनिक ऊपर चढ़ाते हुए उन्होंने स्निग्ध-कोमल दृष्टि से अपनी पत्नी की ओर देखा !

"ऐ जी........!"

पत्नी वहीं लैम्प छोड़कर उठ खड़ी हुई।

"ज़रा चारपाई बिछा दो !"

चेतन की माँ का दिल और भी धक-धक करने लगा। पण्डित शादीराम जितने दिन घर आकर बिताते थे, माँ का दिल धड़कता रहता था। नशे में उनके चित्त की अस्थिरता की हद न रहती—अभी हँस रहे होते कि अभी सिर फोड़ने-फोड़वाने पर तुल जाते। वह डर रही थी और मन-ही-मन में संकटमोचन, दुःखहरन भगवान गजानन से प्रार्थना कर रही थी कि रात कुशल-पूर्वक बीत जाय। लेकिन जब उन्होंने अपेक्षाकृत कोमल स्वर में चारपाई बिछाने को कहा तब डर तथा आशंका से माँ का दिल धक-धक करने लगा, क्योंकि इस प्रकार धीरज से वे तभी बात करते थे, जब वे खुश होते या उन्हें जुए के लिए, किसी को देने के लिए या किसी और काम के लिए रुपये की

ज़रूरत होती।

जब चारपाई बिछा दी गयी और पगड़ी को दीवार के साथ सिर के नीचे रखकर वे लेट गये और माँ ने लैम्प जलाकर खूँटी पर टाँग दी तो उन्होंने चेतन की माँ से कहा कि ज़रा उनकी बात सुने।

जब वह सहमी हुई-सी पायँते के पास आकर धरती पर बैठ गयी तो उन्होंने कहा कि नीचे बस्ती से पण्डित वेणीप्रसाद अपने भाई पण्डित दीनबन्धु के साथ आये हुए हैं। मुझे सूदाँ के चौक में मिल गये थे, मैंने तो 'हाँ' कर दी है।

माँ के दिल की धड़कन कुछ कम हुई और उसने कुछ और आगे खसककर कहा, "ज्वाली महरी की लड़की तो कहती थी कि लड़की सुन्दर है, पर चेतन को पसन्द नहीं।"

तब पण्डित जी ने पूरे ज़ोर से अपने लड़के को आवाज़ दी।

चेतन पं० दीनबन्धु और पक्षाघात के रोगी उनके भाई को नीचे बैठक में बैठाकर साहस बटोरता और मन-ही-मन बीसियों तरह के प्रश्नोत्तर दोहराता आ रहा था।

पण्डित जी ने कहा, "इधर बैठो।"

सहमा हुआ वह पायँते पर बैठ गया।

"तुमने लड़की देखी है?"

"जी हाँ।"

"उसमें क्या दोष है?"

चेतन अब क्या उत्तर दे—पिता के सामने वह कभी न हुआ था। किसी लड़की के गुण-दोषों की विवेचना करना तो दूर रहा, उसने तो कभी उनके सामने खुलकर बात तक न की थी। उसके मुँह से केवल इतना निकला, "मोटी है।"

"तो क्या सब तुम्हारे जैसे पतले-दुबले हो जायँ?"

चेतन चुप।

"कल अपनी माँ के साथ जाकर लड़की को देख आओ !"

चेतन ने जैसे रोते हुए कहा, "देखकर मैं क्या करूँगा ?"

"मैं जो कहता हूँ, देख आओ !" पण्डित शादीराम गरजे।

फिर कुछ क्षण ठहरकर उन्होंने तनिक गम्भीर होकर कहा, "देखो मैं उन भले आदमियों को वचन दे आया हूँ, यदि लड़की में कोई दोष न हो तो साड़ी देते आना। सगुन का रुपया मैंने ले लिया है।"

फिर अचानक अपने इस इक्कीस-बाइस वर्ष के 'बच्चे' को गोद में लेकर और उसका मुँह चूमकर पिता ने सहसा विनीत स्वर में कहा, "देखो बेटा, मैंने सदा तुम्हें आदेश दिया है, आज मैं तुमसे विनय करता हूँ, यदि उस लड़की में कोई दोष न हो तो तुम मान लेना।"

इसके बाद उसे अपनी बाहों में कसकर और फिर एक बार चूमकर मुक्त करते हुए उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "मैं इसे डाँटता हूँ, लेकिन इसकी इज़्ज़त भी करता हूँ।"

शराब के बदबूदार साँस को जैसे रूमाल से पोंछने का प्रयास करते हुए चेतन ने 'ज़िन्दा शहीदों' के से भाव में कहा, "जब आपने शगुन ले लिया तो ठीक है। मैं देखने क्या जाऊँगा ?"

"मैं जो कहता हूँ मेरी ख़ुशी है !" चेतन के पिता ने फिर कड़ककर कहा, "तुम कल देख आओ।"

"अच्छा जी।" भरे हुए गले से इतना कहकर चेतन नीचे उतर आया। ऐसे समय में तनिक-सा इन्कार भी प्रलय मचा सकता था, इस बात को वह भली-भाँति जानता था।

सीढ़ियाँ उतरते-उतरते एक दीर्घ-निश्वास उसके हृदय से निकल गया ! उसका वह निश्चय, बस्ती में विवाह न करने की उसकी प्रतिज्ञा, उसके बार-बार दोहराये हुए प्रश्नोत्तर........कुन्ती........

—०—

१२

इस घटना के तीन दिन बाद जब चेतन का अभिन्न-हृदय मित्र अनन्त सुबह आँखें मलता हुआ उठा तो उसकी माँ ने आकर उसके हाथ में एक चिट्ठी रखी और कहा कि चेतन दे गया था।

बड़ी मुश्किल से रज़ाई से पाँव निकाल उसे कन्धों पर ही लिये हुए अनन्त उठकर दरवाज़े तक आया और पत्र खोलकर सुबह के शीतल निर्मल प्रकाश मे पढ़ने लगा। जल्दी-जल्दी लिखे, टेढ़े-मेढ़े अक्षरों से तीन-चार पृष्ठ रँगे हुए हैं:—

"अनन्त मैं लाहौर जा रहा हूँ। मेरी सगाई आज हो गयी। उन्हीं दीनबन्धु की लड़की चन्दा से। उस पहले दिन, जब बस्ती से वापस आकर मैंने 'ना' कर दी थी, माँ ने एक सपना देखा था। एक सुन्दर लक्ष्मी-सी लड़की वस्त्राभूषणों से सजी उसके चरण छूने आ रही थी कि रास्ते ही से मुड़ गयी। अब माँ के सपने वैसे नहीं होंगे, पर मेरे सपने........!

रात भर मैं सो नहीं सका। यहाँ मेरी आत्मा घुटी जा रही है। कुन्ती के सम्बन्ध में मैंने जो बातें सोची थीं वे मेरे मन ही में रह गयीं। पिता जी जब बाज़ार शेख़ाँ से होते हुए घर आये तो फिर उनके सामने बैठकर ऐसी बात करना मेरे बस में नहीं। उसी शाम जब मैं तुमसे मिलकर घर पहुँचा तो दुर्भाग्य से पिता जी भी आ गये थे। उनके साथ पं० दीनबन्धु और लकवे की बीमारी में ग्रसित उनके बड़े भाई भी थे। उनको पिता जी ने वचन दे दिया और उनसे शगुन का एक रुपया भी ले लिया। फिर पिता जी का वचन, विशेष-कर बाहर वालों को दिया हुआ, कभी किसी ने टूटते नहीं देखा। बहरहाल सगाई तो हो गयी। विडम्बना देखो कि उसी एक बार देखी हुई लड़की को फिर देखने गया। वहाँ क्या

हुआ, यह सब तुम्हें बाद में मालूम होता रहेगा।........

वहाँ जो कुछ हुआ, उसका विवरण यद्यपि चेतन ने उस पत्र में नहीं दिया, पर वह कुछ यों है :

उस रात जब चेतन के पिता ने उसे डाँटकर कहा था कि सुबह वह माँ को लेकर लड़की देखने जाय, उसने सोचा था कि सुबह उसके पिता शान्त होंगे और शराब का असर भी उन पर न होगा तो वह उन्हें समझा-बुझाकर सब बात कहेगा और यदि हो सका तो कुन्ती की चर्चा भी चलायेगा।

लेकिन दूसरे दिन उसके पिता रात को अधिक पी जाने के कारण नशे की खुमारी ही में पड़े रहे और उसकी माँ ने इस बीच में सेर-सेर गरी, छुहारे, बादाम, किशमिश, तालमखाने डालकर दन्दासा (रंगली दातुन) मेंहदी और मंगल-सूत्र के साथ सवा छः सेर की गुथली तैयार कर ली। बनारसी साड़ी और जम्पर और उसी रंग की जुराबें और रुमाल उसने पहले से मँगा रखे थे। अपनी दो सुनहली अँगूठियाँ तुड़वाकर सिर की सुई भी तैयार करा रखी थी। गुथली सी-सिलाकर वह हर तरह से तैयार हो गयी। फल और मिठाई भी उसने मँगा ली। जब चेतन के पिता दोपहर के लगभग उठे तो उनका मुँह-हाथ धुलवाते समय उसने उन्हें अपनी सब कारगुज़ारी सुना दी। तब चेतन के पिता ने आवाज़ देकर चेतन को आदेश दिया कि वह खाना खाकर अपनी माँ के साथ बस्ती जाय, अपने स्कूल के अध्यापक नन्दलाल से मिले और जाकर लड़की देख आये (वे शगुन वहीं दे देंगे) और इधर से साड़ी और गुथली देकर सगाई पक्की कर आये। विवाह के बारे में पूछें तो कह दे कि दो वर्ष बाद होगा। यह कहकर वे पगड़ी बगल में दबाये हुए सीढ़ियाँ उतर गये थे। चेतन की माँ से उन्होंने इतना कहा कि खाना वे देसराज के यहाँ खायेंगे।

ये अध्यापक नन्दलाल चेतन के स्कूल ही में छठी श्रेणी को पढ़ाते

थे। विचारों से आर्य-समाजी थे। उनके घर ही चेतन की भावी पत्नी को देखने का प्रबन्ध किया गया था।

उन्हें बस्ती में उन अध्यापक महोदय के मकान के समीप ही एक जगह ठहराया गया। चेतन की माँ अध्यापक महोदय की लड़की के साथ उनके घर चली गयी। चेतन इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि कब उसे बुलाया जाता है और कब उसके सिर से यह विपत्ति टलती है। उसका हृदय प्रतिक्षण तीव्रतर गति से धड़क रहा था और उसके चेहरे का रंग भी कुछ फीका-सा पड़ता जा रहा था। तभी अध्यापक महोदय उसे लेने आ गये।

एक तंग-सी ड्योढ़ी से गुज़रकर आँगन तक जाते-जाते चेतन का गला सूख गया। रंग शायद और भी फीका पड़ गया। आँगन पहुँचकर उसने देखा कि सामने (उन अध्यापक की उपस्थिति के कारण) डेढ़ बालिश्त का घूँघट निकाले उसकी माँ बैठी है। पास ही तनकर (सुधारक की पत्नी होने के गर्व से या इसलिए कि पर्दे की रस्म उसने छोड़ रखी थी और बस्ती में शायद वही पहली स्त्री थी जिसने इतना साहस किया था) उन अध्यापक महोदय की पत्नी बैठी थी। तब चेतन को कुछ ऐसा आभास हुआ कि दायीं ओर एक चटाई पर वही मोटी-मुटल्ली लड़की बैठी है। अपनी झुकी हुई निगाहें उठाकर उसने अपने इस भावी मँगेतर को देखने का प्रयास भी किया, पर चेतन उसे आँख भरकर न देख सका। उसकी आँखों के आगे जैसे अँधेरा-सा छा गया। उसकी दृष्टि इस बरबस गले मढ़ी जाने वाली मँगेतर पर से फिसलती हुई उसके बराबर ही बैठी हुई एक दूसरी लड़की पर गयी। क्षण भर के लिए जैसे वह अँधेरा मिट गया। उसका हृदय और ज़ोर से धड़क उठा। उसे लगा जैसे इस लड़की को उसने पहले भी कभी देखा है। उसे याद आ गया कि जब वह बस्ती के अड्डे पर अपनी इस भावी पत्नी

को देखने आया था तो माप-मापकर पग रखने वाली जिस सुन्दर लड़की को देखकर वह चौंका था, वह यही तो थी। उस निमिष-मात्र की झलक में चेतन को उस किशोरी के मुख का एक भाग, उस भाग को जगमगाता-सा मोतियों का कर्णफूल और उसकी चंचल आँखों की एक रसीली चितवन ही दिखायी दी। इसके बाद जैसे अँधेरा फिर छा गया और उसकी घबराहट बौखलाहट की हद को पहुँच गयी।

यह सब कुछ पलक झपकते हो गया था। अध्यापक महोदय ने अपनी पत्नी से कहा कि चेतन जी आये हैं और चेतन ने शायद यह कहा था कि उसे प्यास लगी है और फिर शायद पानी पीकर या बिना पानी पिये ही वह वहाँ से चला आया था।

यही वह भेंट थी जिसकी ओर अपने उस पत्र में चेतन ने संकेत किया था। आगे उसने लिखा था—

> "अभी तो मैं जा रहा हूँ—लाहौर! फिर कहाँ जाऊँगा, क्या करूँगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। 'देश सेवक' लाहौर के सम्पादक पण्डित दीनानाथ स्थानीय हिन्दू सभा के दफ़्तर में आये थे। मैंने उनसे अपनी साहित्यिक आकांक्षाओं का ज़िक्र किया और बताया कि मैं अपनी वर्तमान नौकरी से ऊब गया हूँ! बस, उन्होंने वादा किया और कहा कि मेरे साथ लाहौर चलो और कोई-न-कोई प्रबन्ध कर दिया जायगा।
>
> दैनिक पत्र में अनुवाद का काम अधिक होता है, मुझे वह आता नहीं। लेकिन उन्होंने साहस दिलाया है कि ज़रा-सा परिश्रम करने से मैं शीघ्र ही अच्छा अनुवादक बन सकता हूँ। जब तक मैं काम सीख जाऊँ, समाचार-पत्र के साप्ताहिक संस्करण के लिए हर सप्ताह एक कहानी लिख दिया करूँ। उस समय तक मेरे खाने-पहनने का प्रबन्ध वे कर देंगे। यदि

भली-भाँति काम सीख गया तो कुछ वेतन भी मिलने लगेगा।
और फिर हुनर साहब तो वहाँ हैं ही........

तुम्हारा

चेतन

इसके चार महीने बाद एक दिन अनन्त जालन्धर के प्लेटफ़ार्म पर कपूरथला जाने वाली ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहा था कि सहसा चेतन से मुलाक़ात हो गयी। चेतन लाहौर से घर आया था। गाड़ी से उतर-कर बाहर जाने ही वाला था कि अनन्त की नज़र पड़ गयी। वह उसे गेट में से वापस खींच लाया। अभी कपूरथला जाने वाली ग़ाड़ी का इंजन भी नहीं लगा था, इसलिए दोनों मित्र उसी प्लेटफ़ार्म पर घूमने लगे।

"तुमने तो यार एक पंक्ति तक नहीं लिखी, ऐसे लाहौर गये तुम!" अनन्त ने बात शुरू करते हुए कहा, "कौन-सी गुफा में समा गये वहाँ?"

चेतन ने बताया कि वे सम्पादक महोदय जिनके साथ वह लाहौर गया था, अजीब शिकारी आदमी थे। सब्ज़ी मंडी के पास एक सस्ते से होटल में उन्होंने उसके भोजन और निवास का प्रबन्ध कर दिया; दूध वाले से कह दिया कि वह डेढ़ पाव दूध उसे रोज़ दे दिया करे; नाई को हजामत के लिए कह दिया और धोबी को कपड़ों के लिए। चेतन को आश्वासन दिलाया कि वे स्वयं इन सबका बिल दे देंगे और इस प्रकार कुल मिलाकर बाईस रुपये पर उन्होंने उसे अपने समाचार-पत्र में अनुवादक रख लिया।

इस विचित्र व्यवस्था पर अनन्त ज़ोर से हँसा और उसने पूछा, "वे बिल उन्होंने चुकाये भी?"

"अरे, राम का नाम लो!" चेतन ने कहा, "यह सोचकर कि समाचार-पत्र में नौकरी मिल गयी और उन्नति का भी अवसर है, मैंने

अपनी साइकिल और कुछ सामान लाहौर मँगा लिया। लेकिन दो महीने के बाद जब उन सम्पादक महोदय के चंगुल से मैंने मुक्ति पायी तो बिल न चुका सकने के कारण होटल के मैनेजर ने मेरी साइकिल ही रख ली। बाद में दूसरी जगह नौकरी करके पहले महीने का वेतन उन मैनेजर साहब की भेंट चढ़ाकर, बड़ी कठिनाई से मैं उसे लाया।"

अनन्त फिर ज़ोर से हँसा। तब चेतन ने अपने उन अनुभवों की बात की जो उसे पहले-पहल समाचार-पत्र के दफ़्तर में प्राप्त हुए थे।

"वहीं पहले-पहल मुझे इस बात का पता चला," चेतन ने कहा, "कि जिस सम्पादकी के स्वप्न मैं देखा करता था, वह वास्तव में कितनी नारकीय है। दिन को बारह से छः बजे तक और रात को नौ बजे से दो बजे तक दैनिक पत्रों के सम्पादक कोल्हू के बैल की तरह जुटे रहते हैं। जब थक जाते हैं तो आपस में अश्लील और गन्दे मज़ाक करते हैं। चरित्रहीन, विवर्ण मुख, उनींदी-खुमार भरी आँखें, अत्यधिक मोटे या बिलकुल मरियल और हर तरह से भूखे—लाहौर के हिन्दी-उर्दू पत्रों में काम करने वालों में से अधिकांश को मैंने ऐसा ही पाया।

और चेतन ने बताया कि वह अनुवादक के साथ-साथ उस पत्र का 'अपना कहानी लेखक' भी था। क्योंकि अनुवाद करना उसे आता न था, इसलिए वह पत्र के साप्ताहिक संस्करण में एक कहानी दिया करता था। इन्हीं कहानियों के बल पर उसे एक दूसरे दैनिक पत्र में जगह मिल गयी। स्थान तो अनुवादक का ख़ाली था। शर्त पर उसे वहाँ ले लिया गया कि वह प्रति सप्ताह पत्र में एक कहानी लिखेगा और अनुवाद शीघ्रातिशीघ्र सीख लेगा।

और अब वह उस पत्र में सहकारी सम्पादक है, चालीस रुपये पाता है और चंगड़ मुहल्ले में रहता है।

"वे हुनर साहब कभी मिले?" अनन्त ने पूछा।

चेतन ने ज़ोरदार ठहाका लगाया। लेकिन इससे पहले कि वह

कुछ बताता अनन्त को भागकर पुल पर से जाने की अपेक्षा लाइनें पार करके अपने डिब्बे में सवार होना पड़ा, क्योंकि इस बीच में कपूर-थला जाने वाली गाड़ी को इंजन भी आ लगा था, लाइन क्लियर भी मिल चुका था, गार्ड ने सीटी भी दे दी थी और गाड़ी चलने भी लगी थी।

इसके बाद कई महीने अनन्त को चेतन की कोई खबर नहीं मिली फिर सहसा एक पत्र आया। इधर-उधर की बातो का उल्लेख कर चेतन ने लिखा था :

"........यह भी कोई जीवन है? सोचता हूँ, क्या मैं इसीलिए घर से भागा था? मैंने अनुवाद सीख लिया है और आठ घण्टे बिना सिर उठाये अँग्रेज़ी तारों का अनुवाद करता हूँ, प्रूफ़ पढ़ता हूँ और फिर ज़ुल्म यह है कि इतने काम के बावजूद सम्पादक साहब चाहते हैं कि मैं अब भी प्रति सप्ताह एक कहानी साप्ताहिक अंक के लिए लिखा करूँ।

"कहानी लिखना न हुआ घास छीलना हुआ। पहले तो मेरे पास कुछ लिखा मसाला पड़ा था, अब प्रति-सप्ताह नयी कहानी कहाँ से लाऊँ? मैंने कहानी लिखने से इन्कार कर दिया है, पर जब से इन्कार किया है, सम्पादक महोदय का पारा चढ़ा रहता है। दिन भर बक-बक झख-झख होती है। अखबार में जो ग़लती छपती है, वह चाहे उनकी अपनी हो या किसी दूसरे की, वे मेरे नाम मढ़ देते हैं।

"और मैं सोचता हूँ क्या जीवन में मेरा यही उद्देश्य था?........"

—०—

१३

चेतन को लाहौर गये साल भर हो चुका था जब एक दिन उसके भाई रामानन्द (जो इस बीच में आवारा और निकम्मा रामानन्द के बदले डा० रामानन्द कहलाने या कम-से-कम अपने आपको कहने लगे थे) उसका पता पूछते-पूछते 'पीपल वेहड़ा,' चंगड़ मुहल्ला जा पहुँचे।

सुबह का समय था और चाहे म्यूनिसिपेल कमेटी के भंगी और भिश्ती अपना काम पूरा कर गये थे, लेकिन गन्दगी की गाड़ियाँ भी अपना कर्तव्य पालन कर रही थीं। वास्तव में घोड़ों के अस्तबलों, गन्दी गाड़ियों के अहातों और गूजरों, चंगड़ों, भंगी और चमारों के घरों का सामीप्य होने के कारण भिश्ती चाहे हज़ार छिड़काव कर जायँ और भंगी चाहे लाख सफ़ाई कर जायँ, चंगड़ मुहल्ले की दशा में कभी कोई अंतर नहीं आता। अनारकली के समीप ही इतना बेरौनक, गन्दा और ग़रीब इलाक़ा हो सकता है, चेतन के भाई को इसकी कल्पना भी न थी। इधर चंगड़ मुहल्ले में कुछ नयी दुकानें बन गयी हैं। पर तब तो सारे बाज़ार में दो-तीन लाण्डरियों, एक मैले-कुचैले बनिये और दो-एक हलवाइयों की दुकानों के अतिरिक्त कुछ भी न था। मोहन लाल रोड की ओर से प्रवेश करके, किसी-न-किसी तरह नाक पर रूमाल रखे रामानन्द 'पीपल वेहड़ा' को जाने वाली गली के सिरे तक पहुँचे।

चार-छै पक्के घरों के बाद एक तंग कच्चे घरों वाली गली थी। जिसमें केवल दो पक्के मकान थे। यही 'पीचल वेहड़ा' कहाती थी। गली के सिरे पर ही अपने कच्चे मकान की देहरी पर एक कालाभुजंग चंगड़, नंगे बदन, तहमद लगाये मज़े से बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। उसी से चेतन के भाई ने लाला भगवानदास का पता पूछा और जब उसने पास ही पक्के तीन मंज़िले मकान की ओर संकेत कर दिया तो मकान के पास जाकर रामानन्द ने चेतन का नाम लेकर आवाज़ दी।

आवाज़ सुनकर ड्योढ़ी के दायीं ओर के निचले कमरे से चेतन

निकला। कमर तक बदन नंगा था और कमर के नीचे तहमद लटक रहा था। अपने बड़े भाई को देखकर ख़ुशी की एक 'ओह' चेतन के मुँह से निकल गयी और वह एकदम उनके चरणों पर झुक गया। फिर वह उन्हें अन्दर ले गया।

अँधेरा, सील-भरा कमरा, दीवारों पर पलस्तर ऐसा मालूम होता था कि गिरा ही चाहता है। खिड़की अथवा रोशनदान एक भी न था। बस एक दरवाज़ा एक अँधेरे-से आँगन में खुलता था। इस दरवाज़े को चेतन प्रायः बन्द ही रखता था और बन्द, सील भरे कमरों से जैसी बू-सी आने लगती है, वैसी ही दम घोटने वाली बू कमरे से आ रही थी। कमरे में आलमारी भी कोई न थी। योंही दीवार में दो जगह ताक़ बनाकर तख़्ते लगा दिये गये थे। छत काली स्याह थी, जिससे मालूम होता था कि पहला किरायेदार वहाँ अवश्य ही रसोई भी बनाता रहा होगा। नीचे सीमेंट का फ़र्श था जिसमें पैवन्द लगे थे। लेकिन कमरा साफ़ था और चेतन के शरीर की धूल बता रही थी कि उसने अभी अभी उसे साफ़ किया है। फ़र्नीचर के नाम एक कोने में स्याह मेज़ पड़ी थी। उसके पास बिना बाज़ुओं की काली गद्देदार कुर्सी थी। रोशनी के लिए दीवार में कील गाड़कर एक बिजली का बल्ब लटकाया गया था।

"यह मेज़ कहाँ से लाये हो?" चेतन के भाई ने कहा, "बना तो खूब है और है भी आबनूस की लड़की का, लेकिन लगता तो सेकेण्ड हैंड* है।"

"शायद थर्ड हैंड," † हँसते हुए चेतन ने कहा, "मैं तो एक कबाड़ी की दुकान से दोनों चीज़ें ख़रीद लाया हूँ।"

चेतन के भाई ने तनिक और समीप होकर देखा तो गाढ़े काले रोग़न और पोटीन की सहायता से कई जोड़ ढके हुए दिखायी दिये।

*पुराना † तीसरे के पास से होकर आया हुआ।

न जाने यह मेज़ कितनी बार मरम्मत होने के बाद इस महत्वाकांक्षी लेखक के यहाँ आया था।

"अन्दर ही आ जाइए!"

चेतन के भाई ने ध्यान ही न दिया था कि अन्दर भी कोई कमरा है। अनगढ़-से किवाड़ों को खोलकर चेतन अन्दर गया। उसने बिजली का बटन दबाया। तब चेतन के भाई ने देखा कि एक अँधेरी कोठरी है, जिसकी दीवारों में बाहर के कमरे जैसे ही ताक़ हैं। एक सस्ती-सी चारपाई बिछी है। सील की बू यहाँ पहले कमरे से भी तेज़ है। रोशनदान तो दूर, एक झरोखा तक भी कहीं नहीं है और दीवारों पर पलस्तर बहुत जगहों से गिर चुका है! हाँ, ठण्डक इस कोठरी में बाहर से अधिक है। वे चुपचाप चारपाई पर लेट गये।

लेकिन वे ज़्यादा देर तक वहाँ लेट न सके। कमरा दोपहर को ठण्डा हो जाता होगा, पर सुबह उसमें उमस की मात्रा अधिक थी। वे उठकर बाहर आये। दीवार के साथ लगी एक ईज़ी-चेयर चेतन ने बिछा दी और कुर्सी स्वयं खिसकाकर उनके पास बैठ गया।

"अजीब जगह लिया है तुमने मकान!" उसके भाई ने पाँव फैलाकर उसकी कुर्सी पर रखते हुए कहा, "मैं तो थक भी गया था।"

चेतन हँसा, "आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा" वह बोला, "कि ऐसे घटिया मकान के ये दो कमरे भी मुझे बड़ी दिक़्क़त से मिले। लाहौर के गली-मुहल्लों में किसी अविवाहित युवक के लिए किसी कमरे का लेना आसान बात नहीं। साथ में कोई स्त्री होनी चाहिए, चाहे वह माँ, बहन, चाची, ताई, भावज, बुआ यहाँ तक कि कहीं से भगाई हुई ही क्यों न हो।

यहाँ चेतन ने फिर एक ठहाका लगाया और बोला, "लेकिन मैंने भी इन लोगों को खूब बनाया। जब मैं मकान ढूँढ़ता-ढूँढ़ता यहाँ आया तो ड्योढ़ी के ऊपर दरम्याने में रहने वाली विधवा ने पूछा कि मैं अकेला

ही आऊँगा या सपत्नीक ! तब मैंने कह दिया कि पत्नी तो मेरी है, पर अभी उसे परीक्षा देनी है, इसलिए वह साथ न आयेगी।"

चेतन के भाई ने हँसकर कहा, "लेकिन परीक्षाएँ तो हो चुकीं।"

चेतन बोला, "पूछती थीं, पर मैंने कह दिया कि मेरी पत्नी प्रान्त भर में सर्व-प्रथम रही है, इसलिए वहीं स्कूल में उसे अध्यापिका की जगह मिल गयी है, अब मैं प्रयास करूँगा कि उसकी बदली यहाँ लाहौर हो जाय।"

इस पर दोनों भाई खूब हँसे। जब चेतन अपने सम्बन्ध में सब कुछ बता चुका तो उसने अपने भाई से उनका हाल-चाल पूछा और उसे मालूम हुआ कि उसके भाई ने इस एक वर्ष मे दाँतों की डाक्टरी पूरी तरह सीख ली है। न केवल यह, बल्कि कराची से डिप्लोमा मँगाकर पूरे डाक्टर बन गये हैं।

यह सुन चेतन ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि यह उन्होंने बहुत अच्छा किया, तब वह स्वयं नहाने और अपने भाई के नहाने-खाने की व्यवस्था करने लगा।

—o—

१४

पण्डित बनारसी दास की दुकान पर सारा दिन ताश खेलने वाले, माँ के द्वारा 'बुद्दू' पुकारे जाने वाले, सदैव मैले तहमद और कुरते से मस्त चेतन के बड़े भाई रामानन्द और उस सुबह साफ़, यद्यपि पुराने, सूट में आवृत, सिर पर मोतिया रंग की पगड़ी सजाये, सस्त लेकिन सुन्दर टाई बाँधे अपने इस छोटे भाई के घर अचानक आ धमकने वाले इन डाक्टर रामानन्द में आकाश पाताल का अंतर था।

इस डेढ़ वर्ष के अर्से में वह आवारा, निकम्मा और नालायक युवक

किस प्रकार डाक्टर कहलाने योग्य हो गया, यह एक लम्बी कहानी है। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त है कि कराची से एल० डी० एस-सी० की डिग्री लेकर आने वाले दाँतों के एक डाक्टर से चेतन की मित्रता थी। जब चेतन के इन भाई साहब की बेकारी और उस पर उनकी पत्नी की कर्कशता ने माँ का जीवन दूभर कर दिया और लाण्डरी के ऋण के अतिरिक्त और भी तीन-चार सौ रुपया अपने इसी सुयोग्य पुत्र की बदौलत माँ के सिर चढ़ गया तो चेतन की माँ ने, जब चेतन एक बार जालन्धर गया था, उस पर ज़ोर दिया कि वह अपने भाई को भी किसी-न-किसी तरह कहीं काम पर लगाये। उसी दिन हँसी-हँसी में चेतन ने अपने उस डाक्टर मित्र से पूछा कि वह उसके भाई को अपना शिष्य क्यों नहीं बना लेता ? उसने हाँ कर दी। चेतन ने भाई के सामने प्रस्ताव रखा और डाक्टर बनने के लाभ पर एक छोटा-मोटा लेक्चर भी दिया। चेतन के बड़े भाई स्वयं घर में प्रतिक्षण होने वाली उस कलह से ऊब चुके थे, उससे पिंड छुड़ाना चाहते थे और घर के बाहर नरक तक में भी जाने को तैयार थे, इसलिए उन्होंने झट चेतन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर इस काम में उनका मन इतना लगा कि उन्होंने परिश्रम करके उसे सीख लिया और उन्हीं डाक्टर साहब की सहायता से कराची के डेंटल कॉलेज से एल० डी० एस-सी० का डिप्लोमा भी ले लिया।

माँ हैरान थी कि उसका यह पुत्र जो कभी किसी काम में जी न लगाता था, जिसे ताश और शतरंज से दिन भर काम रहता था, किस तरह इतना परिश्रमी हो गया ? चेतन के भाई उन डाक्टर साहब के यहाँ सुबह जाते और साँझ को सूरज छिपे वापस आते। उनकी वे आवारों की आदतें भी जाती रहीं। तहमद छोड़ सूट पहनना और चीखने के स्थान पर धीरे बोलना भी उन्होंने सीख लिया था।

वास्तव में पं० शादीराम ने अपने बच्चों की प्रवृत्तियों की ओर कभी ध्यान न दिया था। यों तो वे चाहते थे कि उनके लड़के ई० ए० सी०

और आई० सी० एस० से कम न बनें, पर इन शब्दों के अर्थ तक अपने बच्चों को समझाने की कोशिश उन्होंने कभी न की थी। कभी-कभी 'रिलीविंग' के अपने दौरों से अथवा किसी दूरस्थ स्टेशन से आना और मार-पीट, झिड़क-कोस जाना—बस इस पर ही उनका यह जोश समाप्त हो जाता था।

चेतन के इस बड़े भाई की रुचि बचपन ही से ऐसे कामों की ओर थी, जिनमें दिमाग़ से अधिक हाथों का दख़ल हो। बचपन में वे खिलौने बनाया करते थे। स्कूल में शेष सब विषयों में चाहे फ़ेल हो जायँ पर ड्राइंग में बड़े अच्छे नम्बर पाते थे। स्वयं ही कई चित्र भी उन्होंने बनाये थे। फिर जब कॉलेज के दिनों में चेतन के सिर पर बिस्तर उठवाकर घर से भागे थे तो दिल्ली जाकर एक आर्टिस्ट के शागिर्द हो गये थे।

वहाँ से सौभाग्य वश पं० शादीराम के एक मित्र उन्हें ले आये। तब पण्डित जी ने वापसी पर अपने इस सुपुत्र की ख़ूब गत बनायी थी। जो भी मित्र आता उसके सामने वे उसे कान पकड़कर ले आते और—"यही मेरा सुपुत्र है जो दिल्ली भाग गया था"—इन शब्दों में उनका परिचय कराते और दो-चार मधुर वचनों के चाँटे लगाकर वापस भेज देते।

इस पर तुर्रा यह कि उन्हें फिर कॉलेज में दाख़िल कर दिया गया। वे माँ के सामने कितना ही रोये, किन्तु न माँ को अपने पति और न पुत्र को अपने पिता के सामने इन्कार करने का साहस हुआ। लेकिन जब परीक्षा के लिए फ़ार्म भेजे जाने लगे तो प्रिन्सिपल ने उनका फ़ार्म रोक लिया, क्योंकि उनके लेक्चर बहुत कम थे। तब मन-ही-मन चेतन के भाई ने सन्तोष की साँस ली थी।

पिता तो चाहते थे कि उनका पुत्र फिर से कॉलेज में प्रविष्ट हो, पर पुत्र ने इस बीच में कुछ साहस बटोर लिया था, इसलिए बात जब चली

तो उसने आगे पढ़ने से साफ़ इन्कार कर दिया ।

पिता ने समझा लड़का जवान हो गया है, कहीं बिगड़ न जाय इसलिए उसकी शादी कर दी। लड़का तो क्या सुधरता, हाँ एक लड़ाकी बहू और दो बच्चो का बोझ उनके सिर पर और लद गया ।

अपनी इस दशा की आलोचना करते हुए चेतन के भाई ने एक दिन उससे कहा था :

"अब तुम्हीं बताओ यदि मै नालायक और अयोग्य रहा तो इसमे मेरा क्या दोष है ? गूदड़ की तरह पीटने से लड़का गूदड़ ही तो बनेगा। जितना उन्होने मुझे पीटा है, उतना कभी किसी पिता ने अपने पुत्र को न पीटा होगा !" और उनका गला भर आया था ।

"और फिर," चेतन के भाई ने कुछ ज़ोर देकर कहा था, "मुझे यदि मेरी दशा पर छोड़ दिया जाता तो मै बेकार न फिरता। दिल्ली मे अब तक मैं बहुत बड़ा आर्टिस्ट बन चुका होता ।"

चेतन के बड़े भाई आर्टिस्ट अथवा पेंटर तो न बन सके थे, हाँ डेंटिस्ट ज़रूर बन गये थे ।

चेतन उन दिनों मोहन लाल रोड के एक तन्दूर से रोटी खाता था। पर भविष्य मे डाक्टर कहलाने वाले उसके बड़े भाई वहाँ कैसे खाना खाते और चेतन ही उन्हे तन्दूर पर कैसे ले जाता ? इसलिए जब वह स्नानादि से निबट, उन्हे गणपत रोड के होटलनुमा तन्दूर से खाना खिला लाया और चारपाइयों को बाहर नाली के ऊपर बिछाकर दोनों भाई बैठ गये तो डाक्टर रामानन्द ने अपने आने का मन्तव्य प्रकट किया—

"निरे इस डिप्लोमे को लेकर मैं क्या करूँ ?" उन्होंने कहा, "डप्लोमा पा लेना ही तो सफल हो जाना नहीं। सफलता की होड़ तो

डिग्री लेने के बाद आरम्भ होती है। अच्छी जगह दुकान चाहिए, दुकान में अप-टू-डेट सामान चाहिए और फिर नये ढंग से विज्ञापन हो, तब कहीं अपना कौशल दिखाने का अवसर डेंटिस्ट को मिलता है। इस सबके बाद यदि उसके हाथों में सिद्धि है तो वह चल निकलेगा, नहीं असफल तो वह पड़ा है।

"जहाँ तक सिद्धि का सम्बन्ध है," डाक्टर साहब ने कहा, "उस ओर से मुझे कोई डर नहीं। जालन्धर मे डाक्टर चोपड़ा का सब काम मैं ही कर रहा हूँ। लेकिन प्रश्न तो यह है कि यह सब निपुणता दिखाने का अवसर मुझे कैसे मिलेगा?"

और उन्होंने बताया कि माँ ने किसी तरह की भी सहायता देने से साफ़ इन्कार कर दिया है। और "जब उन्होंने कहीं दुकान खोलने का प्रस्ताव किया और दबी ज़बान से उसके लिए कुछ रुपये की माँग की तो माँ ने लाण्डरी के दिनों के वे गड़े मुर्दे उखाड़े कि उन्हें वहाँ से भागते ही बना।"

तब, आश्चर्य है कि उनकी उसी लड़ाकी, कर्कशा पत्नी ने (जिसने एक बार घर में आटा ख़त्म होने पर दो रुपये देने से इन्कार कर दिया था) अपने दो गहने लाकर उन्हें बेचने को दे दिये थे और न जाने किस तरह पैसा-पैसा जोड़कर इकट्ठे किये हुए नब्बे रुपये भी उनके सामने ला रखे थे।

चेतन के भाई ने बताया कि इनसे वे किसी-न-किसी तरह सस्ता सामान ख़रीदकर फ़ीरोज़पुर में दुकान खोल लेंगे। वहाँ कम्पीटीशन* कम है, इसलिए चेतन से वे इतना कहने आये थे कि कम-से-कम एक वर्ष के लिए वह कुछ रुपये मासिक से उनकी सहायता करे, क्योंकि खोलते ही तो दुकान चल न निकलेगी।

इस पर चेतन ने वहीं लेटे-लेटे जो कहा उससे क्षण भर के लिए

*कम्पीटीशन = Competition = प्रतियोगिता, प्रतिद्वन्द्वता

भाई साहब का मुँह उतर गया। उसने सामने के मकान की किसी लड़की प्रकाशो का ज़िक्र किया जो कि उसके घर आते ही सामने झरोखे में आ बैठती थी और इतवार के दिन जब वह घर होता तो दिन भर धूप के होते भी वहीं बनी रहती थी और सारे संयम के बावजूद उसका मन भटक जाता था।

"इस तरह भटकने से मैंने सोचा है," चेतन ने कहा, "मुझे ब्याह कर लेना चाहिए। सगाई अब छोड़ी नहीं जा सकती और लड़की जैसी भी है, काफ़ी बड़ी है। और मैंने फ़ैसला किया है कि यदि शादी वहीं करनी है तो दो साल रुकने की ज़रूरत नहीं।

और फिर उसने उन्हीं से पूछा था कि पत्नी के साथ लाहौर में रहता हुआ वह किस तरह चालीस रुपयों में से उनको कुछ भेज सकेगा?

चेतन के भाई कुछ क्षण के लिए निराश हो गये। वे कहना चाहते थे कि विवाह के सम्बन्ध में उसे कम-से-कम एक वर्ष के लिए रुक जाना चाहिए। जो व्यक्ति अपनी भावनाओं को संयत नहीं रख सकता, वह संसार में कर ही क्या सकता है? उसका वेतन कुछ बढ़ जाय, तब शादी करे। विवाह भारी उत्तरदायित्य का काम है और इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए सबसे ज़रूरी वस्तु है—रुपया, जो अभी उसके पास नहीं।

किन्तु उन्होंने यह सब कुछ नहीं कहा। वे स्वयं कुछ रुपयों की माँग कर चुके थे और इस सब भाषण में उनकी स्वार्थपरता प्रकट दिखायी देती, यह बात वे अच्छी तरह जानते थे।

तब चेतन ने धीरे से, स्वयं ही जैसे उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा था कि यदि वे लाहौर में प्रैक्टिस करें तो जो भी उससे हो सकेगा वह अवश्य देगा। रुपये भी कुछ-न-कुछ दे सकेगा पर उनसे भी अधिक नाम जमाने में जिस प्रकार की आवश्यकता है, उसमें वह पूरी सहायता करेगा।

"तुम्हें मदद करना हो तो वहाँ भी कर सकते हो," भाई साहब किंचित चिढ़कर बोले, "वहाँ दाँतों के डाक्टर कम हैं, प्रैक्टिस का क्षेत्र बहुत है। यहाँ ईंट उठाओ तो डेंटिस्ट निकल आता है और मुक़ाबिला बेहद ज़्यादा है।"

चेतन ने तनिक जोश से कहा, "मुक़ाबिले से डरना, भाई साहब कायरों का काम है। प्रतिद्वन्द्वता ही वह कसौटी है जिस पर मनुष्य की प्रतिभा खरी-खोटी उतरती है। अव्वल तो फ़िरोज़पुर में आप चार दिन में तंग आ जायेंगे, (मन-ही-मन उसने कहा—मैं आपके स्वभाव को जानता हूँ, माफ़ कीजिएगा, लाण्डरी की बात अभी पुरानी नहीं हुई—किन्तु प्रकट बोला) फिर चल भी निकली तो आप अधिक-से-अधिक सौ-डेढ़ सौ रुपया महीना कमा सकेंगे। लाहौर में यदि प्रैक्टिस चल जाय तो हज़ार रुपया मासिक भी आ जाना बड़ी बात नहीं।"

'हज़ार!' और उस तंग, सील-भरी, दुर्गन्ध युक्त, गर्म जगह में भैंसों और बैलों के समीप ही बैठे हुए डा० रामानन्द के सामने माल रोड की विशालता और उस विशालता का दिग्दर्शन कराती हुई एक सर्जरी घूम गयी और जैसे चेतन पर एहसान का बोझ लादते हुए वे मान गये।

लाहौर जैसे बड़े नगर में थोड़ी-सी पूँजी के साथ कैसे काम चलेगा? चेतन के भाई साहब ने इस बात की चिन्ता नहीं की। ये सब बातें उन्होंने अपने छोटे भाई की कार्यपटुता पर छोड़ दीं। हाँ, उसका ब्याह जल्दी-से-जल्दी करा देने का बोझ उन्होंने अपने कन्धों पर ले लिया और यद्यपि ब्याह की बात चलने पर चेतन की दिलचस्पी उत्तरोत्तर बढ़ रही थी और वह बड़े ज़ोरों से अपने सिद्धान्तों की व्याख्या कर रहा था, पर उसके इस उत्साह की तनिक भी परवाह न करके चेतन के भाई वहीं चारपाई पर लेट, बड़े मज़े से ख़र्राटे लेने लगे।

—o—

१५

चेतन के भाई ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी, ब्याह की तिथि वे अत्यन्त निकट ले आये।

इस सम्बन्ध में माँ को मनाने की तो कोई वैसी आवश्यकता न थी। वह तो इस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा ही कर रही थी और कई बार इस कर्कशा बड़ी बहू से अपनी भावी छोटी बहू के शील-स्वभाव की तुलना करके कल्पना-ही-कल्पना में सुख का आभास भी पा चुकी थी। किन्तु पिता अपने इस पुत्र को विवाहित देखने के लिए कुछ उतने उत्सुक न थे। वे तो उसे पूरा ब्रह्मचारी बनाकर ब्याहना चाहते थे। "पुराने आदर्शों और पुराने सिद्धान्तों को छोड़ने ही से देश और जाति की यह दुर्गति हो रही है," वे मूँछों पर ताव देते हुए कहते, "चारों ओर साहसहीन, बलहीन, पीत-वर्ण युवक-युवतियाँ दिखायी देते हैं जो न ठीक तरह हँस सकते हैं न खेल सकते हैं और न जीवन के दूसरे आनन्द लूट सकते हैं।" और फिर वे ठहाका मारकर हँसते और कुश्ती लड़ने और कबड्डी तथा गदका खेलने और राष्ट्र के निर्माण में इन खेलों के महत्व पर ऊँचे स्वर से उपदेश देने लगते।

किन्तु इस सब आदर्शवाद की तह में जो बात थी, उसे चेतन के बड़े भाई भली-भाँति समझते थे। जी भर पीने और जी भर उड़ाने और उस पीने और उड़ाने के लिए जी भर क़र्ज़ लेने के कारण पण्डित शादीराम ने कभी इतना धन-संचय न किया था कि वे विवाह ऐसी 'व्यर्थ की रस्मों' पर खर्च कर सकते—विशेषतया उस समय जब लड़का ब्रह्मचर्य-आश्रम को भी न पार कर पाया हो। इसलिए आदर्श की बात छोड़कर चेतन के भाई ने इसी आर्थिक कठिनाई का हल उन्हें सुझाया था।

"विवाह तो बस्ती ही में होने वाला है," उन्होंने कहा था, "खर्च अधिक न होगा। फिर इतनी रस्मों की भी क्या ज़रूरत है। बस आर्य-

समाजी रीति से विवाह हो जाय। गहने-कपड़े कुछ माँ ने बनवा ही रखे हैं, अपने लिए कपड़ों की कोई ऐसी आवश्यकता नहीं, यही पहनकर चले जायँगे। फिर छुट्टी भी आपको अधिक न लेनी पड़ेगी।" और उन्होंने सुझाया था—"आखिर जब शादी करनी ही है तो समय पर क्यों न कर दी जाय?"

और चेतन के पिता मान गये थे। तय यह हुआ कि प्रावीडेण्ट फण्ड से साढ़े पाँच सौ रुपया निकाल लिया जाय (पिछला ऋण उसी महीने पूरा जो हो रहा था) गहने कुछ-न-कुछ बने हुए हैं और सुधार की शादियों में दिखावे की कोई वैसी आवश्यकता नहीं।

पण्डित शादीराम ने अपनी ओर से स्वीकृति देते हुए इतना और कहा था कि देसराज के होते हुए किस बात की चिन्ता है। वह सब प्रबन्ध बड़ी आसानी से कर देगा।

देसराज जिस तरह का प्रबन्ध कर सकता था, इसका पता बारात जाने के दो दिन पहले भली-भाँति चल गया।

थका-हारा चेतन लाहौर से आया था। आँगन में कड़ाही रख दी गयी थी और शीरनी आदि तैयार की जा रही थी। माँ ऊपर व्यस्त थी। बड़े भाई दर्ज़ी से अपना सूट सिलवाने बाज़ार गये हुए थे। छोटे भाई नित्यानन्द को नया-नया अखाड़े जाने का शौक़ लगा था। आख़िर पण्डित शादीराम के उपदेश व्यर्थ न गये थे और वह देश के पुनर्निर्माण में पूरी तरह संलग्न था। विवाह हो अथवा मृत्यु, उसके लिए अखाड़े जाने के नियम को तोड़ना कठिन था। छुट्टियों के दिन थे। चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र, शादी का अर्थ वह अधिक न समझता था और प्रातः का गया हुआ दस बजे से पहले अखाड़े से कभी न लौटता था। चेतन ने नीचे ही से माँ को प्रणाम किया और पूछा पिता जी किधर हैं?

पता चला कि देसराज के यहाँ गये हैं।

पूछा, "वहाँ क्यों गये ?"

पता चला, "साड़ी पर कुछ सलमे का काम कराना था, इसलिए वहाँ गये हैं।"

देसराज का घर क़िले मुहल्ले में था और क़िले मुहल्ले से तनिक दूर पुरियाँ मुहल्ला है....और वहीं कुन्ती का घर है....और अपने इस विवाह से पहले, वय-सन्धि के अपने उस शर्मीले प्यार की मूर्ति को एक नज़र देखने की आकांक्षा चेतन के मन में प्रबल हो उठी।

नीचे आँगन ही से उसने आवाज़ दी, "मैं पिता जी को देसराज के यहाँ देखने जा रहा हूँ।"

माँ ने बहुतेरा कहा कि अभी तू आया है, कुछ पानी-वानी पी, ऊपर आ....पर चेतन नहीं रुका।

इस बीच में कुन्ती का विवाह हो गया था। अपने विवाह के बाद वह उससे मीलों दूर चली गयी थी; किन्तु चेतन की अपनी शादी के बाद तो शायद वह स्मृति से भी परे चली जायगी। जब उसके सम्बन्ध में सोचना भी दूसरे से धोखा करने के बराबर होगा तो क्यों न सदैव के लिए बिछुड़ने से पूर्व उसे एक नज़र देख लिया जाय ?........यही सोचकर, माँ के अनुरोध की उपेक्षा करके, चेतन अपने पिता को देखने के बहाने उधर चल पड़ा।

सुन्दर तीखा चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, अरुणिमा का जैसे उपहास-सा करते हुए मुस्कराते ओठ, लाल साड़ी, यौवन-भार को सम्हाल सकने में जैसे असमर्थ शरीर, लाल चूड़ा, जिसकी चूड़ियों की सुनायी न देने वाली झंकार ने उसके मन-प्राण को झंकृत कर दिया था—विवाह के बाद यह था कुन्ती का चित्र ! उसके मस्तक के घाव का निशान, जो द्वितीया के चन्द्र की भाँति माथे पर सुशोभित था, और भी साफ़ हो

आया था और वह सब उसके हृदय-पट पर अमिट रूप से अंकित हो गया था।

उन दिनों वह लाहौर से एक दिन के लिए जालन्धर आया था और किसी अज्ञात प्रेरणा से अनन्त को साथ लिये, उधर जा निकला था। अनन्त ही ने उसे बताया था कि 'उसकी' कुन्ती का विवाह हो गया है—'भोगपुर सीरवाल' के एक मोटे से पण्डित के साथ, जिसने वहीं पुरियाँ मुहल्ले के पास ही, होशियारपुर के अड्डे पर एक प्रेस खोल लिया है।

लेकिन कुन्ती अपनी इस होशियारपुर के अड्डे वाली ससुराल में न थी। अपने मायके ही में कुएँ पर वह अपनी एक सहेली के साथ चर्खी पर पानी भर रही थी। उससे उसकी आँखें चार हुईं। कुन्ती के ओठों की मुस्कान और फैल गयी। चर्खी उसके हाथ से छूट गयी और घर्र-घर्र करती हुई बाल्टी धम से नीचे पानी में जा गिरी। वह स्वयं एक ओर कूद गयी और हँसते-हँसते उसके पेट में बल पड़ गये।

उस सुख भरे दिन की मधुर-स्मृति में खोया चेतन क़िले मुहल्ले के पाँस पहुँच गया। उसने देसराज के घर में अपने पिता के विषय में पूछा। मालूम हुआ कि आये थे, पर कर्तार सिंह थानेदार के साथ चले गये हैं और जाते-जाते देसराज को भी ले गये हैं।

यह कर्तार सिंह पं० शादीराम के लँगोटिया यारों में से थे और उनके आने का एक ही अभिप्राय हुआ करता था। बाज़ार शेख़ाँ और उसमें उस 'तरल आग' का व्यवसाय करने वाले अथवा करने वाली के यहाँ बैठक! तब चेतन ने निर्णय किया कि वह अपने पिता से अवश्य पूछेगा कि उन्होंने उसे क्या वचन दिया था? उसने तीन पत्रों में लिखा था कि कम-से-कम ब्याह के चार दिन वे कृपा कर मदिरा से दूर रहें, फिर चाहे प्रलय-पर्यन्त बाज़ार शेख़ाँ में पड़े रहें और उसके पिता ने

विश्वास दिलाया था कि उन्हें स्वयं इस बात का ध्यान है, बस्ती में शादी है और उन्हें अपनी इज़्ज़त कम प्यारी नहीं। वे शराब को हाथ तक न लगायेंगे।

लेकिन वह पुरियाँ मुहल्ले की ओर बढ़ चला। इस दुखद प्रसंग को उसने अपने मन से हटा दिया और अनायास ही एक दूसरा चित्र वहाँ बनने लगा—वह एक बार फिर जालन्धर आया था। कुन्ती इस बीच में एक बच्चे की माँ बन चुकी थी। उसे ख़याल तो न था कि वह उससे मिल सकेगा, किन्तु संयोग-वश उस दिन वह अपने पुरियाँ मुहल्ले वाले मकान की खिड़की ही में बैठी थी। सुबह का समय था। कदाचित स्नान करके सफ़ेद धोती उसने पहन रखी थी, जिसमें से उसके काले, खुले, लम्बे, सुकोमल केश साफ़ दिखायी दे रहे थे। उसकी गोद में उसका बच्चा था, चेतन को देखकर वह मुस्करा दी थी। धोती का छोर उसके सिर से खिसक गया था और चेतन का हृदय धक से रह गया था। वह पहले से कहीं अधिक सुन्दर दिखायी देती थी। उसकी आँखों में वही चमक थी, वही दमक और वही स्नेह........

और बच्चे से कुन्ती ने धीरे से कहा था—ऐसे कि गली से गुज़रता हुआ चेतन सुन ले—"गुड्डू, जाओ अपने मामा के पास !" और वह हँस दी थी........और इस एक वाक्य से चेतन ने जान लिया कि उस स्नेह में कितनी पवित्रता आ गयी है।

चेतन पुरियाँ मुहल्ले के पास पहुँच गया। गली के मोड़ से उसने खिड़कियों की ओर देखा। बन्द थीं। वह आगे बढ़ा। कुछ उदासी-सी उसे चारों ओर छायी हुई दिखायी दी।

दो स्त्रियाँ जल्दी-जल्दी बातें करती हुई उसके पास से गुज़र गयीं। "शामो बेचारी........"

"यह धन ही ऐसा है, यह सम्पत्ति किसी को न फलेगी।"

और आह भरकर पहली ने कहा, "लेकिन जवानी का रँडापा, इससे तो मौत अच्छी है।"

होशियारपुर के अड्डे की ओर जाने वाली ढालुवीं गली में वह उतर रहा था कि उसे दो और वृद्धाएँ मिलीं।

"अभी उमर ही क्या है?" एक कह रही थी, "न कुछ खाया, न पहना।" और दूसरी ने दीर्घ-निश्वास छोड़ा।

चेतन अपने विचारों में मग्न जा रहा था कि गली की नुक्कड़ के पास उसे उसका पुराना मित्र गच्चो (गुरबचन) लकड़ी के टाल पर बैठा हुआ मिल गया।

"बड़ा बुरा हुआ!" जैसे उसने चेतन से शोक़ प्रकट करते हुए कहा।

चेतन ने प्रश्न-सूचक-दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"कुन्ती का पति मर गया।"

"कुन्ती का पति!" चेतन अवाक् खड़ा रह गया, "पर वह बीमार तो न था!"

"नहीं, कोई ज़्यादा बीमार नहीं हुआ," गुरबचन ने कहा, "टायफ़ाइड था। बस आठ दिन में खत्म हो गया।"

चेतन वहीं उसके साथ तख़्त पर बैठ गया।

"साथ तो चलोगे?"

"हाँ चलूँगा।"

और पहली बार चेतन को ऐसा लगा जैसे उसके किसी आत्मीय की मृत्यु हो गयी है। उस मोटे थलथल-पिलपिल पण्डित के प्रति उसके हृदय में कुछ ऐसा स्नेह उमड़ आया, जैसे वह उसका ही कोई भाई था। मन-ही-मन उसने अपने आपको समझा लिया। कुन्ती पण्डित पोल्हो राम की दौहित्री थी और पण्डित पोल्हो राम उसके पिता के

पुराने परिचित थे। तो फिर अर्थी के साथ उसे जाना ही चाहिए। किन्तु अपने पिता की ओर से मित्रता निभाने के विचार की तह में कहीं अज्ञात रूप से गुड्डू की माँ के दुख में अपनी समवेदना प्रकट करने की भावना भी छिपी हुई थी। दोपहर होने को आयी जब अर्थी घर से निकली।

श्मशान भूमि में उसने पहली बार कुन्ती को देखा। पुरुष वहाँ किसी दानी द्वारा बनवाये गये पक्के बरामदे में खड़े थे और स्त्रियाँ सामने श्मशान के ऊँचे दरवाज़े की छाया में खड़ी रो-पीट रही थीं कि आग देने से पहले शव को लकड़ियों पर रखकर एक वृद्ध ने कहा, "बेटी को ले आओ, मुँह देख जाय।"

तब उसने देखा कि तपती धूप मे नंगे पाँव, सफ़ेद धोती पहने, मूक-मर्माहत-सी कुन्ती धीरे-धीरे आगे बढ़ी। इन सात-आठ दिनों में ही वह अत्यन्त दुबली हो गई थी। हिम ऐसे श्वेत चेहरे पर सिर्फ़ लम्बी नाक ही दिखायी देती थी और आँखें जैसे शून्य में खोयी-खोयी भटक रही थीं। वह न रो रही थी, न अपनी बड़ी बहन शामो की भाँति छाती पीट रही थी। वह चुप थी जैसे उसकी चेतना को भी मृत्यु सूँघ गयी हो।

धीरे-धीरे वह चिता के पास आयी। वृद्ध सज्जन ने शव के मुँह से कपड़ा हटाया और उसके एक नज़र देख लेने के बाद फिर ढँक दिया। कुन्ती ने पीछे हटकर शव के चरणों को छुआ और जैसे आयी थी वैसे ही निस्पन्द और निष्प्राण-सी चली गयी।

चेतन की निगाहें उस समय तक जलती-तपती धरती पर लोटती रहीं जब तक कि वह जाकर श्मशान के दरवाज़े पर खड़ी स्त्रियों में शामिल न हो गयी।

वापसी पर चेतन का मन भारी रहा। कुन्ती की वही म्लान, विवर्ण मूर्ति उसके सामने रही। ब्रह्मकुण्ड के रँहट पर आकर उसने जल्दी-जल्दी स्नान किया और फिर वह उसके गेट पर आकर इस प्रतीक्षा

में खड़ा हो गया कि स्त्रियाँ गुफा से स्नान करके आयें तो वह उनमें उस म्लान-मुख को एक नज़र और देख ले। कौन जाने फिर वह मुख उसे कभी देखना नसीब होगा या नहीं। कुन्ती की उस आकृति में कुछ ऐसी बात थी, कुछ ऐसी दबी-घुटी, सहमी-डरी वेदना, कुछ ऐसी करुणा और अवसाद कि वह प्रयास करने पर भी उसे भूल न पा रहा था।

कुछ देर बाद गुफा की बावली से नहाकर आने वाली स्त्रियाँ ब्रह्मकुण्ड के सामने से गुज़रने लगीं। बीच में दो स्त्रियों के सहारे जैसे हर क़दम पर बेहोश होने को होती हुई शामो थी। उसके पीछे, चेतन ने देखा, कुन्ती चुपचाप, नंगे पाँवों वैसे ही खोयी-खोयी-सी चली आ रही है। गीली धोती उसके शरीर से चिपटी हुई थी और उसके मुख पर वही वेदना थी, आँखों में वही अवसाद....!

एक बार दरवाज़े पर खड़े चेतन की ओर उसने देखा। उसके मुख पर वही शून्यता, वही ठण्डक, वही मृत्यु की-सी सफ़ेदी थी, और फिर निमिष-मात्र में उसने वह अनुरागहीन, भावनाहीन, चेतनाहीन, दृष्टि भी फेर ली।

किन्तु चेतन के हृदय में दूर तक वही दृष्टि धँसती चली गयी और उसने जैसे सुना वह दृष्टि कह रही थी—बस अब विदा! अब मैं तुम्हारी ओर देख भी न सकूँगी। अब मैं विधवा हूँ। विधवा जिसके लिए हँसना दूर, मुस्कराना भी पाप है। और उसने सोचा—कहीं वह स्वतन्त्र होता और कहीं वह भी स्वतन्त्र होती—जैसे स्वतन्त्र देशों के पुरुष-स्त्रियाँ............लेकिन फिर उसे ख़याल आया कि वह तो शादी करने आया है और उसने चाहा कि सब कुछ छोड़कर कहीं भाग जाय—कहीं ऐसी दुनिया में जहाँ कोई न हो—न मनुष्य, न समाज—और वह पंछी बन जाय—और स्वतन्त्र, स्वछन्द आकाश की गहराइयों में उड़ानें भरता फिरे........!

किन्तु न वह भागा, न पंछी बना। शाम होते-होते घर वापस

आ गया। थका, ऊबा और चिढ़ा हुआ। उसकी रूह पर जैसे अगणित सदियों से होने वाली मौतों का भार था, अगणित युवतियों के मूक क्रन्दन जैसे उसके कानों में गूँज रहे थे और बेड़ियों में बँधे हुए युवा हृदय जैसे उसकी आँखों के सामने सिसककर, घुटकर दम तोड़ रहे थे।

—o—

१६

माँ ने कहा, "बेटा बड़ी देर लगा दी, मिले नहीं ?"

"मिलते कहाँ ?" चेतन ने चिढ़कर कहा, "देसराज और थानेदार कर्तार सिंह के साथ कहीं बाज़ार शेखाँ में बैठे होंगे।"—और वह चुप-चाप नीचे बैठक के पास वाले कमरे में जा बैठा।

इस अपने चिर-परिचित कमरे में बैठे-बैठे कई घटनाएँ मूर्तिमान होकर उसके सामने आयीं—वह कुन्ती से पहली भेंट, वय-सन्धि का वह लजाया-शर्माया प्यार, वह चुपचाप बिना उसकी ओर देखे उसकी खिड़की के नीचे से गुज़र जाना और वह उसका अनायास अपने नन्हें गुड्डू को बताकर उसके साथ भाई का नाता जोड़ लेना।....

धीरे-धीरे बाहर सन्ध्या बढ़ आयी और अन्दर कमरे में अँधेरा छाने लगा। मुहल्ले में चिल्ल-पों शुरू हो गयी। कुएँ के गहरे पानी में गागरों, घड़ों और बाल्टियों के डूबने की आवाज़ें आने लगीं। चेतन मन-ही-मन पहचानता रहा—यह घड़ा डूबा है—गहर-गम्भीर स्वर से यह गागर, यह बाल्टी। फिर उन आवाज़ों के साथ-साथ लोहे की चर्खियों की चीं-चीं, पानी भरने वालों की 'तू-तू', 'मैं-मैं' और फिर साँझ के साथ ही मुहल्ले में जागने वाले उलाहने, कोसने और गाली-गलौज उसके कानों में गूँजने लगे—

किन्तु इस समस्त कोलाहल में चेतन मौन स्थिर, निस्पन्द दीवार के साथ पीठ लगाये बैठा रहा और फिर मुहल्ले वालों के चित्रों के ऊपर उसके सामने कई श्रान्त-क्लान्त युवतियाँ तपती रेत पर नंगे पाँव चलती रहीं, वह उनकी सहायता को उद्विग्न होता रहा और एक मोटी-मुटल्ली फूहड़-सी लड़की उसका दामन खींचती रही।

छोटा भाई कमरे में लैम्प रख गया। बड़ा भाई भी आ गया। छोटा भाई ताश ले आया। दो-चार बाज़ियाँ भी खेली गयीं और बे-मन-सा वह खेल में योग भी देता रहा, उनसे बातें भी करता रहा और हँसता भी रहा।

तभी उसने सुना—हरलाल पंसारी की दुकान पर नशे में चूर उसके पिता ऊँचे स्वर में किसी की 'श्रेष्ठता' पर मुग्ध होकर, उसे अपने कोष की श्रेष्ठतम गालियाँ प्रदान कर रहे हैं।

ताश का खेल बन्द हो गया।

छोटे भाई ने माँ से जाकर कहा कि पिता.जी आ गये हैं। चेतन जैसे रूठकर, दीवार के साथ पीठ लगाकर बैठ गया और बड़े भाई लेट गये।

कोने में मकड़ी के एक नये-नये जाले में एक मक्खी कहीं से आ फँसी और उस भिनभिनाती मक्खी पर मकड़ी तेज़ी से अपना फंदा कसने लगी।

दूसरे क्षण पण्डित शादीराम मुहल्ले में खड़े अपने अभिन्न-हृदय-मित्र लाला रामध्यान पर 'मधुर वचनों' की वर्षा कर रहे थे। उधर से हटकर उन्होंने चेतन के भाई को आवाज़ दी—"रामानन्द !" और साथ ही पूछा कि चेतन आया है या नहीं।

जब चेतन के बड़े बाई ने बढ़कर बैठक का दरवाज़ा खोला और कहा कि चेतन सुबह का आया हुआ है तो पगड़ी बगल में दबाये लड़-खड़ाते हुए पण्डित शादीराम अन्दर आये।

पुत्र ने पिता को प्रणाम जैसा कुछ किया और फिर ज़रा तेज़ी से कहा कि वह सुबह से उनकी खोज कर रहा है और उसने लिखा था कि तीन दिन........!

पिता ने कड़ककर कहा, "तुम सुनो तो सही ! कर्तार सिंह थानेदार आ गया था, उसके साथ आवश्यक काम से........"

पुत्र ने कहा, "मैं सब जानता हूँ, मैं नहीं सुनता।" और उसने मुँह फेर लिया।

पिता की आँखों में अंगारे जल उठे। शराब के नशे में उन्हें लगा कि उस ज़रा से चिबिल्ले ने उनका अपमान कर दिया है—उनका, जिन्होंने अपने अँग्रेज़ ट्रैफ़िक इन्सपेक्टर तक के मुँह पर थप्पड़ जमा दिया था। और भी कड़ककर उन्होंने कहा, "नहीं सुनता, न सुन, ऐडिटर बना फिरता है........!" और गालियाँ....

"गालियाँ न दीजिए !" पुत्र चारपाई पर खड़ा हो गया।

पिता पगड़ी फेंककर और भी मन-मन भर की गालियाँ देते हुए उसकी ओर लपके कि छोटे भाई ने उन्हें रोक लिया।

चेतन उछला—उसने केवल यही देखा कि—"आ पहले तेरी ही पहलवानी देखूँ—" यह कहते हुए एक बार चेतन के पिता ने छोटे भाई को चारपाई पर गिरा दिया और एक बार छोटे भाई ने पिता को।

सिर का पसीना गले से बहता हुआ पाँवों की ओर चला जा रहा था। स्टेशन पर खड़ी किसी गाड़ी के इंजन का धुआँ वातावरण को और भी गर्म, और भी 'गल-घोटू' बना रहा था। उनींदी आँखों को लिये, पसीने से तर, सफ़ेद ज़ीन के सूट पहने, कुछ बाबू थकी हुई चाल से इधर-उधर घूमते दिखायी देते थे। बाहर अन्धकार किसी भयानक प्रेतात्मा की भाँति नन्हीं-नन्हीं रोशनियों का गला दबा रहा था और दरम्याने दर्जे के मुसाफ़िरखाने में अगणित परवाने, न जाने कब से,

गैस के हंडे से टक्करें मार रहे थे और नीचे फ़र्श पर बेगिनती पंख टूटे पड़े थे।

चेतन लकड़ी के खम्भे से पीठ लगाये, सूटकेस को पास रखे, छोटे-से बिस्तर पर बैठा था।

किसी भयानक स्वप्न की तरह कुछ देर पहले की घटनाएँ उसके सामने घूम रही थीं—उसके भाइयों और उसके पिता में मल्ल-युद्ध हुआ था। उसके छोटे भाई ने पिता पर आक्रमण किया हो, यह बात न थी। उसने तो उन्हें केवल चेतन को पीटने से रोका था और फिर वह किसी प्रकार का प्रहार किये बिना अपने आपको बचाता ही रहा था। लेकिन इतने में ऊपर से कहीं आ गयी माँ। बड़े भाई ने उसे दरवाज़े ही में रोका था। लेकिन पति और पुत्र में मल्ल-युद्ध हो और वह खड़ी देखती रहे! डरती, काँपती वह आगे बढ़ी थी। तब—"तेरी ही कोख से ऐसे कपूत पैदा हुए हैं!"—यह कहते हुए और गालियाँ देते हुए एक लात पण्डित जी ने अपनी पत्नी के जमा दी। दुर्बल क्षीण काया, हड्डियों का ढाँचा-सा शरीर, वह सीधी मेज़ के कोने में जा लगी और अचेत हो गयी।

चेतन के बड़े भाई ने माँ को सम्हाला। उसे आँगन में लिटाकर वे पलटे और उन्होंने छोटे भाई को पिता के निर्दयी पंजों से बचाया। पण्डित शादीराम ने लाठी उठा ली।

तब चेतन फ़र्श पर अपने पिता के सामने बैठ गया कि जो कुछ कहना है उसे कह लिया जाय! किन्तु पाँव की ठोकर से उसे ठेलकर पण्डित जी अपने उस बड़े पुत्र की ओर बढ़े। उनका वार बचाकर बड़े भाई ने उन्हें एक ही दाँव में नीचे रख लिया और छोटे बड़े दोनों भाइयों ने उन्हें उनकी ही पगड़ी के साथ कसकर चारपाई से बाँध दिया।

कुछ क्षण के लिए स्तब्ध-सा बैठा चेतन यह सब दृश्य देखता

रहा। फिर उसने अपना छोटा-सा बिस्तर—जो अभी तक बैठक के कोने में पड़ा था—उठाया, सूटकेस हाथ मे लिया और स्टेशन की ओर चल दिया। किधर जायगा, कौन-सी गाड़ी पर जायगा, उसने कुछ भी तय नहीं किया।

पास ही फ़र्श पर सोये हुए किसी व्यक्ति ने शायद किसी मच्छर के काट खाने से अपनी जाँघ पर एक थप्पड़ जमाया और करवट बदल ली।

फिर किसी गाड़ी के आने की घण्टी बजी और अपनी उनींदी, अलसायी आँखों के साथ एक बाबू गेट पर आ खड़ा हुआ।

चेतन ने बटन खोलकर अपनी छाती का पसीना पोछा। परसों उसका विवाह है। वह मन-ही-मन हँसा। किन्तु इस हँसी के बावजूद उसकी आँखें आर्द्र हो गयीं।

तभी उसकी कल्पना के सम्मुख दो और गीली आँखें फिर गयीं, जिन्हें उसने आज ही सुबह देखा था। क्या दोनों की गीली आँखें मिलकर सुख का एक नया संसार न बना सकती थीं!

और उस सुख के संसार का एक दृश्य उसकी आँखों में बस गया—दो भूखी आत्माओं का मिलन, अभावों की पूर्ति, समाज से दूर, जाति-उपजाति के भेदों से दूर....लेकिन गड़गड़ करती हुई एक गाड़ी प्लैटफ़ार्म पर आ गयी। निमिष-मात्र के लिए उसने सोचा—क्यों न वह इसी गाड़ी में चढ़ बैठे। लाहौर को जाने वाली गाड़ी—वह तो साढ़े पाँच बजे आयेगी और अभी सिर्फ़ एक बजा है।

"हलो, चेतन!"

हड़बड़ाकर वह मुड़ा और उसने हाथ भी बढ़ा दिया।

"किन्तु यह तुम किस शिष्टाचार में पड़ गये, गाड़ी पर मुझे लेने आ गये और फिर इस समय! इस कष्ट की क्या ज़रूरत थी?"

मन से खिन्न होने पर भी चेतन ने अनन्त को देखकर एक

ठहाका लगाया ।

"कौन कम्बख्त तुम्हें लेने आया है ? मैं तो स्वयं लाहौर जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।"

"लाहौर को जाने वाली गाड़ी की ? पागल हो गये हो, उसमें तो अभी साढ़े चार घण्टे हैं और फिर विवाह....?"

अनन्त को उस दम घोंटने वाले वातावरण से निकालकर चेतन सीढ़ियों पर ले आया और वहीं खड़े-खड़े शाम की सारी घटना उसने अपने इस मित्र को सुना दी । अन्त में उसने कहा, मैं पक्का निश्चय कर चुका हूँ कि अब मैं विवाह नहीं करूँगा, चाहे पिता जी आकर मेरे पाँव भी क्यों न पड़ें !"

"जैसे वे तुम्हारे पाँव पड़ने के लिए छटपटा रहे हैं !"

अब ठहाका लगाने की उसकी बारी थी ।

कुछ खिन्न होकर चेतन ने कहा, "मैंने निश्चय कर लिया है कि...."

बात काटकर अनन्त बोला, "तुम तो पागल हो !" और उसने ताँगे वाले को आवाज़ दी । ताँगा आ जाने पर चेतन के मना करने पर भी उसने उसका सूटकेस उठाकर उसमें रख दिया ।

"बाबू जी किधर जाना है आपको ?" ताँगे वाले ने पूछा ।

"चौरस्ती अटारी !" चेतन को बरबस बैठाते हुए अनन्त ने कहा और ताँगा चल पड़ा ।

"लेकिन मैं घर नहीं जाऊँगा !" चेतन ने बैठे-बैठे रुँधे कण्ठ से कहा ।

"कौन कम्बख्त तुम्हें वहाँ जाने के लिए कह रहा है ।" अनन्त हँसते हुए बोला ।

"लेकिन........"

"लेकिन एक शराबी की बात पर गुस्सा होकर तुम इतना बड़ा अन्याय करने जा रहे हो । तुम्हें शर्म आनी चाहिए ।"

"मैं यह विवाह बिलकुल नहीं चाहता, कभी नहीं चाहता !" चेतन ने बच्चों की भाँति कहा ।

"तुम्हारे भाई से भी मैंने बात की थी," अनन्त ने कहा, "और स्वयं तुमने मुझे क्या लिखा था ? कायर !"

परास्त होकर भी चेतन ने कहा, "वह तो क्षणिक आवेश था। चन्दा को पसन्द तो मैंने कभी नहीं किया ।"

"लेकिन अब इस बकवास से लाभ ?" अनन्त कुछ क्रोध से बोला, "लड़की के मनोभावों का भी ख़याल किया तुमने ? वह आत्महत्या कर सकती है । उसके माता-पिता हैं, नाते-रिश्तेदार हैं । तुम उन सबका इतना बड़ा अपमान कैसे कर सकते हो ?"

एक हाथ में बिस्तर और दूसरे में सूटकेस लिये जब दोनों हरलाल पंसारी की दुकान के सामने से होकर अनन्त के घर की ओर को मुड़े तो पण्डित शादीराम अपने घर में अब भी ऊँचे स्वर से गालियाँ दे रहे थे । उनका गला बैठ गया था, आवाज़ भारी हो गयी थी, किन्तु गालियों में वही तीखापन था और शायद वे अब भी चारपाई से बँधे थे ।

—o—

१७

यद्यपि चेतन के पिता ने पहाड़ जैसी कसमें खाकर इस बात की घोषणा की थी कि वे उस कपूत की बारात में शामिल न होंगे और यद्यपि सारी रात अनन्त के समझाते रहने पर भी चेतन यही कहता रहा था कि वह शादी न करेगा, किन्तु इस बात का श्रेय अनन्त की कार्यपटुता और पण्डित वेणी प्रसाद की विनयशीलता को है कि नियत समय पर चेतन की बारात कल्लोवानी से चल पड़ी । चेतन दूल्हा बना और शादीराम ने पिता के सारे कर्त्तव्य पूरे किये ।

रात भर पण्डित जी चारपाई से बँधे पड़े रहे थे। गालियों की अविरल धारा उनकी वाणी में बहती रही थी, यहाँ तक कि बोलते-बोलते उनका गला सूख गया और बँधे-बँधे उनके बाज़ू ऐंठ गये और उनका नशा भी लगभग सारा-का-सारा उतर गया था।

तब उन्होंने थक-हारकर, पर और भी भद्दी गालियाँ देते हुए कहा कि उन्हें खोल दिया जाय और वे कुछ न कहेंगे।

उन्हें खोल दिया गया था। वे सीधे देसराज के यहाँ गये। वहाँ से कुछ और पी आये। देसराज को भी उन्होंने साथ लाना चाहा, किन्तु उसने न आने ही में अपनी कुशल समझी।

घर आकर पण्डित जी ने थर्राती हुई आवाज़ में पूछा, "कहाँ है वह सुअर?"

मतलब चेतन से था। बड़े भाई ने दरवाज़े की चौखट पर बैठे-बैठे कहा, "वह चला गया है।"

पण्डित जी तनिक चौंके, किन्तु पूर्ववत् गालियाँ देते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें इसकी ज़रा भी परवाह नहीं, उनकी ओर से चाहे शादी हो या न हो और चाहे सब मर जायँ।

और फिर उलाहने के स्वर में लेकिन उसी कड़कड़ाती आवाज़ से उन्होंने कहा कि जिस पुत्र को अपने पिता का इतना भी ख़याल नहीं और जो नशे में कही गयी उसकी बात पर इतना गुस्सा हो सकता है, वे उसकी ज़रा भी परवाह नहीं करते। और उस अपने नालायक लड़के को गालियाँ देते हुए उन्होंने घोषित किया कि वे स्वयं सुबह चले जायँगे।

लेकिन जितनी अधिक वे गालियाँ देते थे, जितने अधिक वे कड़कते थे, उतना ही अधिक उनके हृदय की दुर्बलता का पता चलता था।

चेतन पर गालियों के द्वारा अपना क्रोध उतारकर वे अपने दूसरे पुत्रों की ओर पलटे।

किन्तु भाई साहब शायद उनके हृदय की इस दुर्बलता को भाँप

गये थे। पण्डित शादीराम को अपनी बात का सदा मान रहता था। और चेतन के चले जाने पर पण्डित वेणी प्रसाद के सामने उन्हें लज्जित होना पड़ेगा, यही डर उनके मन में किसी अज्ञात स्तर के नीचे दबा बैठा था, इसलिए ज्योंही उन्होंने कहा, "आओ अब जिस जिस में बल हो मुझसे कुश्ती लड़ देखे।" तो भाई साहब अवसर उपयुक्त जानकर उनके पाँव पड़ गये, माफ़ी माँग ली और कहा कि उन्होंने तो सिर्फ़ उन्हें चेतन को मारने से रोका था और भावावेश में वे रोने लगे।

अपने बड़े भाई का अनुसरण करते हुए छोटे भाई ने भी पहले पाँव पड़कर माफ़ी माँग ली और फिर वह भी रोने लगा।

पण्डित शादीराम स्वभाव से क्रूर थे, कठोर थे तथा अत्याचारी भी उन्हें कहा जा सकता है, पर इसके साथ ही उनके हृदय में कहीं-न-कहीं उदारता और कोमलता भी यथेष्ट मात्रा में दबी पड़ी थी। इसी कोमलता के कारण वे अपने शत्रु को माफ़ कर देते थे और इसी कोमलता के कारण जब किसी मित्र अथवा निकट सम्बन्धी की बेवफ़ाई उनके मर्मस्थल पर चोट पहुँचाती थी तो वे बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो पड़ते थे।

पुत्रों के इस व्यवहार ने शायद उनके मर्मस्थल पर चोट की थी। उनका गला भर आया और वे भी रोने लगे। माँ तो पहले ही से रो रही थी।

मिट्टी के तेल का लैम्प, जिसने सन्ध्या के बाद बहुत कुछ देखा था, अब भी धीमे प्रकाश से जल रहा था। चिमनी कुछ काली हो गयी थी और उसके धीमे प्रकाश में ये चारों व्यक्ति चार पीड़ित आत्माओं की भाँति दिखायी देते थे।

पिता ने पुत्रों को गले से लगाया। रोते-रोते चेतन को गालियाँ दीं और फिर भारी गले से पत्नी से कहा कि चारपाई बिछा दे।

एक घण्टे के बाद सभी थके-हारे सो रहे थे। पण्डित जी के ख़र्राटों की आवाज़ भी आने लगी थी। केवल माँ जागती थी और भगवान गजानन से प्रार्थना कर रही थी कि चेतन आ जाय और विवाह का काम कुशलतापूर्वक समाप्त हो जाय!

सुबह जब अनन्त चेतन के घर गया तो उसने माँ को चुपचाप आँगन में सिर झुकाये माला फेरते पाया।

माँ पूजा कर चुकी तो उसके परामर्श से अनन्त बस्ती से पण्डित वेणी प्रसाद को बुला लाया। दोपहर के लगभग पण्डित शादीराम जागे और भारी थके गले से उन्होंने पानी माँगा। माँ ने पानी का गिलास उन्हें देते हुए बताया कि बस्ती से पण्डित वेणी प्रसाद आये हैं। तब करवट लेकर भरे गले से पण्डित जी ने कह दिया कि रामानन्द उनसे बात कर ले, मैं किसी काम में दखल न दूँगा और कोई मुझे न बुलाये।

चेतन की माँ से उनका यह निश्चय सुनकर अनन्त ऊपर आया। हैट उतारकर उसने पण्डित जी को साष्टाँग प्रणाम किया और फिर पास बैठकर उसने चेतन की मूर्खता पर खेद प्रकट किया:

"वह एकदम मूर्ख है। दुनिया का उसने अभी कुछ नहीं देखा, दुनियादारी उसे आती नहीं........" उसने कहना शुरू किया:

"वह कम्बख्त समझता है कि वह अब स्वतन्त्र है, कमाता है और उसे किसी की परवाह नहीं," पण्डित जी ने रात के थके हुए भारी गले से कहा, "लेकिन मैं ही उसकी क्या परवाह करता हूँ? मेरे नाम ही वह कौन-सी जायदाद लिख देगा?"

"नहीं-नहीं-नहीं," अनन्त ने कहा, "उसे ऐसा भ्रम नहीं। वह केवल भावुक, स्वाभिमानी, कवि-हृदय युवक है और बस! और कवि," उसने तनिक हँसकर कहा, "आधे पागल होते हैं। आप भला किस तरह बच्चे के साथ बच्चा बन सकते हैं। उसका क्या है, वह तो मूर्ख है,

लेकिन निन्दा तो आप ही की होगी।"

और एक ओर पण्डित जी की उदार-हृदयता और दूसरी ओर चेतन और उसके भाइयों की वज्रमूर्खता का उल्लेख कर (जो शादी-ब्याह के अवसर पर अपने पिता के पीने-पिलाने पर आपत्ति करते थे) अनन्त ने बड़ी चतुराई से पण्डित जी को राम कर लिया।

उधर पण्डित वेणी प्रसाद ने चेतन को समझाया और वही चेतन जो अनन्त के सारी रात समझाते रहने पर भी तुला हुआ था कि विवाह न करेगा, इस बीमार और लगभग पंगु वृद्ध के सम्मुख एक शब्द भी न कह सका।

इस प्रकार अपनी क़समों के बावजूद पुत्र और पिता दोनों बारात में शामिल हुए, हँसे भी, बधाइयाँ भी उन्होंने स्वीकार कीं और रस्में भी सब अदा कीं। फिर बाजे भी बजे, गाने भी गाये गये और शोर भी खूब हुआ। यह और बात है कि इस समस्त हर्षोल्लास, गाने-बजाने और शोर-शराबे के अन्तर में व्यथा भी कहीं दबी बैठी रही।

माफ़ कर देने पर भी पिता ने पुत्र को नहीं बुलाया और पुत्र ने एक रस्मी, ठण्डे प्रणाम के अतिरिक्त और कोई बात नहीं की। पण्डित जी ने पिता के अपने अधिकारों का प्रदर्शन करने के लिए और भी पी—देसराज और पण्डित बनारसी दास को बैठाकर पी—और चलते समय अपनी पत्नी को एक-दो थप्पड़ भी रसीद किये। माँ की आँखें अन्त तक आँसुओं से भरी रहीं। चेतन का रक्त खौल-खौल उठता रहा।

लेकिन जब बारात बस्ती पहुँची और धर्मशाला में उतरने, सेहरा बाँधने और दूसरी रस्मों के बीच चेतन बराबर इन बातों पर विचार करता हुआ अन्त में साढ़े आठ बजे के लगभग विवाह-मण्डप में आसन पर जा बैठा तो सहसा उसके मन से समस्त बातें, सारी चिन्ताएँ, सब क्लेश अनायास दूर हो गये। उसका मन हल्का हो गया। मण्डप

के तनिक परे, सामने बरामदे में बैठी हुई लड़कियों में, उसकी निगाहें एक किशोरी से चार हुईं, जिसे वह पहचानता था।

यह किशोरी वही थी जिसे बस्ती के अड्डे पर देखकर वह चौंका था और फिर एक बार अपनी पत्नी के पास जिसे बैठा हुए देखकर वह कुछ बौखला-सा गया था।

चेतन को लगा जैसे वह एक महान् सागर में हल्की-सी तरंग बनकर बहा जा रहा है। अभी कुछ देर पहले जब आँगन के दरवाज़े में प्रवेश करते समय उसकी पत्नी ने उसके गले में हार डाला था तो उसके मोटे से शरीर और सीधी-सादी-सी आकृति को देखकर वह अत्यन्त निराश हुआ था। लेकिन उस सुन्दर मनोमुग्धकारी छवि को देखकर उसकी वह निराशा, वह अवसाद पलक झपकते उड़ गया। तभी पुरोहित ने मन्त्र पढ़ने आरम्भ किये और स्त्रियाँ गा उठीं।

'सजन घर आये री'

—o—

१८

दूसरे दिन जब बारात खाना खाने में व्यस्त थी, चेतन की चंचल, उद्विग्न दृष्टि रह-रहकर छत पर जाती थी और कल्पना-ही-कल्पना में वह ब्याह के गाने सुनता था—मीठे मद भरे गाने—जिनकी तानों में किसी परचित कल-कण्ठ से निकली हुई तन और मन को गर्मा देने वाली मादक तान भी थी। पर छत की सूनी मुँडेरों पर गाने वालियाँ तो दूर, एक कौवा तक भी न था। वहाँ से हटकर चेतन की दृष्टि सामने बरामदे में जाती, जहाँ रात को भाँवरों के समय स्त्रियों के गाने गूँजे थे। पर वहाँ भी उनकी रसीली तानों के स्थान पर बस्ती के

एक-मात्र सुधारक मास्टर नन्दलाल का ग्रामोफ़ोन अपनी भोंडी आवाज़ चिल्ला रहा था :

हे प्रभो, अब हम सबों को शुद्धताई दीजिए !
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिए !!

दूसरी कुप्रथाओं के साथ-साथ विवाह-शादी के अवसर पर स्त्रियों का छतों पर चढ़कर गन्दे गीत गाना भी सुधारक मास्टर नन्दलाल को नापसन्द था। उनके विचार में ऐसे अवसर सुधार-कार्य ही के लिए उपयुक्त थे।

'क्या सुन्दर रिकार्ड ब्याह के अवसर पर लगाया है !' चेतन ने रिकार्ड के समाप्त होने पर मन-ही-मन कहा।

पर इसमें दोष किसका था ? उसी ने तो पण्डित वेणी प्रसाद से कहा था कि कोई रस्म अदा न की जाय। सुधार सम्बन्धी अपनी स्कीम को इस घर में पूर्ण-रूप से फलीभूत होते देख, इधर-उधर बड़े चाव और व्यस्तता से फिरते हुए मास्टर नन्दलाल की ओर देखकर चेतन मन-ही-मन हँसा। फिर एक ठण्डी साँस उसके हृदय की गहराइयों को चीरकर निकल गयी। बुभुक्षित, विपन्न और साधनहीन हिन्दुस्तान के लिए शादी-विवाह तथा तीज-त्योहार की चन्द घड़ियाँ ही तो थीं, जिनमें लोग कुछ हँस-हँसा लेते थे। बारातियों का स्वागत मीठे गानों से होता; वर-वधू को 'कगना' मीठे गानों से खेलाया जाता; मादक मीठे गानों में भाँवरों की रस्म सम्पन्न होती और मीठे गानों का मधुर रस पीती हुई बारात खाना खाती। वधू की सहेलियाँ और बहनें सिठनियों में बड़ी भेद भरी बातें कह जातीं। चेतन का हृदय उन मीठी सिठनियों को सुनने के लिए आतुर हो उठा, किन्तु उधर बरामदे में ग्रामोफ़ोन पूर्ववत् गा रहा था :

हे प्रभो अब हम सबों को शुद्धताई दीजिए !

सुधार सम्बन्धी कोई दूसरा रिकार्ड न होने से मास्टर नन्दलाल ने पुनः उसी को लगा दिया था।

चेतन की आँखों के सामने आततायी सुधारक के हाथों विवाह की देवी का अलंकार-विहीन चित्र घूम गया। उसकी निरीह चमक-दमक इस कट्टर अत्याचारी ने छीन ली है; उसके कल-कण्ठ से निकलने वाली मादक तानों का इसने गला घोंट दिया है और उसके समस्त अलंकारों से उसे वंचित कर दिया है! चेतन की आँखें फिर उसी पुराने ज़माने की भरी-पूरी रमणी को देखने के लिए आतुर हो उठीं।

"जीजा जी खाना खाइए!" एक पतले-दुबले से लम्बी नाक वाले लड़के ने उससे कहा। चेतन अपने विचारों में गुम था। सहसा चौंक-कर उसने थाली की ओर हाथ बढ़ाया।

बारात तब तक खाना खा चुकी थी वह अन्यमनस्कता से उठा। उसी समय अपनी लठिया लिये हुए काँपते-झूलते पंडित वेणी प्रसाद आये और हाथ जोड़कर उन्होंने कहा, "आप अभी कुछ देर बैठिए।"

चेतन चुपचाप दरी पर बैठ गया। तभी बरामदे की चिक उठाकर वह लड़की जैसे हर्ष और उल्लास से नाचती-सी निकली। उसके पीछे उसकी सहेलियाँ थीं—"जीजा जी छन्द* सुनाओ!" "जीजाजी छन्द सुनाओ!" कहती हुई धम से उसके पास बैठ गयी। शेष सहेलियों ने झुरमुट बना लिया।

चेतन का मुख कानों तक लाल हो गया। इस बीच में दो-चार बड़ी-बूढ़ियाँ भी आ गयीं और चेतन का परिचय उसकी सास और कुटुम्ब की अन्य स्त्रियों और वधू की सहेलियों से कराया गया और उसे पता चला कि वह सुन्दर लड़की उसकी साली है—नाम है नीला—पण्डित वेणी प्रसाद की तीन लड़कियों में से मँझली और चेतन ने एक बार

*** छन्द एक प्रकार का पञ्जाबी दोहा होता है, जिसमें सास-ससुर तथा ससुराल के अन्य रिश्तेदारों की प्रशंसा होती है।**

दबी आँखों से उसकी ओर देखकर मन-ही-मन में एक लम्बी साँस भर ली। उसे यह बात पहले क्यों न मालूम हुई ?

"छन्द सुनाइए, जीजा जी छन्द !" और लड़कियों ने उसका कोट खींचा। एक निमिष के लिए चेतन की आँखें नीला से चार हुईं। उसकी आँखों में एक चतुर स्निग्ध मुस्कान थी जिसका प्रतिबिम्ब उसके ओठों पर हल्की सी मुस्कान के रूप में फैलने को आतुर था।

चेतन बैठ गया।

लेकिन उसी समय पण्डित वेणी प्रसाद अपने हिलते हुए शरीर के साथ आये और हाथ जोड़कर उन्होंने कहा, "अब महाराज उठिए !"

नीला ने तनिक रोष भरे स्वर में कहा, "पिता जी आप बैठने भी दीजिए जीजा जी को, अभी एक भी छन्द नहीं सुना हमने।"

"अच्छा, अच्छा बेटी !....आप बैठिए अभी महाराज !" और वृद्ध सरल-सी हँसी ओठों पर लिये हुए जैसे आये थे वैसे ही चले गये।

चेतन का हृदय धक-धक करने लगा। तभी उसकी दृष्टि सामने बरामदे के एक कोने में गयी। चिक उठा दी गयी थी। विवाह के लाल जोड़े में आवृत उसकी दुल्हन ज़रा-सा घूँघट निकाले बैठी थी और विवाह के उल्लास में उसका गेहुँआ रंग दमक रहा था। चेतन के सामने उसकी सास की सूरत आ गयी और उसने निगाहें हटा लीं।

नीला ने हँसकर कहा, "छन्द सुनाइए जीजा जी ! उधर क्या देख रहे हैं। आप ही के घर जायगी।"

कुछ अप्रतिभ-सा हो, चेतन ने तनिक सोचकर एक छन्द सुनाया।

"छन्द परागे आइए, जाइए छन्द परागे तीला
छन्द गया मैं भुल्ल सभे, जद सामने आयी नीला"*

***पहली पंक्ति का कोई अर्थ नहीं। दूसरी का अर्थ यह है मैं उस समय सभी छन्द भूल गया, जब मेरे सामने नीला आयी।**

नीला का मुख कानों तक लाल हो गया । फिर वह एक बार ही सखियों के साथ ठहाका मारकर हँस दी ।

चेतन इस ठहाके में बह गया और इसके साथ ही बह गया वह थोड़ा बहुत गाम्भीर्य जो गत दो-तीन दिनों से उसके अन्दर इकट्ठा हो गया था और जिसका प्रतिबिम्ब उसकी आकृति पर विषाद के हल्के-से बादल ले आया था ।

उसका समय खूब बीता और जब वहाँ से छुट्टी पाकर वह डेरे वापस जा रहा था तो उसकी कल्पना के सम्मुख अपनी पत्नी और उसकी सहेलियों की आकृतियों के ऊपर से नीला की सुन्दर मूर्ति जैसे उभर-उभरकर झाँकती रही । उसकी वह सुनहरी स्मिति, मादक दृष्टि और मदिर स्वर-लहरी ।....नीला....नीला !....

—०—

१६

दूसरे दिन नव-परिणीता वधू के साथ जब वह ताँगे में बैठकर बाजे के पीछे-पीछे बस्ती ग़ज़ाँ से चला था तो उसके मन-मस्तिष्क पर नीला का चित्र अंकित हो चुका था और उसके हृदय में कहीं ज्वाला-सी धधक रही थी। वह सोच रहा था, क्यों नीला से उसका विवाह न हुआ ? उसे पहले ही क्यों न पता चल गया कि वही लड़की, जिसे बस्ती के अड्डे पर जाते देखकर, उसके हृदय में, अँधेरी रात के दूरस्थ प्रदीप की भाँति एक ज्योति-किरण जगमगा उठी थी, उसकी भावी पत्नी के ताऊ की मँझली लड़की है । यदि वह मुल्कराज से उसके सम्बन्ध में पूछ लेता ? यदि उसे बाद में भी किसी तरह पता चल

जाता ? यदि....तो, जीवन के दुख-भरे सागर में सुख की उद्दाम तरंगें उठ आतीं। उनके सहारे वह कहाँ-कहाँ न पहुँच जाता।

और उसने अपने साथ ताँगे में बैठी हुई अपनी नव-परिणीता पत्नी की ओर देखा और अपने जीवन का सागर उसे जैसे उत्साह-हीन-सा होकर उतरता हुआ दिखायी दिया और निराशातिरेक से उसका गला भर-सा आया और सचमुच अपने घर की देहरी पार करके कुछ एक रस्मों को जल्द-जल्द पूरा करने के बाद, वह अन्दर कोठरी में जाकर रोने लगा।

उसकी माँ—दुखों कष्टों की मारी उसकी माँ—इस नयी विपत्ति को देखकर पहले तो घबरा गयी, किन्तु विपत्तियों का पहला आक्रमण जहाँ मानव के पाँव ज्वार के पहले रेले की भाँति डगमगा देता है, वहाँ उनका आधिक्य उसे स्थिर भी कर देता है और माँ विपत्तियों के निरंतर प्रहारों के कारण तूफ़ान के मध्य भी स्थिर खड़े होकर सोचने की शक्ति पा गयी थी।

सोच-सोचकर वह पहले बहू के पास स्वयं गयी और बहू का घूँघट हटाकर उसने क्षण भर के लिए निर्निमेष उसकी आँखों में देखा। अनुभव किया कि उनमें अपार कोमलता और अपार सहृदयता है। तब क्षणिक आवेश के वश उसने उसे अपने आलिंगन में भींच लिया और आर्द्र कण्ठ से बोली :

"वह कुछ बेचैन-सा है मेरी बेटी। फूल-फूल पर बैठने वाला, आकाश के विस्तार में स्वच्छन्द तरारे भरने वाला पक्षी। उसे बाँधना है। वह भाग जाना चाहता है, सब बन्धन तोड़कर! लेकिन बेटी, तू ज़रा सतर्क रहेगी तो वह भाग न पायेगा। मैं उसे अभी भेजूँगी। बहुत संकोच से काम न लेना, समझी....तू छोटी नहीं, सयानी है, व्यर्थ की लज्जा न करना।"

श्रौर वह चली श्रायी थी। फिर बहाने से महरी को बस्ती भेजकर उसने चेतन को श्रन्दर भेजा था।

चेतन का मन खिन्न था। वह श्रपनी इस बहू से साक्षात भी न करना चाहता था, किन्तु माँ के ज़ोर देने पर वह श्रनिच्छापूर्वक श्रन्दर चला गया।

कमरे में जाकर उसने श्रत्यन्त हास्यास्पद हरकतें कीं। पहले तो उसने माँ से कहा कि उसके लिए खाना वहीं भेज दिया जाय। फिर जब बहू भी माँ के साथ बाहर उठकर जाने लगी तो उसने तनिक कड़े स्वर में कहा, "बैठो!" श्रौर उसके बैठने पर उसने उठकर कुण्डी लगा ली (श्रौर भूल गया कि उसने खाना वहाँ लाने का श्रादेश दिया है।) फिर उसने पत्नी को श्रादेश दिया कि घूँघट उठा दे।

चन्दा ने धीरे से घूँघट उठा दिया था श्रौर एक बार लज्जा-भार से दबी बड़ी-बड़ी श्रलसायी-सी पलकों को उठाकर उसकी श्रोर देखा था।

इस एक दृष्टि से ही चेतन के स्वर की कर्कशता कोमलता में बदल गयी थी। वह गम्भीर, गहरी, सहृदय, तरल दृष्टि!....चेतन जैसे शान्ति के सागर में डूबा जा रहा था। उसने कुछ नर्मी से पूछा, "तुम हिन्दी पढ़ सकती हो या नहीं?" चन्दा ने धीरे से कहा, "जी हाँ!" श्रौर इस शब्द की मिठास चेतन की श्रवण-शक्ति पर छाकर रह गयी। तभी श्रचानक उसे लगा कि बस्ती के श्रड्डे पर पहले-पहल उसने जिस चन्दा को देखा था, उसमें श्रौर श्राज की नव-विवाहिता चन्दा में महान् श्रन्तर है। उसका रंग निखर श्राया है, श्रंग श्रधिक सुगठित हो गये हैं श्रौर श्राँखें पहले से कहीं श्रधिक फैल गयी हैं।

"तुम तो पहले से सुन्दर हो गयी हो चन्दी!"

वह मुस्करायी और फिर तनिक हँसी—मीठी मुस्कान और मादक हँसी ! और चेतन ने देखा उन लाल-लाल ओठों के नीचे दूध से सफ़ेद, साथ-साथ जुड़े हुए मोतियों की बतीसी है जो उस हँसी को एक अनोखी चमक प्रदान कर रही है ।

और वह मुग्ध-सा, साधारण होते हुए भी असाधारण-सी अपनी इस पत्नी की ओर देखने लगा । फिर वह उठकर एक पुस्तक ले आया ।

चन्दा ने उसे फ़र-फ़र पढ़ डाला ।

तब किताब को परे फेंककर चेतन ने उसे निकट खींच लिया और भावावेश में बोला, "मैं तो तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय करने जा रहा था चन्दी ।"

चन्दा ने एक बार अपनी अर्द्ध-निमीलित, अलस, लजीली आँखों से उसकी ओर देखा और चेतन को लगा कि जैसे मीलों चलकर वह किसी भरे-पूरे सरोवर के किनारे घने वृक्षों की छाया में आ बैठा है ।

—०—

२०

विवाह के तत्काल बाद चेतन अपनी पत्नी को लाहौर नहीं ले गया । कारण कई थे ।

—उसकी माँ चाहती थी कि अपनी इस नयी बहू को कुछ दिन अपने पास रखे और समस्त गृह-कार्यों में उसे निपुण कर दे ।

—भाई साहब चाहते थे कि अब जब उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी है तो चेतन भी अपना वचन पूरा करे और लाहौर में दुकान खोलने में उन्हें सहायता दे ।

—भाई साहब की श्रीमती इस बात पर तुली हुई थीं कि वे जालन्धर रहते-रहते ऊब गयी हैं, इसलिए लाहौर जायँगी। गर्मियों का मौसम था, बादल हों तो कुछ ठण्ड हो जाती, नहीं तो ग़ज़ब की गर्मी पड़ती और चंगड़ मुहल्ले के उन दो कमरों में चार-छै व्यक्तियों के एक साथ रहने की बात स्वयं एक समस्या थी।

—फिर चेतन (मन की किन्हीं अज्ञात गहराइयों में) न चाहता था कि वह नीला से एकदम इतनी दूर चला जाय। उसके अर्ध-चेतन में कहीं यह बात भी छिपी थी कि चन्दा जालन्धर अथवा बस्ती रहेगी तो वह नीला से मिलने के अधिक अवसर पा सकेगा।

इन सब कारणों से अपनी नव-पत्नी को अपनी माँ की देख-रेख में छोड़, अपने भाई साहब को, कुछ थोड़ा-बहुत प्रबन्ध करके, अपने पीछे आने के लिए कह और अपनी भावज को सान्त्वना देकर कि उसे शीघ्र ही बुला लिया जायगा, चेतन अतीव दुख और अतीव सुख के इन कुछ दिनों के बाद अपने उसी समाचार-पत्र की चक्की में जुटने के लिए लाहौर वापस चला गया।

सुख की अपेक्षा जीवन में दुख की मात्रा कहीं अधिक है। पर इन दोनों को एक दूसरे से पृथक करके नहीं रखा जा सकता। सुख के क्षण दुख को लिये हुए आते हैं और दुख के सुख को और मानव इन्हीं मधु-विष-मिश्रित प्यालों को पीता चला जाता है।

माँ के दिल में बहू को घर के काम-काज में दक्ष करने का जो शौक था, वह शीघ्र ही पूरा हो गया और दो महीने बाद माँ ने घोषणा कर दी कि यह नयी बहू बड़ी बहू से भी गयी-गुज़री है। वह ज़बान की कड़ुवी हो, लड़ती-झगड़ती हो, पर काम तो करती थी। यह तो बस गुम-सुम पत्थर! अजगर की भाँति खाना और सोना जानती है। काम के नाम पर सिफ़र है।

इस बीच में चेतन दो बार जालन्धर आया था। वर्ष भर में एक

महीना और महीने भर में अढ़ाई दिनों की छुट्टी उसे मिलती थी। इन अढ़ाई दिनों को इतवार से मिलाकर दोनों बार वह साढ़े तीन दिन के लिए जालन्धर आया था। तब माँ के कठिन संयम से हारी-थकी उसकी पत्नी ने बस्ती चलने की इच्छा प्रकट की थी। उसकी ऊबाहट को लक्ष्य कर चेतन ने कहा था :—

"मैं जानता हूँ, तुम्हारा दिल यहाँ नहीं लगता। मैं तुम्हें आज ले चलूँ लाहौर, पर अभी भाभी गयी हैं। वह दो-चार महीने रह ले, तब तुम्हें ले चलूँ। इतनी जगह तो है नहीं कि तुम दोनों रह सको। अब माँ से मैं क्या कहूँ? उन्हें न नींद आती है, न भूख लगती है। दूसरों को भी वे ऐसा ही समझती हैं। जब तक यहाँ रहना है, यह सब कुछ सहते हुए ही रहना है। प्रातः उठने की और तनिक देर से खाने की आदत डालनी होगी। पुरुषों के खाने से पहले खा लेना माँ के धर्म में पाप है। मैं कह जाऊँगा। तुम न हो कुछ बासी-ऊसी खा लिया करना।" और फिर कुछ रुककर उसने कहा था, "बस्ती जाने को बहुत मन हो तो हो आओ चन्द दिन बस्ती।"

चन्दा मन-ही-मन अपने इस सहृदय पति के चरणों में झुक गयी थी और इसी बहाने चेतन दोनों बार बस्ती हो आया था।

चाँदनी रात थी और दिन भर बरसने के बाद तीतर के पंखों-सी बदली आकाश पर छायी हुई थी, जिसके सम्बन्ध में पुराने लोगों का विचार है कि वह वर्षा के पुनरागमन की सूचना देती है। उमस नहीं थी और ठण्डी-ठण्डी बयार चल रही थी। चाँद के इर्द-गिर्द एक नन्हीं-सी बदली साँप की तरह कुण्डली मारकर बैठी थी और आकाश पर फैली हुई बदलियों में कहीं-कहीं कोई तारा झाँक उठता था। अपनी ससुराल में छत पर चेतन लेटा हुआ था। पास ही नीला बैठी थी और वह मन्त्र-मुग्ध-सा उसकी ओर देख रहा था।

दोनों चुप थे। नीचे बर्तनों के मले जाने की आवाज़ आ रही थी, कभी हैंड-पम्प का कर्कश स्वर भी आ जाता था या फिर चन्दा कभी (ऊपर अपने पति की उपस्थिति के कारण) सरगोशियों में बातें करती थी—"भाभी आटा देख लो काफ़ी है या नहीं ?"...."अम्बो थाली कहाँ रख दी तैंने ?"...."चावल तो गल गये भाभी...."

उस दिन के बाद चेतन को आज नीला से दो बातें करने का अवसर मिला था। किन्तु उसे बातें सूझ ही न रही थीं और वह निर्निमेष उसके सुन्दर मुख को देख रहा था। नीला का क़द लम्बा न था, किन्तु ऐसा भी नहीं, जिसे मझोला कहा जा सके। वह पतली न थी, लेकिन मोटी भी न थी। सुडौल, सुगठित अंग, तीखा लम्बा चेहरा, भरे गाल, जिनमें हँसते समय गढ़े पड़ जाते थे; बड़ी-बड़ी मुस्कराती आँखें और वय-सन्धि को पार करता और रेखाओं को उभारता शरीर ! और चेतन उसे मोहित-सा देख रहा था।

सोचने पर भी उसे कोई बात न सूझ पड़ी। नीला के सामीप्य और उस चाँदनी रात की तरल मादकता से मस्त वह लेटा रहा। कोने में कोई टिड्डी अनवरत चीं-चीं करती रही और चेतन जैसे स्वप्न-संसार में खोया-सा उसे सुनता रहा।

नीला चेतन के बालों पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगी। अपनी कोमल अँगुलियों से उन्हें प्यार के साथ सुलझाते हुए उसने अनायास कहा, "जीजा जी तुम्हारे बाल कितने कोमल हैं, कितने लम्बे और कितने कुण्डल बन जाते हैं इनमें !"

चेतन को फिर भी कोई उत्तर न सूझा। उसने केवल नीला का एक हाथ अपने हाथ में ले लिया और कुछ क्षण आँखें बन्द करके चुपचाप पड़ा रहा।

नीला चुप रही। उसके बालों पर धीरे-धीरे हाथ फेरती रही, उसके

कुण्डलों को सुलझाती रही।

कुछ क्षण बाद चेतन ने कहा, "मैं सोचा करता हूँ नीला, मैं दो बार चन्दा को देखने आया और दोनों बार मैंने तुम्हें देखा।"

"मैंने भी आपको दोनों बार देखा और मैं यह भी बता सकती हूँ कि पहले दिन जब आप बस्ती के अड्डे पर खड़े थे, आपने कौन-सा सूट पहन रखा था।"

एक हल्की-सी लहर चेतन के शरीर में दौड़ गयी। नीला के हाथ को प्यार से सहलाते हुए उसने कहा, "यदि मुझे उस दिन पता चल जाता कि तुम चन्दा की ही बहन हो तो...."

"तो जीजा जी...." नीला ने उत्सुकता से पूछा।

किन्तु चेतन चुप रहा। उसने सिर्फ़ एक लम्बा गहरा निश्वास छोड़ा।

दूसरी सुबह जब चेतन जाने लगा तो नीला अपनी नाचती मुस्कराती आँखें लिये आयी। और उसने उससे लाहौर से फिर आते समय, रिबन और क्लिप लेते आने की फ़रमाइश की।

दूसरी बार जब चेतन आया था तो वह न केवल क्लिप और रिबन, बल्कि लिप-स्टिक, क्रीम और पाउडर का डिब्बा भी लाया था और बड़ी सफ़ाई से अपने इस कृत्य की प्रशंसा उसने अपनी पत्नी से पा ली थी।

आते ही उसने चन्दा से कहा था कि रिबन और क्लिप वह नीला के लिए लाया है और लिप-स्टिक, क्रीम और पाउडर उसके लिए। फिर कुछ क्षण ठहरकर दो-चार इधर-उधर की बातें करके, उसने कहा था, "मुझे तो ज़रा-ज़रा-सी ये दो चीज़ें तुम्हारी बहन को देते शर्म आती है। वह तुम्हारी बहन ठहरी, ये ज़रा-ज़रा-सी चीज़ें उसे क्या दूँगा!" और फिर जैसे उसे उसी समय खयाल आया हो, उसने

कहा, "तुम यह लिप-स्टिक, क्रीम और पाउडर भी उसे दे देना। उसे कुछ तसल्ली तो हो। तुम्हारे लिए मैं अगली बार आता हुआ और ले आऊँगा। वह तुम्हारी बहन है और पहली बार उसने कुछ माँगा है........!"

और भोली चन्दा मान गयी थी। लेकिन जब बस्ती जाने पर उसने नीला को सब कुछ दिया जो उसके जीजा उसके लिए लाहौर से लाये थे तो वह हँस दी। क्लिप और रिबन उसने रख लिए थे, किन्तु शेष चीज़ें उसने चन्दा को वापस दे दीं। इस पर चन्दा ने उससे कहा था, "इन्हें तुम स्वयं ही अपने जीजा को वापस देना।"

तब पाउडर का डिब्बा और क्रीम तथा लिप-स्टिक की शीशियाँ उठाकर नीला ऊपर गयी थी और तीनों चीज़ें उसने चेतन के सामने रख दी थीं।

"इन्हें आप बहन को दे दें।" उसने कहा था।

"लेकिन मैं तो केवल तुम्हारे लिए लाया हूँ।"

"मैं कैसे इनका प्रयोग कर सकती हूँ?"

"क्यों?"

"आप भी भोले हैं जीजा जी! किसी कुँवारी लड़की को बस्ती में आपने सुर्खी या पाउडर लगाये देखा है?"

इतने ही से उसके गाल सुर्ख हो गये और इससे पहले कि चेतन कुछ कहता, वह भाग गयी।

किन्तु उसी शाम को दोनों चीज़ें अपनी पत्नी को वापस देते हुए चेतन ने कहा, "अच्छा हुआ नीला ने इन्हें नहीं लिया।"

चन्दा ने चुपचाप चीज़ें ले लीं।

"मुझे केवल तुम्हारा ध्यान था," चेतन ने एक खिसियानी-सी हँसी के साथ कहा, "तुम्हारी बहन कहीं यह न कहे कि उसका जीजा महा-कंजूस है, नहीं मैं सोच रहा था कि यह चीजें नीला को देने के लिए

कह तो दिया, पर तुम्हारे लिए कहां से लाऊँगा। इस महीने तो कुछ बचा नहीं पाया।"

चन्दा चुपचाप सुनती रही।

और ब्योरा देते हुए चेतन ने कहा, "तुम्हें मैंने लिखा था न कि इस महीने का लगभग सारा वेतन मैंने भाई साहब को दे दिया है। उन्होंने चैम्बरलेन रोड पर दुकान खोल ली है। चल निकलने की पूरी आशा है। पहले ही महीने तीस रुपये आये हैं। लेकिन रुपये तो आते हैं दो-दो चार-चार करके, पर किराया देना पड़ता है इकट्ठा। सो तीस तो उन्हें दे दिये। शेष दस से ये चीज़ें लाया और यहाँ भी आया। मकान का किराया अभी देना बाक़ी है। खाने का तो खैर भाई साहब प्रबन्ध कर देंगे, पर मैं सोच रहा था........लेकिन यह अच्छा ही हुआ.... तुम यह रखो! अगले महीने टिकुली और तेल आदि भी तुम्हें ला दूँगा।"

किन्तु उसी रात वह नीला से कह रहा था :

"नीला, तुमने वह सब वापस कर दिया, यह न देखा कि लाने वाले के हृदय को कितनी ठेस पहुँचेगी?"

रात के अँधेरे में नीला ने अपने इस जीजा की आँखों में देखने का प्रयास किया।

वह मुँडेर पर बैठी थी। तनिक अंतर से चेतन चारपाई पर लेटा हुआ था। ऊपर आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। चौथ का वक्र चाँद पीलाई लिये हुए चमक रहा था। एक नन्हा-सा चमगादड़ इधर-से-उधर और उधर-से-इधर अतीव विह्वलता से चक्कर लगा रहा था। नीला को लगा जैसे निमिष-मात्र के लिए चेतन का गला भर आया हो।

उसने हँसकर कहा, "जीजा जी! मैं लेकर क्या करती, जब मैं उन्हें काम में न ला सकती थी। आप कोई चीज़ लायें जो मैं काम में ला सकूँ, फिर मैं उसे न लूँ तो आप कहें।"

चेतन को सान्त्वना मिली और फिर उसने नीला का हाथ खींचकर अपने हाथ में ले लिया।

नीला चुप बैठी रही।

उसके हाथ पर अपना हाथ फेरते हुए उसने बताया कि वह चन्दा को कुछ दिनों के लिए बस्ती ही छोड़ जाना चाहता है।

"मेरी माँ देवी है," वह बोला, "उसने हमारी खातिर अनेक कष्ट सहे हैं। दुखों के कारण उसमें जान तक भी नहीं रही। उसने हमें कभी गाली नहीं दी, झिड़का नहीं, बुरा-भला नहीं कहा। मेरी सदा यह अभिलाषा रही कि मैं उसे प्रसन्न रख सकूँ। उसके आँसू मैं सहन नहीं कर सकता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि उससे कुछ न कहकर चन्दा ही को कुछ दिन के लिए बस्ती छोड़ दूँ।"

नीला ने इतना ही कहा था, "वह तुम्हारी माँ है, पर चन्दा की तो सास है। बस यही अंतर है।"

"भाभी से माँ को शिकायत थी कि वह लड़ाकी है, झगड़ालू है, कर्कशा है, लेकिन तुम्हारी बहन तो ऐसी नहीं। उसमें और कुछ न हो, सरलता, सहृदयता, विनम्रता तो कूट-कूटकर भरी हुई है। मैं सोचता था कि मैं न सही, माँ तो खुश होगी, लेकिन...."

चेतन क्षण भर तक चुपचाप लेटा रहा। फिर दीर्घ-निश्वास लेकर बोला :

"चन्दा पढ़ी-लिखी नहीं। चार-पाँच दर्जे तक....लेकिन इतने से क्या हो सकता है ? और फिर वह एकदम देहातिन है। अपनी सारी सरलता और सहृदयता के होते भी उसे कपड़े पहनने, नहाने-धोने, बाल सँवारने, अपनी और घर की सफ़ाई रखने की तमीज़ नहीं। मेरा विचार था कि माँ उसे अवश्य पसन्द कर लेगी। पर वह उसकी शिकायतें करते नहीं थकती। मैं उसे अभी ले जा नहीं सकता। भाभी वहाँ है और मेरे पास अधिक जगह नहीं और मैं चिन्तित हूँ। तुम मेरी चिन्ता का

अनुमान नहीं कर सकतीं........"

और फिर धीरे-धीरे जैसे अपने किसी अभिन्न मित्र को सुनाकर वह दिल का भार हल्का करना चाहता हो, उसने नीला को अपने विवाह की समस्त दुख-गाथा सुना डाली—यहाँ तक कि कुन्ती और प्रकाशो की बात भी उसने नहीं छिपायी।

नीला के हृदय की धड़कन तेज़ हो गयी। चेतन को लगा जैसे उसके हाथ में निर्जीव पड़ा वह सुकोमल हाथ तनिक काँप उठा। चेतन उस हाथ को स्नेह से दाब लेना चाहता था कि नीला ने जल्दी से हाथ खींच लिया।

"जीजा जी उठिए, जल्दी कीजिए! आँधी आ रही है!"

अपने ध्यान में मग्न चेतन घबराकर जल्दी से उठा। तब दूर उसने साँय-साँय की आवाज़ सुनी और बिजली की चमक में पश्चिमी क्षितिज का उग्र रूप देखा।

—०—

२१

सन्ध्या का सूरज कब और कहाँ छिपता है, छिपते-छिपते पश्चिम का क्षितिज कैसा सुन्दर रूप धर लेता है, आकाश में कैसी रंगीन लहरियाँ बन जाती हैं और सघन वृक्षों के पत्तों में उनकी आभा कैसे हीरे-मोती जगमगा देती है, इस बात से लाहौर, विशेषतया अनारकली के अगनित वासी सर्वथा अनभिज्ञ रह जाते हैं। वहाँ तो बाज़ार में बिजली के हण्डों के अचानक जग उठने, भीड़ के अधिकाधिक होते जाने, धुएँ और धूल के क्षण-प्रतिक्षण बढ़ते जाने से पता चल जाता है कि सन्ध्या बीत गयी है।

चेतन दफ़्तर से साढ़े छः बजे तक, निरन्तर छः-सात घण्टे काम

करके निकलता तो सीधा घर न आता। गनपत रोड से होता हुआ अनारकली का छोटा-सा टुकड़ा पार कर अपने आपको मुक्त-सा अनुभव करता, पैसे आध पैसे की गज़क लेकर चूसता हुआ या धेले-पैसे की मूँगफली लेकर कुटकता हुआ वह लोहारी के चौक तक चला जाता और वहाँ फ़ज़ल की दुकान पर एक दो साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को देखा करता। उसकी कविता अथवा कहानी जिस पत्र अथवा पत्रिका में छपी होती या जिसमें छपने की उसे आशा होती, उसे ही वह सबसे पहले उठाकर देखता। प्रायः जब उसके हाथ में कोई ऐसी पत्रिका आ जाती जिसमें उसकी कोई रचना छपी होती और वहीं स्टाल पर पत्रों की देख-रेख करने वालों में उसका कोई परिचित होता तो उसका मन उस अपने परिचित को इस बात से सूचित करने के लिए मचल उठा करता। कई बार ऐसा भी होता कि उसके पास ही कोई व्यक्ति खड़े-खड़े उसकी ही कविता अथवा कहानी देख रहा होता, तब उसके मुख पर एक रंग आता और एक जाता। उसे प्रबल आकांक्षा होती कि उस व्यक्ति को किसी तरह इस बात का पता चल जाय कि यह नवयुवक जो उसके पास ही खड़ा है, उस कहानी अथवा कविता का रचयिता है। किन्तु इस तरह की बात अपने किसी परिचित अथवा अपरिचित को समझाने में वह सदैव असफल रहा करता। हाँ, अपनी कृतियों को छपे अथवा पढ़े जाते देखकर उसके मन को अपार प्रसन्नता होती। इसीलिए वह प्रायः धुएँ और धूल की परवाह न करके स्टाल पर कितनी ही देर खड़ा रहता।

आज चन्दा को लाहौर आना था और चेतन सुबह ही से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, क्योंकि उसके छोटे भाई ने अपने पत्र में दिन तो लिखा था, पर समय और गाड़ी नहीं।

यद्यपि पहले चेतन की इच्छा अपनी पत्नी को पाँच-छः महीने

जालन्धर रखने की थी, पर उसकी भाभी ने उसके साथ कुछ ऐसा रूखा व्यवहार किया कि दो महीने बाद ही चेतन को अपना वह संकल्प बदलने को विवश होना पड़ा।

उसका मन बड़ा खिन्न था। सारा दिन दफ़्तर में प्रकट वह अँग्रेज़ी तारों का अनुवाद करता रहा था, किन्तु उसका मन जालन्धर से आने वाली प्रत्येक गाड़ी की प्रतीक्षा करता रहा था। किसी-न-किसी बहाने वह घर जा-जाकर देखता और निराश होता रहा था और इसी कारण वह ग़लतियाँ करता और झिड़कियाँ खाता रहा था। फिर जब वह शाम को दफ़्तर का काम समाप्त करके, इस विचार से कि उसकी पत्नी घर न आयी बैठी हो, फ़ज़ल की दुकान के बदले सीधा घर गया था तो उसे निराश होना पड़ा था। तब झुँझलाहट में खाना खाते-खाते वह अनायास भाभी से उलझ पड़ा था और खाने की थाली पटककर उठ खड़ा हुआ था। और वहीं अपने अड्डे, फ़ज़ल की दुकान पर पहुँचकर वह पत्रिकाएँ देखने लगा था।

तभी जब वह एक पत्रिका देखने में रत था, पास से जाते हुए ताँगे की पिछली सीट पर उसकी नज़र चली गयी। एक नव-विवाहिता घूँघट निकाले बैठी थी। उसके साथ सफ़ेद धोती पहने उस पर रेशमी चादर ओढ़े एक अधेड़ महिला थी। ज्योंही युवती पर से होती हुई उसकी दृष्टि उस महिला पर पड़ी कि उसके मुँह से अनायास निकल गया—'माँ!'

पत्रिका को वहीं फेंक तहमद सम्हालता हुआ वह ताँगे के पीछे-पीछे भागा और उसने दो-एक आवाज़ें दीं—'माँ!' 'माँ!' और फिर 'नित्यानन्द!' 'नित्यानन्द!'

और माँ ने ताँगा रुकवा लिया।

—o—

२२

यद्यपि अपनी इस नयी बहू को घर के काम-काज में दक्ष बनाने के हेतु माँ का सारा उत्साह जालन्धर ही में भंग हो चुका था, इस पर भी जब चेतन ने अपना वैवाहिक जीवन आरम्भ करने के लिए पत्नी को बुलाया था और लिखा था कि उसे नित्यानन्द के साथ भेज दिया जाय तो माँ भी साथ आ गयी थी। शायद वह अपनी इस बहू को जीवन के कठिन मार्ग पर चलने से पहले हर तरह समझा-बुझा देने का एक और प्रयास कर देखना चाहती थी। और इसलिए जब अपनी देवरानी के आने पर चेतन की भावज अनिच्छापूर्वक अपने देवर के साथ जालन्धर चली गयी तो माँ उसके साथ न गयी।

लेकिन पहले इतवार ही जब चेतन एक स्थानीय नेता से अपने पत्र के लिए इन्टरव्यू लेने गया और साथ में अपनी पत्नी को भी ले गया कि उसे 'लारेंस बाग़' की सैर कराता आयेगा और माँ घर अकेली रात के दस बजे तक बैठी रही तो जब चेतन अपनी बीवी को लिये हुए घर आया, तब माँ ने रोकर कहा कि उसे दूसरे दिन ही गाड़ी पर चढ़ा दिया जाय।

उस समय तो चेतन बे-सिर-पैर के बहाने बनाकर और एक-दो बार खिसियानी-सी हँसी हँसकर सोने चला गया, लेकिन दूसरे दिन उसने माँ से क्षमा माँगी और बिना किसी अपराध के अपनी पत्नी को माँ के चरणों पर गिरने को विवश किया, लेकिन माँ नहीं मानी, वह प्रातः ही जाने को तैयार हो गयी। वह कुछ बोली नहीं, गुस्सा नहीं हुई, जाते समय हँसी भी, उसने आशीर्वाद भी दिया, किन्तु नये ज़माने के यह लच्छन देख सकने की शक्ति न रखने के कारण उसने वहाँ रहना उचित नहीं समझा।

माँ के चले जाने पर एक और समस्या चेतन के सामने आयी। उसे तो उसका पता ही न चलता, यदि भाई साहब बातों-बातों में स्वयं

ही इसकी ओर इशारा न कर देते।

बात यह थी कि चन्दा भाई साहब से हाथ भर का घूँघट निकालती थी। दोपहर के समय चेतन तो १२ बजे दफ़्तर चला जाता और भाई साहब काम से निबटकर एक-डेढ़ बजे आते। तब चन्दा भागकर पिछले कमरे में जा छिपती। भाई साहब किसी पड़ोसिन को बुलाते। कहते कि तनिक चन्दा से खाना देने के लिए कह दे। वह खाना लाकर दे देती और तब तक बैठी रहती जब तक भाई साहब खाना समाप्त न कर चुकते। इस तरह भाई साहब को अपनी इस छोटी भावज से यदि कोई बात कहनी होती तो पहले वे उस पड़ोसिन से कहते, फिर वह चन्दा से कहती। इस प्रकार चन्दा का उत्तर भी उसी के द्वारा भाई साहब तक पहुँचता।

"अब घर की अपनी कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जो किसी पड़ोसिन के सामने नहीं भी कही जा सकतीं!" भाई साहब ने कहा था। "तुमने अच्छा आर्य-समाजी घर में विवाह किया! मैंने कभी नहीं देखा कि छोटी भावज जेठ की छाया तक से दूर भाग जाय।"

उसी दिन चेतन ने अपनी पत्नी से कहा, "यह तुम्हारी कैसी मूर्खता है? विवाह के अवसर पर तो तुमने घूँघट निकाला नहीं, ससुर छोड़ ससुर के पिता तक उपस्थित थे। और अब जेठ ही से डेढ़ गज़ लम्बा घूँघट निकाले फिरती हो।"

उसकी पत्नी हँसी—अपनी मोतियों-सी उज्ज्वल हँसी—"मैं तो माँ जी के डर से निकालती हूँ," उसने कहा, "कहिए अभी हटा दूँ?"

"लेकिन माँ यहाँ कहाँ बैठी है?"

"यदि उन्हें पता चल जाय?"

"तो फिर कौन प्रलय आ जायगा? उनका और परदादी गंगादेई का ज़माना अब लद गया!"

चन्दा ने उस दिन अपने पति को वचन दिया कि वह निश्चय ही

घूँघट हटा देगी। कुछ दिन उसे झिझक रही, पर चेतन की ज़बरदस्ती ने उसका घूँघट बिलकुल हटा दिया, यही नहीं, वह भाई साहब से न केवल बात करने लगी, वरन् हँसी-मज़ाक भी करने लगी।

और दो महीने के बाद जब भाभी फिर लाहौर आयी और उसने अपनी देवरानी को निर्लज्जों की भाँति अपने जेठ के सामने हँसते और ठहाते लगाते देखा तो उसके आग-सी लग गयी।

चेतन की ससुराल में किसी लड़की की शादी थी और इस बात की सम्भावना थी कि शायद दोनों को वहाँ जाना पड़े। इसलिए भाई साहब ने अपनी पत्नी को बुला लिया था। उसके पत्र-पर-पत्र आते थे और फिर चेतन भी इसे ज़्यादती समझता था कि वह तो अपनी पत्नी के साथ लाहौर का आनन्द लूटे और उसके भाई साहब दुकान की उस परछत्ती पर खड़े सड़ते रहें।

लाहौर पहुँचकर श्रीमती चम्पावती देवी ने देखा कि जब उसके पति दुकान से आये तो उसकी देवरानी ने न घूँघट निकाला—घूँघट निकालना तो दूर रहा, सिर पर कपड़ा तक नहीं लिया—न अपना स्वर ही धीमा किया और न आँखें ही झुकायीं। उसी तरह ठहाके लगाती रही। और तो और अपने आदर-योग्य जेठ से भी एक दो मज़ाक करने में नहीं हिचकिचायी।

उसका देवर उस समय घर पर न था, नहीं वह अवश्य ही उससे इस निर्लज्जता का कारण पूछती।

इसके बाद एक दिन जब फिर चन्दा अपने जेठ की उपस्थिति में ज़ोर से हँसी तो चेतन की भाभी ने उसे रोक दिया, "ससुर जेठ की कुछ तो शर्म होनी चाहिए बहन, आँखों का पानी क्या बिलकुल ही मर गया।"

चन्दा जब हँसती थी तो सुन्दर लगती थी। उसका मौन चेतन को न भाता था, इसलिए वह सदैव उसे हँसाता रहता था और चन्दा

को हँसने की आदत भी पड़ गयी थी। जेठानी की इस डाँट से उसकी हँसी सहसा रुक गयी और ग्लानि से उसके मुँह का रंग पीला पड़ गया।

लेकिन चम्पावती को न अपनी देवरानी पर गुस्सा था, न अपने देवर पर। उसे तो अपने पति पर क्रोध था।

जब रात को उसके पति खाना खाने आये तो उसने कहा :—

"भला वह तो बच्ची है, आपको शर्म आनी चाहिए जो इस तरह उसके हँसी-मज़ाक में योग देते हो !"

भाई साहब पूरे तितिक्षावादी थे—मीठी, कड़ुवी, तीखी, चुभती किसी बात का भी उन पर कुछ असर न होता था। वे चुपचाप खाना खाते रहे।

"जब वह आपके सामने बैठी 'हिं-हिं' करती है तो आपसे रोका नहीं जाता उसे," भाभी ने मुँह बिचकाकर कहा।

"मैं उससे कह दूँगा," यह कहकर हाथ-मुँह धो, छड़ी उठा, वे सैर को चले गये थे।

किन्तु अपने पति के इस वाक्य से चम्पावती की तुष्टि न हुई थी और जब उसकी देवरानी उसके संग खाना खाने बैठी तो उसने अपने आप पर बड़ा संयम रखकर उसे समझाया कि बड़ों के प्रति छोटों का क्या कर्तव्य होना चाहिए, छोटों को बड़ों से कितना विनम्र व्यवहार करना चाहिए, किस प्रकार ससुर और जेठ से पर्दा करना चाहिए और किस प्रकार उनके सामने बोलना तक न चाहिए।

"पुरुष तो ऐसे ही होते हैं," चेतन की भाभी ने कहा था, "उन्हें तो लोकाचार का ज्ञान नहीं होता। इन सब बातों का ध्यान तो स्त्रियों ही को रखना पड़ता है। तुम्हारे जेठ ने बहुतेरा कहा, पर जब देवर सयाने हुए तो मैंने उनसे पर्दा करना आरम्भ कर दिया !"

चन्दा ने उस समय तो अपनी जेठानी को कोई उत्तर न दिया, पर

जब रात को दो बजे के लगभग चेतन दफ़्तर से आया तो उसने कहा, "अब मैं भाई साहब से पर्दा किया करूँगी !"

"क्यों ?"

उत्तर में सरला चन्दा ने दिन की सारी बातें बता दीं।

गहरी रात होने के बावजूद चेतन ने एक ऊँचा ठहाका लगाया— इतना ऊँचा कि अन्दर कोठरी में सोयी चेतन की भाभी जग पड़ी और उसकी बच्ची ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। नींद भाभी की आँखों से उड़ गयी और वह उस कमरे के अन्धकार ही में लेटी दत्तचित्त होकर अपने देवर और देवरानी की बातें सुनने लगी।

किन्तु दो तीन रातों से निरन्तर अधिक काम करने के कारण थका-हारा चेतन "वह तो पागल है" इतना कहने के अतिरिक्त कुछ और कहे बिना सिरहाने रखा दूध पीकर सो गया।

इस घटना के दूसरे दिन इतवार था। इसलिए चन्दा अपने पति की उपस्थिति में बाजा सीखने का अभ्यास कर रही थी।

एक दिन चेतन ने पड़ोस के एक विवाह में चन्दा को गाते सुन लिया था। उसके स्वर की मधुरता को देखकर उसने मन में निश्चय कर लिया था कि वह उसे नियमित रूप से गाने की शिक्षा दिलायेगा। पेट काटकर किसी-न-किसी तरह वह एक हारमोनियम भी ले आया था और उसने स्वयं एक संगीतज्ञ से एक-दो गीत सीखकर उसे सिखा भी दिये थे। उसी समय भाई साहब आ गये।

"देखिए भाई साहब मैंने कितनी अच्छी धुन सीखी है," चन्दा ने सहसा प्रशंसा पाने के विचार से कहा।

भाई साहब चुप खड़े रहे। एक शब्द भी उनके मुँह से न निकला। पहले वह इस तरह पूछती तो वे कहते, "कौन-सी धुन ? ज़रा सुनें तो !" पर वे चुप खड़े रहे और फिर गहन-गम्भीर वाणी में उन्होंने कहा, "चन्दा

तुम मेरे सामने न गाया करो !"

चेतन आश्चर्यचकित-सा उनके मुँह की ओर देखने लगा और फिर जब भाई साहब ने उसी स्वर में उससे कहा, "तुम मेरे सामने इतने ज़ोर से हँसा भी न करो !" तो चेतन झल्लाकर बोला, "यह नहीं हो सकता भाई साहब, चन्दा हँसेगी, गायेगी। आप यह कैसी बात कर रहे हैं ? वह मुँह फुलाये बैठी अच्छी नहीं लगती। हँसती रहे तो अच्छी लगती है !"

भाई साहब ने इसका उत्तर नहीं दिया। केवल इतना कहा, "तुम्हारी भाभी आपत्ति करती है !" और फिर चन्दा से कहा, "तुम्हें सास की तरह अपनी जेठानी का आदर करना चाहिए।"

यह अन्तिम बात चेतन के मन में लग गयी और उसने चन्दा को समझाया, "भाभी पुराने और संकुचित वातावरण में पली है। उसके विचारों और भ्रमों का कुछ-न-कुछ ध्यान रखना ही चाहिए। भाई साहब के सामने तुम नंगे सिर न रहा करो और कम हँसने की भी कोशिश किया करो !" और फिर बायीं आँख दबाकर शरारत से मुस्कराते हुए उसने कहा, "विशेषकर जब भाभी सामने हो !"

२३

अपने इस वैवाहिक जीवन से चेतन कुछ अधिक सन्तुष्ट हो और चन्दा के लाहौर आ जाने पर नीला उसे बिलकुल भूल गयी हो, यह बात न थी। उसे चन्दा अच्छी लगती थी, वह उसके साथ हँसता-हँसाता और सैर-तमाशे भी जाता था। किन्तु इस पर भी जब उसने चन्दा से सुना था कि कान्ता की शादी है और शायद उन्हें इलावल-पुर जाना पड़े तो अज्ञात रूप से वह निमन्त्रण की प्रतीक्षा किया करता

था। भाभी को लाहौर ले आने के लिए भी उसने इसी विचार से अनुमति दे दी थी। चन्दा सरल था, भोली-भाली थी, उदार थी, सहृदय थी, विनम्र और संकोचशील थी। पर वह सुन्दर और शिक्षित न थी, इसी बात का खेद चेतन को रहा करता था। इतने दिन के वैवाहिक जीवन के बाद उस खेद में कमी न हुई थी, बल्कि वह कुछ बढ़ा ही था।

उन दिनों चेतन को बड़ी आकांक्षा होती थी कि यदि उसकी पत्नी सुन्दर नहीं हो सकती तो सुशिक्षित अवश्य हो जाय। सन्ध्या को दफ़्तर से आकर, खाना आदि खाकर वे सैर को जाते थे। गोल बाग़ की रविशों पर टहलते हुए, जब बड़ी सुन्दर बातें हो रही होतीं, चेतन को सहसा ध्यान आता कि वे इस समय को व्यर्थ ही गँवा रहे हैं। क्यों न सैर-ही-सैर में वह अपनी पत्नी को पढ़ा दे? और वह चलते-चलते उससे हिन्दी वाक्यों की अँग्रेज़ी पूछता।

चन्दा से अँग्रेज़ी न बन पाती। चेतन एक बार बता देता, पर दूसरी बार भी चन्दा से अँग्रेज़ी न बनती। कार्तिक की स्निग्ध-धवल ज्योत्स्ना गोल बाग़ की सुनसान वीथियों, वृक्ष-लताओं, पुष्प-पल्लवों, घास से आच्छादित भूमिखण्डों और तारकोल से काली सड़कों को स्वप्न की-सी सुन्दरता प्रदान कर रही होती; दिन भर चँगड़ानियों की गालियाँ और कर्कश स्वर सुन-सुनकर ऊबे हुए उसके कान पत्तों की मीठी मर्मर सुनने के लिए आकुल होते; उपलों से लदी हुई दीवारों को देख-देखकर थकी हुई उसकी आँखें इस स्वप्न-संसार का रस लेना चाहतीं; सड़क के किनारे जहाँ एक चबूतरे पर पुराने समय की एक नन्हीं-सी तोप पड़ी है, वह कुछ क्षण बैठना चाहती; पर उसका यह अरसिक पति जो कवि और कथाकार होने का दम भरता था........'ये कैसे कवि हैं,' वह सोचती........और वाक्य की अँग्रेज़ी उससे न

बनती........

चेतन पहले तो झल्लाता, फिर शिक्षा पर एक छोटा-सा भाषण झाड़ता और फिर चुपचाप, तनिक जल्दी-जल्दी, चलने लगता। चलते-चलते वह आगे हो जाता और वह पीछे घिसटती आती।

हर दूसरे-तीसरे ऐसा होता। मानसिक तौर पर वह रूठता, शारीरिक तौर पर मान जाता।

अपने वैवाहिक जीवन के तीन चार महीने बाद ही उसने एक दिन अनन्त को पत्र लिखना आरम्भ किया—

'.... ...मैं कहता हूँ अनन्त मैंने क्या शादी कर ली! तुम ठीक कहते हो। मैं डरपोक हूँ। मेरी दशा उस व्यक्ति की-सी है जो एक हिंस्र पशु से डरकर दूसरी ओर भागता है तो उसके सम्मुख दूसरा आ जाता है, दूसरे से भयभीत होकर तीसरी ओर मुड़ता है तो तीसरे का सामना करना पड़ता है।

मैं डर रहा था कि मैं गिर रहा हूँ। अपने चरित्र से गिर रहा हूँ। और मैंने सोचा कि दूसरों की क्यारियों में मुँह मारने की आज्ञा देने की अपेक्षा मन के इस उद्दण्ड पशु को अपनी एक निज की क्यारी बना दूँ। पर कदाचित् मन के इस पशु को दूसरे की खेतियों में मुँह मारना ही अधिक रुचता है।

दूसरे की अलमारी में लगी हुई पुस्तकें अनन्त, बड़ी अच्छी लगती हैं। उन्हें पढ़ने को बड़ा जी चाहता है। उन्हें पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है, पर जब हम उन्हें खरीद लेते हैं तो वे प्रायः अनपढ़ी और उपेक्षित हमारी अलमारियों में पड़ी रहती हैं।

मेरे मन में सदैव द्वन्द मचा रहता है। चन्दा सीधी-सादी, भोली-भाली लड़की है। सहृदय, भावुक और उदार!

किन्तु मुझे उसके ये गुण नहीं भाते। जब वह मेरे सामने आती है तो मैं अनायास ही नीला से उसकी तुलना करने लगता हूँ........'

चेतन अभी इतना ही लिख पाया था कि चन्दा उसके पास आ गयी? चेतन ने ज़ल्दी से पत्र मेज़ के दराज़ में रख दिया।

"क्या लिख रहे थे?" पत्नी ने हँसते हुए पूछा :

"योंही एक कविता आरम्भ की थी।"

"सुनाइए।"

"ख़त्म होने पर सुनाऊँगा।" उसने कहा और फिर दीर्घ-निश्वास भरकर बोला...."लेकिन तुम कविता-अविता क्या समझोगी? काश, कहीं तुम भी कुछ परिश्रम करके थोड़ा-बहुत पढ़ लेतीं!" फिर सहसा बात का रुख बदलकर उसने पूछा, "वह पुस्तक पढ़ डाली तुमने?"

मैंने पढ़नी आरम्भ की थी पर........।"

चेतन ने उसके मुख की ओर देखा। निर्निमेष वह देखता रहा और वहीं उसके मुख पर उसे किसी दूसरे मुख की रेखाएँ बनती दिखायी दीं और उसने बड़े प्यार से हल्की-सी चपत उसके गाल पर लगा दी।

उसकी पत्नी चकित-सी खड़ी उसकी ओर देखती रही। तब चेतन ने अपने प्रिय विषय 'शिक्षा' पर एक छोटा-सा भाषण दे डाला।

"जवानी के चार वर्ष तो चन्दा योंही बीत जायँगे। यों, फ़ुर से!" और उसने चुटकी बजायी, "पता भी न चलेगा। यौवन में शारीरिक आकर्षण ही पति-पत्नी को एक दूसरे के समीप रखता है। किन्तु युवावस्था बीतते देर नहीं लगती और समय आ जाता है कि पति के लिए घर में कोई आकर्षण नहीं रहता। पति पत्नी को नहीं समझ पाता और पत्नी पति को। यदि तुम मुझ सी अध्ययनशील बन जाओ चन्दा, साहित्य में तुम्हें भले-बुरे की तमीज़ हो जाय तो हमारे बीच पति-पत्नी के बदले संगी और संगिनी का नाता स्थापित हो जायगा, हम एक

दूसरे को भली-भाँति समझते जायँगे और दिन-प्रतिदिन हमारे प्रेम की ज़ंजीर मज़बूत होती जायगी।"

चन्दा चुपचाप अपने पति की ओर देखती रही। फिर उसने धीरे से कहा, "मैं पढ़ने लगती हूँ तो मुझे नींद आ जाती है।"

"यह नींद तो प्रगति की घातक है। नींद आलस्य है, नींद मृत्यु है।" और चेतन को पता न था कि वह क्या बक रहा है। वह कहता चला गया—"अज्ञान भी एक नींद है चन्दा—महानिद्रा-सी भयानक! इस महानिद्रा पर विजय पाने के लिए तुम्हें अपनी साधारण नींद से कुछ घड़ियों का त्याग करना होगा, नहीं तो अज्ञान की महानिद्रा अपने अन्धकार से तुम्हें लील जायगी।"

चन्दा ने तनिक हँसकर कहा, "ब्याह होने पर मैं समझा करती थी कि पढ़ाई समाप्त हो गयी, किन्तु मैं आपके आदेश का पालन करने की पूरी कोशिश करूँगी।"

"तुम्हारी पढ़ाई वास्तव में अभी आरम्भ हुई है।" चेतन ने कहा, "ज्ञान जाग्रति है और जाग्रति मानव को किसी समय भी अग्राह्य न होनी चाहिए।"

"मैं और अधिक लगन से पढ़ने का यत्न करूँगी।"

और वह बाहर जाकर चारपाई पर लेटे-लेटे पढ़ने लगी।

चेतन ने पत्र निकाला और उसे फिर लिखने लगा, किन्तु अपनी पत्नी की सरलता और सहृदयता उस पर कुछ ऐसी छा गयी कि वह उस पत्र को और आगे न बढ़ा सका। पढ़कर उसने उसे फाड़ दिया। मन-ही-मन अनन्त को सम्बोधित करके उसने केवल इतना कहा, 'तुम नहीं जानते अनन्त मेरे मन में कैसा द्वन्द मचा रहता है, प्रति दिन मुझे कैसी यन्त्रणा सहनी पड़ती है।'

२४

आखिर वह निमन्त्रण आ गया, जिसकी प्रतीक्षा चेतन इतने दिनों सेमन-ही-मन कर रहा था। इलावलपुर में उसके ससुर की ननिहाल थी। वहीं उनके मामा की पोती का विवाह था। ससुर के ननिहाल से साधारणतयाः दामाद को दूर का भी वास्ता नहीं होता, किन्तु पण्डित दीनबन्धु और वेणी प्रसाद को वास्तव में उनके मामा ही ने पाला था। दोनों बच्चे ही थे, जब उनके सिर से उनके पिता की छाया उठ गयी थी।

मामा के बड़े लड़के—चूनीलाल की मृत्यु हो चुकी थी। उसी की लड़की कान्ता का ब्याह था। माँ-बाप के मर जाने के बाद दादा ने उसे अपनी दूसरी पोतियों से कहीं ज़्यादा लाड़ से पाला था। और वह चाहता था कि उसकी शादी भी ऐसी धूम-धाम से करे कि बच्ची को पिता का अभाव न खटके। चन्दा कान्ता के साथ खेली-कूदी और बड़ी हुई थी। उसे कान्ता ने स्वयं अपने हाथ से पत्र लिखा था और अनुरोध किया था कि वह अपने साथ जीजा जी को भी लाये। पर जीजा जी तो दूर रहे, चन्दा स्वयं भी जाने के लिए कुछ वैसी आतुर न थी।

बात यह थी कि चेतन के रोज़-रोज़ के भाषणों से तंग आकर अन्त में चन्दा नियमित रूप से स्कूल जाने लगी थी। "यदि आप मुझे सचमुच शिक्षित देखना चाहते हैं," उसने कहा था, "तो आप मुझे किसी स्कूल में दाखिल करा दें। आप स्वयं मुझे न पढ़ा सकेंगे। एक शब्द पढ़ायेंगे तो चार बार झिड़केंगे और चार घण्टे लेक्चर देंगे।" उसने यह बात इतने भोलेपन से कही थी कि चेतन हँस दिया था और उसने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था और वह बड़े शौक़ से पढ़ने लगी थी। उसकी अध्यापिका ने विश्वास दिलाया था कि यदि चन्दा जी लगाकर पढ़ेगी तो वह तीन महीने

ही में हिन्दी-रत्न की परीक्षा दे लेगी। और उसने जी-जान से पढ़ना शुरू कर दिया था।

यही कारण है कि जब उसे निमन्त्रण मिला तो वह स्वयं इलावलपुर जाने के लिए कुछ उतनी व्यग्र न थी। लेकिन जब चेतन दफ़्तर से आया तो उसने अपने पति से इस बात का ज़िक्र नहीं किया, "कान्ता की शादी है," उसने कहा, "ताऊ जी का पत्र आया है। कान्ता और नीला ने आपसे आने का अनुरोध किया है।" चेतन को संक्षिप्त में उसने पत्र का सारांश बता दिया, पर अपनी ओर से किसी प्रकार की इच्छा प्रकट नहीं की।

चेतन का हृदय धक-धक करने लगा, पर अपने आन्तरिक उल्लास को छिपाकर उसने अत्यन्त संयत स्वर में बेपरवाही से कहा, "अच्छा लाओ तो, देखें क्या लिखा है?"

चन्दा ने पत्र अपने पति को दे दिया। वास्तव में यह निमन्त्रण हरमोहन की ओर से था। किन्तु एक अलग काग़ज़ पर कान्ता ने उससे आने के लिए कहा था। इस पर चन्दा के ताऊ और पिता की ओर से 'ताकीद,'† थी और नीला के हाथ की लिखी हुई दो पंक्तियों में 'ताकीद मज़ीद'* थी, जिनमें उसने अपने इन प्यारे जीजा जी को सानुरोध बुलाया था।

"आज-कल दफ़्तर में बड़ा काम है," चेतन ने पत्र पढ़कर लौटाते हुए कहा, "दो सम्पादक तो बीमारी के कारण छुट्टी पर गये हैं, तीसरा बीमार होने की फ़िक्र में है। फिर भाई मैं तो ब्याह-शादी के झमेलों से बड़ा घबराता हूँ, फिर शादी नगर में हो तो बात भी है, यहाँ जाना होगा उनके गाँव में........"

"हाँ, विवाह तो वे अपने यहाँ ही करेंगे!" चन्दा ने कहा, "लेकिन इलावलपुर गाँव नहीं कस्बा है!"

---

† ताकीद = अनुरोध। *ताकीद-मज़ीद = और भी अनुरोध।

"अरे यहाँ के गाँव और कस्बों में कौन-सा बड़ा अंतर होता है मैं तो अपने सम्बन्धियों तक की ब्याह-शादियों में शामिल नहीं होता। फिर........"

बात काटकर उसकी पत्नी ने कहा, "फिर निकट-सम्बन्धी हों तो भी कुछ बात है, आपको दफ़्तर में काम है और मैं स्कूल से छुट्टी लेना पसन्द नहीं करती। कान्ता की बात ज़रूर है। उससे मिलने को जी चाहता है, किन्तु उसे एक बार यहाँ बुला लेंगे। वहाँ जाने की कोई आवश्यकता नहीं।"

अन्तिम बात सुनकर चेतन ज़रा बौखलाया। वह सोचता था उसकी पत्नी अनुरोध करेगी, वह 'न' 'न' करेगा और आखिर बड़ी मुश्किल से, उस पर एहसान का बोझ लादते हुए, जाने को तैयार हो जायगा। पर चन्दा की यह बात सुनकर क्षण भर के लिए वह अप्रतिभ-सा उसके मुँह की ओर तकता खड़ा रहा। फिर उसने शीघ्र ही पैंतरा बदला।

"दूर-निकट की बात नहीं," वह बोला, "प्रायः भाई-भाई भी इतने दूर चले जाते हैं कि शत्रु उनसे समीप जान पड़ते हैं। इसके विपरीत पराये कई बार इतने समीप आ जाते हैं कि अपने हो जाते हैं। प्रश्न समय का है। मेरे पास समय कम है।" फिर कुछ रुककर वह बोला, "किन्तु मैं सोचता हूँ कि तुम्हारे पिता और ताऊ तो उन्हें अपना-सा ही समझते हैं। इसलिए यह तो एक तरह से उन्हीं के यहाँ जाना है। निमन्त्रण भी तो उन्हीं की ओर से आया है, कहीं वे हमारे न जाने का बुरा न मानें?"

और वह कुछ क्षण चुप रहा ताकि चन्दा पर इस तर्क की प्रतिक्रिया जाने। पर उसका मुख भाव-शून्य था। चेतन ने फिर कहा:

"तुम इतने महीनों से इस ब्याह की बात कर रही थीं, मुझे साथ चलने को तैयार कर रही थीं, अब........"

"पहले मुझे कोई परीक्षा तो पास करनी न थी। शादी-ब्याह में शामिल होती रही तो दे चुकी परीक्षा और फिर कहीं फ़ेल हो गयी तो आप ही जान खायेंगे।"

चेतन हँसा, "वहाँ कौन से इतने दिन लगेंगे, चार-पाँच दिन के लिए ही तो जाना होगा।"

चन्दा चुप रही। वह सोच में पड़ गयी। फिर लम्बी साँस लेकर चेतन ने कहा :

"और मैं सोचता हूँ, इस बहाने तुम्हें भी कुछ आराम मिल जायगा और मैं भी समाचार-पत्र की इस चक्की से कुछ दिनों के लिए छुट्टी पा लूँगा।

अपने आराम की बात तो शायद चन्दा पर उतना असर न करती, पर अपने पति के लिए हँसी-खुशी के दो दिन उपस्थित करने को वह झट से तैयार हो गयी।

—o—

२५

पाँच के बदले चेतन को वहाँ पन्द्रह दिन लग गये!

कई बार जीवन में कोई ऐसी छोटी-सी घटना घटती है जो हमारे जीवन की समस्त धारा को बदल देती है। न केवल यह, बल्कि कई बार वह छोटी, नित्य प्रति घटने वाली असंख्य साधारण घटनाओं में से एक घटना हमारे सम्पर्क में आने वालों की जीवन-धाराओं को भी पलट देती है और हमारे जीवन की ऐसी महत्वपूर्ण घटना बन जाती है कि उसका प्रभाव जीवन-पर्यन्त हमारे मन पर रहता है।

चेतन के ससुर के मामा की इस पोती का विवाह भी चेतन, चन्दा और नीला के जीवन में एक ऐसी ही महत्वपूर्ण घटना बन गया।

वसन्त के आरम्भ की सुन्दर सन्ध्या थी; सूरज पश्चिम की सुनहरी झील में धीरे-धीरे उतर रहा था; उसकी सुनहरी किरणें नाचते हुए मोर के पंखों-सी आकाश में गोलाकार फैल रही थीं और चेतन अपने साले रणवीर के साथ इलावलपुर को चला जा रहा था।

चन्दा को उसने पहले भेज दिया था और स्वयं एक कवि-सम्मेलन में भाग लेने के लिए जालन्धर रुक गया था। वहाँ उससे जाने क्या बदपरहेज़ी हो गयी कि इलावलपुर के लिए गाड़ी में सवार होते समय तक उसके सिर में तीव्र पीड़ा होने लगी। इलावलपुर के स्टेशन पर जब वह उतरा तो उसका शरीर बुरी तरह काँप रहा था। लेकिन सुस्त होने के बदले वह और भी तेज़ी से चलने लगा कि किसी तरह मंज़िल पर जा पहुँचे।

तीव्र गति से चलते और ज्वर के वेग से काँपते हुए चेतन का जी मतलाने लगा और जब वह तीन-चार संकरी, दुर्गन्धयुक्त, गन्दी-मैली, गलियों से गुज़रकर मामा चिरंजीत लाल के पक्के तिमंज़िले मकान के बालाखाने पर पहुँचा तो उसे ज़ोर की क़ै हुई।

रणवीर ने नीचे जाकर बताया कि जीजा जी को ज्वर हो आया है और वह पानी लेकर फिर ऊपर को भागा।

अतीव पीड़ा से फटे जाते-से सिर को थामे, नाली पर बैठे-बैठे, ज्वर के वेग से जलती-तपती आँखों से चेतन ने देखा कि एक लड़की भागती-भागती आयी और देखते-देखते उसने अन्दर चौबारे में बिस्तर बिछा दिया और रणवीर से कहा कि वह जीजा जी को वहाँ लिटाये।

कुल्ला करके, वैसे ही सिर थामे, रणवीर के सहारे जब वह बिस्तर पर जा लेटा और जब उस पर लिहाफ़ डाल दिया गया तो उसने अपने मस्तक पर ठण्डा, प्यार भरा हाथ फिरता हुआ महसूस किया और उसके कानों में आवाज़ आयी—मधुर और स्नेह भरी—"जीजा जी!"

चेतन को बड़े ज़ोर का कम्पन हो रहा था। ज्वर की तीव्रता के कारण उसकी आँखें भट्टी की तरह तप रही थीं। उससे बोला न जाता था, लेकिन नीला का स्वर पहचानकर उसे बड़ी ही सान्त्वना मिली। लिहाफ़ के अन्दर उसकी आँखें भर-सी आयीं। पुनः जब नीला ने प्यार से उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसे आवाज़ दी तो उसने लगभग गीले, थरथराते स्वर में कहा :

"नीला, सिर फटा जा रहा है।"

इस बीमारी में चन्दा अपने पति के पास ज़्यादा नहीं आयी। जब सिर-दर्द से व्याकुल होकर चेतन ने उसका नाम लेकर पुकारा तो वह एक बार आयी और सहमे हुए स्वर में उसने कहा—

"आप मेरी माँ को यहाँ मुँह दिखाने योग्य न रहने देंगे। यह जालन्धर या बस्ती नहीं, यह गाँव है। बड़े पुराने विचारों के लोग रहते हैं यहाँ। आपको जिस चीज़ की ज़रूरत होगी, उसका मैं पूरा-पूरा ख़याल रखूँगी। मैं नीला से कहे देती हूँ कि आपकी आवश्यकताओं की ओर वह पूरा-पूरा ध्यान देगी। मेरे माता-पिता की इज़्ज़त का ख़याल रखें—मुझे नाम लेकर न पुकारें!"

और अत्यन्त अनुनय के स्वर में यह सब कहकर वह भाग गयी थी। नीला से कुछ कहने की आवश्यकता ही चेतन को न पड़ी थी, क्योंकि अपने जीजा जी की आवाज़ सुनकर वह चन्दा के पीछे ही भाग आयी थी।

चेतन के कमरे में उस समय बच्चे शोर मचा रहे थे और उसका सिर फटा जा रहा था। "भगवान के लिए इनको यहाँ से भगाओ!" चेतन ने सिर थामते हुए किसी-न-किसी तरह कहा।

नीला ने बच्चों को झिड़क-डाँटकर भगा दिया, किवाड़ भेड़, कुण्डी चढ़ा दी और चेतन के सिरहाने आ बैठी। चेतन उस समय पीड़ा से

कराह रहा था। नीला धीरे-धीरे उसका सिर दबाने लगी।

इसके बाद चेतन पर कुछ बेहोशी-सी छा गयी। नीला का स्वर जैसे कहीं बहुत दूर से आते हुए, मीठे मद-भरे संगीत की शान्ति-प्रद तान-सा उसके कानों में आता रहा। नीला क्या-क्या बातें करती रही, उसे यह सब याद नहीं। लेकिन उस अर्ध-चेतनावस्था में भी उसको कुछ बातें चेतन के मानस-पट पर अमिट रूप से अंकित हो गयीं।

........उसके लम्बे-लम्बे घुँघराले बालों में अपनी कोमल अँगुलियाँ फेरते हुए नीला ने कहा था, "जीजा जी तुम्हारे बाल कितने सुन्दर हैं! लम्बे, काले घुँघराले...."

........और फिर पूछा था, "क्यों जीजा जी! ये घुँघर आपने कैसे बनाये हैं? आपने बनाये हैं या अपने आप बन गये हैं? मेरे तो बाल ऐसे नहीं बन पाते। लम्बे तो हैं, पर घुँघराले नहीं।

और उसने अपनी वेणी लेकर जीजा जी को अपने बाल दिखाये थे कि वे कैसे कोमल और लम्बे हैं, पर घुँघराले नहीं।

"........जीजा जी मैं तो ब्याह न करूँगी। कोई मेरी शादी बरबस थोड़े ही कर देगा।"

"........क्यों जीजा जी, जब लोग ब्याह के बाद ब्याह को कोसते हैं तो वे क्यों करते हैं शादी? न करें! सुख से रहें। मैं तो कभी न करूँगी। मैं तो साफ़-साफ़ कह दूँगी पिता जी से।"

और उसने अपनी बड़ी बहन की कहानी सुनायी थी।

........मीला बहन क्या सुखी है? विवाह के पहले जाने क्या-क्या सोचती होगी? हवा में कितने किले बनाती होगी? किन्तु अब तो उसकी आँखों का पानी ही नहीं सूखता। बड़े जीजा जी इंजीनियर हैं, सात-आठ सौ वेतन पाते हैं। ससुर धनी-मानी हैं, किन्तु फिर भी सुख नहीं। जब विवाह हुआ था तब बड़े जीजा जी पढ़ते थे। सास ने तीन वर्ष तक उसे पति के पास नहीं फटकने दिया। फिर सास के साथ बहन

की बनी नहीं, इसलिए सास ने शोर मचाया कि यह तो बाँझ है, मैं अपने लाल का दूसरा ब्याह कर दूँगी।

और नीला कुछ क्षण चुप शून्य में तकती रही थी। फिर उसने कहा था :

"...... उस समय जीजा जी दूसरा ब्याह करने को तैयार न हुए। बाद में बहन के एक छोड़ तीन बच्चे हुए, पर उसका वैवाहिक जीवन सफ़ल न हुआ। अब जीजा जी को शिकायत है कि जीजी कुरूप है, फूहड़ है, शिक्षित नहीं, संस्कृत नहीं!"

"........ज़बरदस्ती कौन करेगा जीजा जी? मैं विवाह करूँगी ही नहीं।"

"........बच्ची नहीं हूँ, चौदह वर्षों की होने आयी हूँ।"

और मस्तक दबाते-दबाते नीला ने उसके गालों पर हाथ फेरा।

"........जीजा जी दाढ़ी आपके बहुत बढ़ आयी है। आप हजामत क्यों नहीं बनवा लेते?" और वह हँसी थी, "मैं बना दूँ उसतरा लेकर?"

"........जीजा जी आपके ओठों पर पपड़ियाँ जम गयी हैं। इन पर ज़रा-सा मक्खन लगा दूँ।"

चेतन से कुछ बोला न गया था। उसका गला सूज गया था। उसे बड़ी तकलीफ़ थी, पर उस समस्त कष्ट और पीड़ा के होते भी उसे बड़ी पुलक और शान्ति मिली थी।

रात को नीला ने दूध में बनफ़शा उबालकर उसके गले पर बाँध दिया।

दूसरे दिन गाँव के अस्पताल का कम्पाउँडर आया जो अपने आपको डा० विधान चन्द्र राय से कम न समझता था। कुनीन मिक्सचर और फ़ीवर मिक्सचर की खुराकें वह उसे पिलाता रहा, किन्तु चेतन को आराम न हुआ। हारकर उसने एक देहाती हकीम से, जो अत्तार

भी था, 'अत्तरीफल ज़मानी* मँगाया। दूध के साथ उसे पिया और जब पेट साफ़ हुआ तो वह कुछ ठीक ढंग से सोचने योग्य बना। उसने हजामत बनायी, मुँह-हाथ धोया और चारपाई पर आराम से लेट गया।

एक-एक करके सारी बातें उसके मस्तिष्क में घूमने लगीं—

गले में शोथ होने के कारण वह अधिक न बोल पाया था और बातें अधिकतर नीला ही करती रही थी। लेकिन जितनी देर वह पास बैठी बातें करती रही थी, चेतन को एक अपार तुष्टि, एक अपार आनन्द का आभास मिलता रहा था।....उसके लम्बे, काले, सुकोमल, सुगन्धित बाल, पतली पर मांसल अँगुलियाँ...हृदय को भेदकर, सोयी हुई भावनाओं को जगाने वाली उसकी दृष्टि....लेकिन चन्दा....

और अचानक अपनी पत्नी का ध्यान आ जाने से उसने उसे आवाज़ दी।

भागकर नीला ऊपर आ गयी।

बिना उसकी ओर देखे, बिना उससे दृष्टि मिलाये चेतन ने कहा, "तुम ज़रा अपनी बहन को भेज दो।"

"क्या काम है जीजा जी ?" जैसे उसकी नाचती हुई वाणी ने पूछा।

"तुम ज़रा उसे भेज दो।"

और कुछ चकित-सी नीला चुपचाप चली गयी। दूसरे क्षण चन्दा उसके पास खड़ी थी।

"कहिए !"

चेतन चुप रहा। वह सोच रहा था कि अभी जो बात उसके मन में अचानक उठी थी, उसे कहे या न कहे।

चन्दा उसके पास बैठ गयी और उसके लम्बे-लम्बे बालों पर हाथ

---

*एक यूनानी दवाई।

फेरते हुए उसने कहा।

"आपने मुझे बुलाया था, क्या हाल है अब तबीयत का?" और एक स्निग्ध मुस्कान उसके ओठों पर फैल गयी।

"तुम्हारी बला से!" चेतन ने रुखाई से कहा, "तुम्हारी ओर से कोई मरे या जिये, तुम अपनी सखी-सहेलियों और गाने-बजाने में मस्त रहो।"

"क्यों क्या बात है?" चन्दा का गला भर आया। उसकी मुस्कान विषाद में विलीन हो गयी और उसकी चकित आँखें पति के क्षीण और तनिक पीले चेहरे पर जम गयीं!

"मैं आज चार-पाँच दिन से बीमार हूँ। इतना ज्वर चढ़ आया, तुमने पूछा भी आकर?"

"क्यों, मैं तो बराबर आपकी खबर रखती हूँ। आपको किस बात का कष्ट हुआ है, नीला जो थी........।"

"नीला जो थी....नीला जो थी....नीला...." झल्लाकर चेतन ने लगभग चीखते हुए कहा, "तुम मेरे पास बैठो।"

अत्यन्त विनीत और आर्द्र स्वर में चन्दा बोली, "आप नहीं जानते, मैं आपके पास आ बैठी तो बीस तरह की बातें होंगी। कुटुम्ब की स्त्रियाँ जो मुँह में आया बकेंगी। नीला...."

"मैं कहता हूँ चन्दा तुम पागल हो," चेतन ने खीजकर कहा, "नीला अब बच्ची नहीं, चौदह वर्ष की हो गयी है वह और मैं—देखती नहीं हो—पुरुष हूँ, दुर्बल पुरुष........"

चन्दा ज़ोर से हँस पड़ी, "आपने तो मुझे डरा ही दिया था। मुझे इस बात का डर नहीं। वह मेरी छोटी बहन है। ताऊ की लड़की हुई तो क्या, मैंने उसे बहन ही की भाँति समझा है। उसकी इज़्ज़त आपके हाथ में है। वह चंचल है, बालिका है, छोटी-मोटी ग़लती कर सकती है, पर आप तो नहीं कर सकते।"

और एक असीम, अपार, उदार विश्वास से अपने पति को देखते हुए उसने उसके मस्तक पर हाथ फेरा !

"यदि तुम मेरे पास नहीं बैठना चाहती तो फिर मुझे यहाँ से ले चलो।"

उस दृष्टि से जो स्निग्ध-स्नेह से भरकर एक बच्चे के चंचल भोलेपन को देखती है, चन्दा ने अपने पति की ओर देखा और उसके कन्धे को प्यार से थपथपाकर उसने कहा, "मैं कहीं जा तो नहीं रही, सदा आपके पास ही तो मुझे रहना है। आप ही के कहने पर मैं यहाँ आयी थी। अब जिस काम से आयी हूँ, उसकी समाप्ति के पहले कैसे चली चलूँ ? इस तरह जाना तो बचपना होगा। बस दो-चार दिन और किसी तरह काट लें! मैं तो दिन रात आपके पास बैठी रहूँ, किन्तु रिश्तेदारों का डर है। यों कहने को मैं चाहे नीचे आँगन में बैठी रहती हूँ, पर मेरी सारी वृतियाँ आप ही की ओर लगी रहती हैं।"

चेतन ने अपनी दृष्टि अपनी पत्नी की आँखों में जमा दी। इस सरल-हृदय पत्नी से कभी वह विश्वासघात कर सकता है ? एक असीम दया और निर्मल प्रेम से उसके मन-प्राण प्लावित हो उठे। कितना बड़ा दिल पाया है इस नारी ने ? फिर कितना भोला ! नहीं जानती कि मानसिक सम्बन्ध के अतिरिक्त शारीरिक सम्बन्ध भी कोई चीज़ है। मन से मनुष्य अपने संगी का बना रहना चाहता है, शरीर नहीं रहने देता। मन शरीर को अपने अधिकार में, अनुशासन में रखना चाहता है, किन्तु वह प्रायः बिदके हुए घोड़े की तरह भाग खड़ा होता है।

उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि इस घोड़े को ज़रा बिदकने न देगा। वह उस पर पूर्ण अधिकार रखेगा।

नीला उसके बाद कई बार आयी, पर वह तना रहा। उसे किसी चीज़ की आवश्यकता हुई तो उसने नीला को नहीं, उसकी छोटी बहन शीला को बुलाया और साँझ को जब पण्डित वेणी प्रसाद अपने हिलते

हुए शरीर को लिये हुए उसका हाल-चाल पूछने उसके पास आकर बैठे तो लैम्प के उस धीमे प्रकाश में, उसने धीरे-धीरे, एक दो बातों को छोड़कर, संकेत रूप से सब कुछ उन्हें बता दिया और सलाह दी कि नीला अब युवती हो गयी है, अब उसका विवाह कर देना चाहिए। माँ सिर पर नहीं और आप भी उतना ध्यान नहीं दे सकते........और ज़माना अच्छा नहीं........बस्ती में अपढ़ लड़कियों की संगति........और व्यस्त रहने के लिए उसके पास कुछ है नहीं........आदि........आदि........

इसके बाद नीला उसके पास न आयी थी। यदि चेतन को कुछ आवश्यकता भी हुई तो उसकी छोटी बहन शीला ही आयी। चेतन का दम घुटने लगा। वह चाहने लगा कि उसी क्षण उठकर भाग जाय, सीधा लाहौर चला जाय, फिर कभी जालन्धर अथवा इलावलपुर न आये।

लेकिन इसके बाद भी उसे चार दिन वहाँ रहना पड़ा। वे चार दिन जैसे चार वर्षों से बीते। चारपाई पर वह अकेला लेटा छत की कड़ियाँ गिनता रहा। उसे पहली बार अनुभव हुआ जैसे कमरे में से रूह उड़ गयी है और वह एक मृत-व्यक्ति-सा मुँह बाये उसके पास पड़ा है। एक ही दिन में उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ गया। वह योंही चन्दा को आवाज़ें देता और जब हर आवाज़ पर नन्हीं शीला फुदकती हुई आती तो मन-ही-मन झल्लाकर रह जाता।

अन्त में तीसरे दिन शीला को अपने पास बैठाकर, उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए, उसने पूछा था, "क्यों शीला, नीला को इधर नहीं देखा, क्या करती रहती है वह ?"

"रोती रहती है !"

"रोती रहती है, पर क्यों ?"

किन्तु इस 'क्यों' का उत्तर वह निरीह बालिका क्या देती ? चेतन को लगता, जैसे कोई उसका हृदय कचोट रहा है।

चौथे दिन भी नीला न आयी। चेतन के लिए अब पल भर भी उस कमरे में बिताना कठिन हो गया। कान्ता अपनी ससुराल से एक दिन के लिए आकर जा चुकी थी, विवाह पर आये हुए सगे-सम्बन्धी जाने लगे थे। उसने चन्दा को बुलाया और आग्रह किया कि मुझे इसी क्षण यहाँ से ले चलो। कान्ता की माँ और उसकी सास ने बहुतेरा कहा कि अभी तुम्हारा जी ठीक नहीं, अभी दो-चार दिन और यहाँ रहो, पर वह न माना। आत्म-ग्लानि से उसके मन-प्राण जल रहे थे! विवश हो चन्दा उसे लेकर चल पड़ी।

मामा चिरंजित लाल के उस तिमंज़िले मकान से उतरते हुए उसके मन में प्रबल आकांक्षा हुई कि यदि नीला कहीं मिल जाय तो वह उससे फिर एक बार माफ़ी माँग ले। पर उसे उतरते देख वह भागकर कमरे में जा छिपी। चेतन को ऐसा लगा था जैसे किसी ने ज़ोर से उसके मुँह पर थप्पड़ दे मारा हो।

—o—

२६

कल्लोवानी के अपने उसी कमरे में चुपचाप बिस्तर पर लेटा हुआ चेतन अन्यमनस्क-सा खिड़की के बाहर देख रहा था।

जिस दिन वह इलावलपुर से जालन्धर लौटा था, उसी दिन घर पहुँचते ही उसे मालूम हुआ था कि उसके दादा का देहान्त हो गया है और ग्यारह दिन तक उसके लिए वहीं रहना अनिवार्य है। यद्यपि इलावलपुर में उसका ज्वर उतर गया था, किन्तु रास्ते की थकन गर्मी और दादा के देहान्त के बाद घर में खाने की असुविधा हो जाने के कारण वह फिर बीमार पड़ गया था।

चेतन के दादा को मरे आज पूरे ग्यारह दिन हो गये थे और ग्यारह

दिन तक उनके घर में एक प्रकार की चहल-पहल रही थी। रोना और पीटना भी हुआ था। पर चेतन के दादा ४० वर्ष के होकर अपनी पूरी आयु भोगकर, एकादशी के शुभ दिवस परलोकगामी हुए थे। इसलिए रोने-पीटने के साथ हास-परिहास भी होता रहा था। पर उनकी मृत्यु पर घर में दुख भी कम न था। अपने बेटे और पोतों के लिए उन्होंने क्या-क्या न सहा था........

माँ ने चेतन को बताया था कि मरने के चार दिन पहले तक वे स्वयं कुएँ पर जाकर स्नान और पाठ-पूजा करते रहे थे। अचानक उनके आमाशय में कुछ तकलीफ़ हो गयी। वे स्वयं जाकर हकीम नबीजान को दिखा आये और एक दिन उन्होंने उसका जोशाँदा भी पिया। फिर जब कष्ट बढ़ा तो डाक्टर बस्ती राम को बुलाया गया। फिर ऐसा दिखायी दिया कि आराम आ जायगा। पर रात को उनकी तबीयत कुछ ज़्यादा ख़राब हो गयी। वे अचेत हो गये। पण्डित शादीराम को तार दिया गया। वे उन दिनों बहराम स्टेशन पर नियुक्त थे। तार जब पहुँचा तो उस समय शायद वे पी-पिलाकर बेहोश पड़े थे। सुबह उनको फिर तार दिया गया और उधर भैरों बाज़ार से कैप्टन डाक्टर लहना सिंह को बुलाया गया। पर दोनों उस समय पहुँचे जब दादा की सरल, निरीह आत्मा पिंजर छोड़ चुकी थी।

पण्डित शादीराम ने उसी समय शपथ खायी कि मैं अब कभी शराब न पिऊँगा और क्रिया-कर्म के दिन तक उन्होंने उसे मुँह न लगाया था।

"यह कम्बख़्त कहता है कि इसे विश्वास नहीं आता।" उसके पिता की गरज सुनायी दी। "मुझे अभी बनारसी दास ने बताया है। सब मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। और मैंने ग्यारह दिन तक शराब को हाथ तक नहीं लगाया।"

"यदि इतने दिन नहीं लगाया तो अब जो लगा लिया, आज ही

तो क्रिया हुई है !" माँ ने कहा।

"तूने ही तो लड़कों को भड़काया है जो बाहर जाकर मेरी निन्दा करते हैं।" चेतन के पिता गरजे और चेतन को ऐसा लगा जैसे यह कहते-कहते उन्होंने एक लात माँ को जमा दी और वह गिर पड़ी। भागकर वह ऊपर गया।

उसके पिता और उसका छोटा भाई गुत्थमगुत्था हो रहे थे, उसकी माँ गिरी पड़ी थी और उसकी भाभी (जो भाई साहब के साथ उसी सुबह क्रिया-कर्म में भाग लेने आयी थी) एक ओर सहमी खड़ी थी और क्रोध से लाल आँखें किये भाई साहब माँ को उठा रहे थे।

"मैं तुम सबको क़त्ल कर दूँगा।" और अपने लड़के से अपने आपको छुड़ाकर उसके पिता लकड़ी चीरने की कुल्हाड़ी उठाने बढ़े।

जल्दी से भाई साहब ने एक हाथ से माँ को और दूसरे से छोटे भाई को पकड़ा और बाहर होकर सीढ़ियों का दरवाज़ा लगा दिया।

दूसरे क्षण चेतन के पिता ख़ाली हाथ लौटे। कुल्हाड़ी उन्हें नहीं मिली। उन्होंने दरवाज़ा खोलना चाहा। वह बाहर से बन्द था "अच्छा !" उन्होंने अपने आपसे कहा, "जैसे मैं यह दरवाज़ा नहीं खोल सकता, मैं इसे तोड़ दूँगा!" और उन्होंने रसोई-घर से पीतल की गागर उठा ली। सिर से ऊपर उठाकर दरवाज़े पर दे मारी, किवाड़ नये थे। एक ही चोट से क्या टूटते। तब दे गागर पर गागर, उन्मादी की भाँति वे किवाड़ों को तोड़ने लगे।

रात का अन्तिम पहर था। उसके पिता ऊधम मचाकर सो गये थे। उन्होंने किवाड़ तोड़ दिये थे, लेकिन भाई साहब ने नीचे डेयोढ़ी के किवाड़ लगा दिये थे और वे सूखे शीशम के मोटे तख़्तों के किवाड़ ! उनके सामने गागर बेचारी की क्या बिसात थी। आख़िर मुहल्ले वालों ने आकर बीच-बचाव कर दिया। भाई साहब और छोटे भाई ने माफ़ी माँग ली, पण्डित जी का नशा भी टूट गया और रो-रुलाकर सब सो

गये। लेकिन चेतन को ज़रा भी नींद न आयी।

पास के किसी घर में घड़ी ने चार बजाये। चेतन उठा। उसने भाई साहब और अपनी पत्नी को जगाया और आध घण्टे के बाद तीनों सामान उठाये स्टेशन की ओर चल दिये।

रास्ते में भाई साहब ने कहा, "तुम्हारी भाभी साथ चलने के लिए बड़ा आग्रह कर रही थी। मैंने कहा, 'चार-छै महीने और सब्र करो, ज़रा आय बढ़ जाय तो ले चलूँ।' कहने लगी, 'आप तो अपनी सब कमाई छोटे भाई और भावज को खिला रहे हैं। भला उनमें कौन से लाल लगे हैं।'—कमाई!" भाई साहब व्यंग्य और अवसाद से हँसे, "यहाँ दुकान का किराया ही निकल जाय तो बड़ी बात है।"

रात यद्यपि बीत चली थी, पर कर्तव्यपरायण प्रहरियों की भाँति तारे अभी तक जमे खड़े थे। ऊपर की दुनियाँ धीरे-धीरे मन्द पड़ रही थी, नीचे का संसार जैसे अन्धकार के सागर से डूबकर निकल रहा था। सड़कों पर भंगी झाड़ू दे रहे थे और प्रातः की अमल पवित्रता उड़ती हुई धूल से मैली हो रही थी। भीगी, ठण्डी हवा चल रही थी, जिसे खुलती हुई दुकानों की गर्म साँसें कहीं-कहीं दम घोटने वाली बना देती थीं। भाई साहब की व्यंग्यमयी हँसी सहसा एक अभेद्य मौन में परिणत हो गयी और वे शून्य में देखने लगे।

चेतन ने ट्रंक को दायें कन्धे से हटाकर बायें कन्धे पर कर लिया और चन्दा ने कहा, "थक गये हों तो मुझे दे दीजिए।"

—o—

२७

उस रात को भाई साहब किसी-न-किसी तरह भाभी से पिंड छुड़ा

आये थे, लेकिन अभी उन्हें लाहौर आये महीना भी न बीता था जब भाभी के पत्रों की बाढ़ आ गयी कि उसे जालन्धर के नरक से शीघ्रातिशीघ्र निकालकर लाहौर के स्वर्ग में (जिस पर उनकी पत्नी होने के नाते उसका सहज-अधिकार था) बैठाया जाय। न केवल यह, बल्कि माँ चिट्ठी-पर-चिट्ठी लिखने लगी कि अब जब तुम कमाने लगे हो तो अपनी इस लड़ाकी बहू को बुला लो ताकि रोज़ की किल-किल से मेरा पिंड छूटे।

यह एक अजीब बात थी कि चेतन की भाभी ने पढ़ना आरम्भ कर दिया था। माँ ने लिखा था कि काम-धन्धा छोड़कर सारा दिन बैठी कापियाँ काली करती रहती है और पूछा था कि आखिर यह बूढ़ा तोता पढ़कर करेगा क्या?—ऐसे सब पत्रों के उत्तर में भाई साहब 'एक चुप सौ सुख' के सुनहले सिद्धान्त से काम लेते थे। उस महान तितिक्षावादी को तो माँ अथवा पत्नी के पत्र क्या विचलित करते, किन्तु चेतन को ही स्वयं कुछ आत्म-ग्लानि-सी होने लगी थी। वह सोचता था—मेरे भाई अकेले रहते हैं और मैं अपनी पत्नी के साथ मौज उड़ाता हूँ, यह तो निरा स्वार्थ है। अन्त में एक दिन जब रणवीर लाहौर आया तो उसने सहसा अपनी पत्नी को उसके साथ भेजने का निश्चय कर लिया और भाई साहब से कह दिया कि आप भाभी को आने के लिए पत्र लिख दें।

चन्दा ने स्वयं तो चेतन से कुछ नहीं कहा। उसने परीक्षा पास कर ली थी और उसे छुट्टियाँ ही थीं। पर जब शाम को चेतन घर लौटा तो बाहर गली ही में मेहतरानी ने (जिसे वह सहृदयता वश अथवा मानवता के नाते आदर से चौधरानी कहकर पुकारता था) उसे रोक लिया। "बीबी जी आज रो रहीं थीं," उसने कहा, "उनसे क्या अपराध बन आया जो आप उन्हें भेज रहे हैं? कहती थीं—चौधरानी तू उनसे कहना मेरा यहाँ से जाने को जी नहीं चाहता।"

चेतन कुछ उत्तर दिये बिना तनिक-सा हँसकर घर चला आया था। मन-ही-मन उसे अपनी पत्नी पर बड़ी दया हो आयी। वह उसे बराबर की संगिनी कहने का दम भरता है, पर उसकी इस बराबर की संगिनी में इतना साहस भी नहीं कि अपनी इस तनिक-सी स्वाभाविक इच्छा को उसके सामने रख सके। एक बार उसके जी में आया कि यदि किसी तरह बन पड़े तो अपनी पत्नी का जालन्धर जाना रोक दे। पर वह रणवीर और भाई साहब से कह चुका था और भाई साहब ने जोश में उन दोनों को पत्र भी लिख दिये थे। माँ को उन्होंने लिखा था—मैंने प्रबन्ध कर लिया है, चम्पा को तत्काल लाहौर भेज दीजिए, और पत्नी को आदेश दिया था—पत्र देखते ही लाहौर चली आओ!

चेतन ने चुपचाप आकर अपनी पत्नी को तैयार कर दिया, पर न जाने क्यों उसे तैयार कर देने के बाद वह अपने आपको इतना खिन्न और क्लान्त पा रहा था कि उसने उन्हें वहीं से विदा कर दिया। अपनी पत्नी की मूक-अभिलाषा के होते भी वह उन्हें स्टेशन तक छोड़ने नहीं गया।

•

उनके चले जाने के बाद वह चुपचाप नाली पर बिछी हुई खाली चारपाई में धँस गया और फिर लेट गया और उस तिमंज़िले मकान के ऊपर छाये हुए खुले, निखरे, नीले आकाश के शून्य को अपलक निरखने लगा। सहसा उसका अपना मन विशाल शून्य से भर गया। एक अज्ञात, अकथ, अनाम अवसाद उसके मन-प्राण पर छाकर उसकी आत्मा को अनायास मसलने लगा। चेतन ने अनुभव किया जैसे उस अवसाद के सामने वह नितान्त बेबस है। अपने निर्जीव-से शरीर को उसने और भी ढीला छोड़ दिया और निस्पन्द लेटा रहा।

दो दिन निरन्तर वर्षा होते रहने के बाद आकाश कुछ खुला था। कच्ची, गीली दीवारों, उनसे बेतरह चिमटे हुए भीगे-भीगे उपलों, कीचड़ से भरकर बह निकलने वाली नालियों, चंगड़ों के आँगनों में पशुओं

के खुरों से बन जाने वाले गोबर और कच्ची मिट्टी के तगारों और न जाने किन-किन रसायनिक द्रव्यों की मिली-जुली दुर्गन्ध सारे वातावरण पर छा रही थी; नाक में घुसकर जैसे नस-नस में चुभी जा रही थी; अनुभूति को, चेतना को मानो शिथिल कर रही थी और चेतन एक प्रकार की अचेतावस्था में दीवार के उस पार चंगड़ानियों का शोर सुन रहा था।

साँझ के सूरज की कुन्दन-धूप गली के सिरे पर बने सरदई खिड़कियों वाले तिमंज़िले मकान के शिखर को दीपित कर रही थी और ऊपर आकाश में बिखरे हल्के सफ़ेद बादलों के टुकड़ों में आग लग आयी थी। उस ऊँचे मकान और उसके सुनहरे शिखर को देखते-देखते, चेतन को उस मकान के पैरों में किलबिलाने वाली सृष्टि का ध्यान हो आया— उस साधनहीन सृष्टि का, जिसका एक अंग वह भी था। उसने लम्बी साँस ली। जीवन........! इसके पैरों में कितनी गन्दगी, कूड़ा-करकट, बीमारी, ग़रीबी, दुर्गन्ध, कुरूपता बिखरी रहती है, परन्तु अपने सिर पर यह सदैव उस मकान के शिखर की भाँति स्वर्ण-मुकुट पहने रहता है। और चेतन की आँखों के सामने अपना अतीत, वर्तमान और भविष्य घूम गया और उसने सोचा—क्या वह सदैव जीवन के पैरों ही में पड़ा रहेगा? उसके ताज का मोती बनना क्या उसे कभी नसीब न होगा?

इन उदास विचारों से वह घबरा-सा उठा। उसने चाहा कि उठे और सैर करता गोल बाग़ तक हो आये। पर वातावरण की उदासी और सील भरी बू कुछ इस तरह उसकी चेतना पर छा गयी थी कि वह अपने इन असम्बद्ध, असंगत, अस्त-व्यस्त विचारों की उलझन में फँसा वहीं लेटा, आकाश की ओर तकता रहा और मकान के शिखर पर दमकती हुई कान्ति किसी मरणासन्न रोगी के नयनों की दीप्ति-सी धीरे-धीरे अन्धकार में विलीन हो गयी।

—o—

२८

एक सप्ताह के बाद भाभी आ गयी। और उसके आगमन के एक सप्ताह बाद ही चेतन को दूसरे मकान की खोज में रत हो जाना पड़ा।

भाभी एक बार पहले भी आयी थी। पर तब चेतन विवाहित न था और वह सब कष्ट सहता हुआ दुकान पर रहने लगा था, पर अब उसे ऐसा करना कठिन दिखायी देता था।

अपनी पत्नी को जालन्धर भेजकर, चेतन ने अपने अवकाश के समय में कुछ साहित्य-सृजन का निश्चय कर लिया था। चन्दा को वह एकदम भूल गया हो अथवा वह अवसाद जो उस बेबसी के क्षण में, चन्दा को जालन्धर भेजने के बाद, उसके मन-प्राण पर छा गया था, सर्वथा मिट गया हो, ऐसी बात न थी। पर स्थिति कैसी भी क्यों न हो, उसे अपने अनुसार बनाकर उसका अधिकाधिक लाभ उठाना, उसने बहुत पहले सीख लिया था। अपने अवकाश और अवसाद को उसने रचनात्मक काम में लगाने का निश्चय कर लिया। उसका विचार था कि कम-से-कम पाँच छै महीने अपनी पत्नी को नहीं बुलायेगा और इसलिए मन-ही-मन उसने एक बड़ा उपन्यास लिखने का प्रोग्राम बना लिया। किसी महान लेखक के सम्बन्ध में उसने पढ़ा था कि जब वह सैर को जाता तो अपनी कहानियों की अध-कच्ची, अस्पष्ट रेखाओं में रंग भरता और उनको उभारता-सँवारता था। चेतन ने भी यह नियम बना लिया कि सन्ध्या को आकर खाना खाने के बाद अकेला सैर को चला जाता और अपने उपन्यास की रूप-रेखा तैयार करता।

रूप-रेखा बनाकर वह मोहनलाल रोड से एक मोटी कापी ले आया था। वह मैली न हो जाय, इस विचार से उसने उस पर काग़ज़ भी

चढ़ा दिया था और उसके पहले पृष्ठ पर उपन्यास और उसके लेखक का नाम सुन्दर मोटे अक्षरों में लिख, नीचे-ऊपर सुन्दर बेल बना दी थी।

अवकाश रहने पर वह घर पर भी काम करता था और इस कापी को दफ़्तर भी ले जाता था। जब रात को एक बजे के बाद काम अपेक्षाकृत कम होता तो वह कुछ लिखने का प्रयास करता।

भाभी के आने पर उसका यह उपन्यास धरा-का-धरा रह गया और घर में रहना अथवा वहाँ बैठकर काम करना उसके लिए कठिन से कठिनतर होता गया।

बात यह हुई कि एक दिन शाम को जब वह वापस आया तो उसने देखा कि उसका प्रिय शीशे का क़लमदान (जो उसने कबाड़ी की दुकान से नगद एक रुपये में ख़रीदा था और जो उसकी उस थर्ड हैंड मेज़ को सुशोभित करता था) देहरी में रखा हुआ है और भाई साहब के सपूत सुरेश महाशय उसकी लाल-नीली स्याही से अपनी छोटी बहन के मुँह पर बेल-बूटे बना रहे हैं, ताकि वह पूर्ण रूप से सीता बन जाय और वे रामलीला का खेल खेल सकें।

चेतन ने क़लमदान छीनकर मेज़ पर रखा, बका-झका; अपने भतीजे को पीटा और इसके फल-स्वरूप भाभी से लड़ा, किन्तु इसका परिणाम कुछ भी न निकला। दूसरे दिन जब वह सन्ध्या को दफ़्तर से आया तो उसने देखा कि सुरेश महाशय उसकी मेज़ पर चढ़े दीवार से चिमटी एक मकड़ी को पकड़ने के प्रयास में तल्लीन हैं और उसके लेखों, कहानियों तथा कविताओं की मोटी फ़ाइल उनके पाँवों के नीचे बेतरह कुचली जा रही है। चेतन को देखकर जो वे चौंके तो मेज़ समेत सब कुछ धड़ाम से नीचे आ रहा। क़लमदान टूट गया, काग़ज़ बिखर गये और जब रोते-झींखते उसने सब कुछ फिर से सजाया तो उसे

मालूम हुआ कि मेज़ की वह टाँग, जिसे कबाड़ी ने बड़ी चतुराई से जोड़ रखा था, टूट गयी है।

और वह अपना समस्त रचनात्मक कार्य छोड़, मकान ढूँढ़ने की मुहिम पर निकल पड़ा।

और गर्मियों की एक सुबह वह अनन्त को पत्र लिख रहा था :

"........हमने मकान बदल लिया है। यह नया मकान भी यद्यपि चंगड़ मुहल्ले ही में है, पर यही यथेष्ट है की पीपल-वेहड़ा में नहीं।

तुम सोचोगे कि चंगड़ मुहल्ले में ऐसा सुन्दर मकान मुझे मिल कैसे गया ? वास्तव में यह मकान सरदार जगदीश सिंह (लैंड-लार्ड ऐंड हाउस-प्रोप्राइटर) का निजी मकान है। यह सरदार जगदीश सिंह वही महाशय है, जिन्होंने अपनी अधिकांश जायदाद पार्टियों, कंसर्टों और यार-दोस्तों की भेंट कर दी। जायदाद खा-उड़ाकर अब उन्होने अपने निवास-स्थान को विभक्त कर, उसमें किरायेदार बसा लिए हैं। उनके साथ वाले भाग में हम आ गये हैं। तुमने शायद समाचार-पत्र में यह ख़बर पढ़ी होगी कि अब इन सरदार महोदय ने अदालत में श्रीमती राधारानी के पति और अपने तीन मित्रो के विरुद्ध सोलह हज़ार रुपया ठग लेने के अभियोग में मामला चलाया है........

मकान बहुत अच्छा है। जिस तरह चीकू के खुरदरे असुन्दर छिलके के अन्दर सुन्दर गूदा होता है, उसी प्रकार इस मैले, गन्दे इलाके में यह सुन्दर, सुनिर्मित मकान है। जगह बहुत नहीं—एक बड़ा कमरा है, जिसे एक लकड़ी के

पार्टीशन द्वारा दो कमरों में बाँट दिया गया है, स्नान-गृह नहीं है, पर रसोई-घर इतना खुला है कि उसके एक कोने में बने हुए चबूतरे से स्नानागार का काम लिया जा सकता है। कमरों की पिछली दीवार में खिड़कियाँ हैं, दीवारों पर सफ़ेदी और किवाड़ों पर बेहद अच्छा सरदई रंग का वारनिश है। इसके अतिरिक्त बड़े कमरे की छत में बिजली का पंखा भी लगा हुआ है। अनन्त ! जब कभी मैं खिड़कियाँ खोलकर पंखा चला, चारपाई पर लेटता हूँ तो मन एक अनिर्वचनीय आनन्द से विभोर हो उठता है। एक अत्यन्त गन्दी, सील भरी, अँधेरी कोठरी के बाद एक खुले, रोशन, हवादार कमरे में साँस लेने का आनन्द शायद तुम नहीं जान सकते।........

—o—

२६

रात अत्यधिक अँधेरी थी। वर्षा अपना वेग दिखाकर नन्हीं-नन्हीं बूँदों में बरस रही थी। चेतन ने घड़ी की ओर देखा, अढ़ाई बज गये थे। सामने सम्पादक महोदय प्रेस-कापी तैयार करके वहीं कुर्सी पर टाँगें सिकोड़े सो गये थे। चेतन उपन्यास लिख रहा था, किन्तु प्रयास करने पर भी उससे अब आगे न लिखा जाता था। उसका श्रान्त मस्तिष्क थके हुए घोड़े की भाँति अड़ गया था और बार-बार पानी के छींटों के रूप में चाँटे मारने पर भी आगे न बढ़ रहा था। उसने कापी बन्द की, सम्पादक को जगा, उससे छुट्टी ली, छाता उठाया और चल दिया।

बाहर गहन अन्धकार के बावजूद म्यूनिसिपल कमेटी की बत्तियाँ

बन्द थीं। गली के तिमंज़िले मकान इस अन्धकार को और भी निबिड़ बना रहे थे। नीचे पानी की नदी ठाठें मार रही थी और ऊपर से परनालों का पानी शोर मचाता हुआ उससे मिल रहा था।

चेतन ने सोचा कुछ क्षण और प्रतीक्षा कर ले। किन्तु यह विचार कि अढ़ाई बज गये हैं, जैसे बरबस उसे आगे ढकेलने लगा। एक हाथ में छाता और उपन्यास की कापी थामकर, दूसरे से तहमद को ऊपर उठाता हुआ वह सीढ़ियाँ उतर गया।

गली में घुटनों तक पानी था। रोशनी से सहसा अँधेरे में आने के कारण उसे कुछ दीख न रहा था। माप-मापकर पग धरता हुआ वह आगे बढ़ा।

वह लाख चाहता था कि परनालों की निरन्तर बहती धाराओं से बच जाये, पर वे सब 'हरर-हरर' करते ठीक गली के मध्य गिर रहे थे। दीवार के साथ चलने में पाँव के नाली में फँस जाने का भय था। उसका छाता दो-तीन वर्ष उसकी सेवा करने के उपरान्त जर्जर-प्रायः हो गया था, इसलिए वह भगवान शिव की भाँति अनगिनत धाराओं को अपने सिर पर वहन करने को विवश था।

अभी कठिनाई से उसने आधी गली पार की होगी कि उसे अचानक ऐसा लगा जैसे किसी ने निचुड़ता हुआ कोड़ा पूरे ज़ोर से उसकी गर्दन पर दे मारा हो। उसे एक 'शूँ' की आवाज़ सुनायी दी और अँधेरे में कोई भयानक-सी चीज़ उसकी ओर बढ़ी। वह उछला। उसका हृदय धक-धक करने लगा और पानी की एक गर्म-गर्म धारा उसे अपनी गर्दन से वक्ष की ओर बहती प्रतीत हुई।

जब वह गली के सिरे पर पहुँच गया तो उसने पीछे मुड़कर देखा। उसकी आँखें अन्धकार से अभ्यस्त हो चुकी थीं। तब उसे पता चला कि वह तो पड़ोस में रहने वाले प्रोफ़ेसर साहब की उद्दण्ड, मरकही गाय है, जिसकी गीली दुम उसके गले से बेतरह लिपट गयी थी।

वहीं गली के सिरे पर खड़े-खड़े उसने पहले प्रोफ़ेसर साहब, फिर उनकी गाय और फिर म्यूनिसिपल कमेटी को कोसा। फिर वह धीरे-धीरे चल पड़ा।

बाज़ार में गली की अपेक्षा अन्धकार कुछ कम था और यद्यपि वर्षा फिर होने लगी थी, पर बादलों की तह शायद हल्की हो गयी थी, डूबा हुआ चाँद उभर आया था और उसकी मध्यम-ज्योत्स्ना बादलों में से छनकर उस सूची-भेद्य अन्धकार को कम कर रही थी।

और वह चलता-चलता महान लेखक के कथनानुसार समय का लाभदायक उपयोग करने के विचार से मन-ही-मन उपन्यास के कथानक पर विचार करने लगा।

एस० पी० एस० के० हाल के पास पहुँचकर उसने देखा कि मोहन-लाल रोड और चंगड़ मुहल्ले का संगम प्रयाग का संगम बना हुआ है। उसके सामने पानी में डूबी हुई चंगड़ मुहल्ले की सड़क घूम गयी। यदि वह उधर से जायगा तो दीवान चन्द हलवाई की दुकान तक उसे पानी में चलना पड़ेगा और चंगड़ मुहल्ले के बाज़ार का पानी—ध्यान-मात्र ही से उसका जी मतलाने लगा। तब उसने सोचा कि वह 'वन्देमातरम प्रेस' के पास से होकर जाने वाली गली से घर जायगा। और वह उधर को चल पड़ा।

गली के आरम्भ मे नाली की छोटी-सी लोहे की पुली टूटी हुई थी और पानी बड़े वेग से बह रहा था। दस-बारह कदम चलने के बाद गली ऊँची थी। पैरों से टटोलता-टटोलता चेतन बढ़ा जा रहा था और अनजाने ही उस महान लेखक के कथन का भी पालन कर रहा था और उसके मस्तिष्क में उपन्यास का कथानक बन-सँवरकर अपना पूरा आकार पा रहा था कि उसे लगा जैसे उसके हाथ से कोई चीज़ फिसली जा रही है। कथानक के निर्माण में तल्लीन उसने उसे थामा भी, पर तभी नाली

में उसका पाँव फँस गया और वह चीज फिसलकर छप से पानी में गिर गयी।

वह चौंका। नाली बहुत गहरी न थी, इसलिए उसका पाँव टूटने से बच गया। पर यदि उसका पाँव टूट जाता तो शायद उसे इतना दुःख न होता, जितना उसे यह जानकर हुआ कि वह चीज उसके उपन्यास की कापी थी।

उसने बेतहाशा पानी में इधर-उधर हाथ मारा। पर फिर वह अपनी इस मूर्खता पर स्वयं ही हँसा—कापी यहाँ कहाँ? वह तो पानी के प्रवाह में मोहनलाल रोड के संगम तक चली गयी होगी—उसने सोचा और कुछ क्षण तक वहीं मूक-मर्माहत-सा भीगता खड़ा रहा। चारों ओर निबिड़ अन्धकार छाया था। वर्षा की रिमझिम, परनालों और बहते हुए पानी का शोर रात की निस्तब्धता भंग कर रहा था। एक ताँगा 'छप' 'छप' करता हुआ उसके पीछे से निकल गया। चेतन ने सोचा कि वह दूसरी सुबह आकर अपनी कापी ढूँढेगा, किन्तु चलते समय उसने फिर अनायास पैर से इधर-उधर टटोलकर देख लिया।

नाली को पार करके वह चुपचाप चलने लगा। यद्यपि उस महान लेखक ने कहा था कि चलते समय का उचित प्रयोग लाभदायक तौर पर सोचना है, किन्तु निरन्तर प्रयास करने पर भी वह इस अमूल्य कथन का पालन न कर सका। वह सोचता तो रहा, पर वह सब लाभदायक था, इसमें सन्देह है। जब वह घर पहुँचा तो उसका मन खिन्न, शरीर क्लान्त और पलकें भारी थीं। रह-रहकर उसके सामने वह मोटी कापी, उसके सुन्दर पृष्ठ, नीली-नीली लकीरें और उन पर बड़े यत्न से सुन्दर लेखनी में लिखे हुए उपन्यास के परिच्छेद घूम-घूम जाते। उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह उपन्यास वह फिर न लिख सकेगा—इतना संतोष वह कहाँ से लायेगा? यह सोचते-सोचते वह सीढ़ियाँ चढ़ गया और दरवाजे पर पहुँचकर उसने दस्तक दी।

सरदार जगदीश सिंह के नौकर ने (जो पार्टीशन के इस ओर बरामदे में सोता था) आकर दरवाज़ा खोला और कहा :

"बीबी जी आ गयी हैं।"

"बीबी जी ! कौन बीबी जी ?"

"आपकी बीबी !"

"माँ।"

"नहीं जी आपकी बीबी," नौकर ने तनिक हँसते हुए कहा।

तभी चन्दा ने आकर रसोई-घर का दरवाज़ा खोला। वह शायद अब तक जाग रही थी। उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। चेतन के मन में उल्लास की लहर दौड़ गयी और कापी के खो जाने का दुख निमिष-मात्र में हवा हो गया।

नौकर चला गया था। वहीं सीढ़ियों पर खड़े-खड़े वे कितनी देर तक बातें करते रहे। चन्दा ने उसे बताया कि उसका जी वहाँ ज़रा भी न लगता था। वह बहुतेरा हँसने, प्रसन्न रहने का प्रयास करती थी, पर उदासी अनायास ही उसके मन-प्राण पर छा जाती थी। माँ ने उसे बस्ती भेज दिया, पर वहाँ भी उसका मन न लगता था—रोने-रोनेको हुआ करता था। आखिर जब रणवीर लाहौर आने लगा तो माँ ने क्रुद्ध हो उसे उसके साथ चले जाने को कहा और वह चली आयी। "मुझे आपका डर था........" उसने कहना चाहा, किन्तु चेतन उसकी बात काटकर बोला, "बड़ा अच्छा किया, मेरा अपना मन बड़ा उदास है।"

और उसने चन्दा को कापी के खोने की घटना सुनायी।

चन्दा ने उसे सान्त्वना दी।

कुछ क्षण दोनों वहीं चुप खड़े रहे। फिर चन्दा ने कहा, "चलकर कपड़े बदल डालिए। सर्दी न लग जाय!" और वे दोनों रसोई-घर में आ गये। कमीज़ उतारकर चेतन ने खूँटी पर फेंक दी और बदन

पोंछकर तहमद बदल, वहीं रसोई-घर में एक बाल्टी को उलटकर उस पर बैठ गया। चन्दा उसके पास धरती पर बैठ गयी।

वहीं बैठे-बैठे चन्दा ने बताया कि माँ ने एक चिट्ठी भी दी है। और उसने अपने ब्लाउज़ से एक चिट्ठी निकालकर चेतन को दी। चेतन उस समय ज़रा भी चिट्ठी पढ़ने के मूड में न था। उसने अन्यमनस्कता से पत्र को पढ़ना आरम्भ किया—माँ ने चन्दा के व्यवहार की शिकायत की थी और ताने दिये थे—किन्तु चेतन ने दो-चार पंक्तियाँ पढ़कर ही पत्र को अलग रख दिया।

चन्दा आयी थी तो डरती थी कि कहीं इस प्रकार बिना पूछे चले आने पर चेतन गुस्सा न हो, पर उसके व्यवहार से उत्साह पाकर उसके पास बैठी-बैठी वह अनवरत बातें सुनाती चली गयी—सोहनी, केसरी, लक्ष्मी, पारो, शीला, करतारी—अपनी सभी सहेलियों की बातें........।

कई बार चेतन को इच्छा हुई कि वह चन्दा से नीला की बात भी पूछे, पर हर बार वह अपनी इस इच्छा को बरबस दबाकर रह गया।

सामने रसोई-घर की खिड़की से प्रातः का झुटपुटा दिखायी देने लगा था जब भाई साहब ने जगकर पार्टीशन के दूसरी ओर से लगभग पितृ-स्नेह से भरी आवाज़ में कहा :

"अब सो जाओ चेतन, दोपहर को तुम्हें फिर दफ़्तर जाना है।"

—०—

३०

समाचार-पत्र के दफ़्तर में काम करते हुए उसे साल भर होने को आया था, पर चेतन के स्वभाव में अभी तक लड़कपन कम न हुआ था।

भाई साहब ने कई बार उससे कहा, "चेतन तुम तो बिलकुल बच्चे हो!" वह उनसे लड़ने लगता। किन्तु जब कभी उसे अपनी ग़लती का पता चल जाता, वह हँस देता और कहता, "मैं बच्चा ही तो हूँ, शादी हो गयी तो क्या? मेरी उम्र ही अभी क्या है?" और कई बार वह हँसकर यह भी कहता, "भाई साहब मैं बच्चा ही बना रहना चाहता हूँ। बूढ़ा बनना मुझे पसन्द नहीं।" लेकिन बचपन में कितने भी लाभ क्यों न हों, हानि भी कम नहीं और एक बार अपने इसी बचपन के फल-स्वरूप वह और उसकी पत्नी बीमार पड़ गये।

बात कुछ भी न थी। चेतन सन्ध्या को दफ़्तर से आया था। उसे ज़ोर की भूख लगी हुई थी। भूख उसे जब भी लगती, वह कुछ न कर पाता। कई बार ऐसा भी होता की चन्दा उसके लिए अलग तरकारी छौंककर रख देती और कहती, "बस कुछ देर नहीं, आइए बैठिए, फुलका* अभी सेंके देती हूँ।" वह आकर रसोई-घर में बैठ जाता और रोटी सिंकते-सिंकते सब्ज़ी ख़त्म कर देता और चन्दा जब फिर उसके लिए सब्ज़ी छौंकती तो वह इस बीच में रूखा फुलका ही खा जाता।

कई बार ऐसा भी होता कि वह भूख के कारण कोई पुस्तक लेकर पढ़ने बैठता, पर पढ़ने में उसका मन न लगता और वह पुस्तक छोड़कर नीचे चला जाता और घूम-फिरकर मन को दूसरी ओर लगाता।

उस दिन जब भूख से बेकल होकर वह अपने मकान की सीढ़ियाँ उतरा तो उसने गोल बाग़ का एक चक्कर लगा आने की सोची। मोहनलाल रोड से निकलकर वह लोअर माल पर हो लिया और ज़िला कचहरी के पास से होता हुआ गोल बाग़ में एक पेड़ के साथ बनी हुई गोल बेंच पर जा बैठा।

उसे इतनी भूख लग रही थी कि वहाँ बैठना और किसी दूसरी बात के सम्बन्ध में सोचना उसे दुष्कर प्रतीत होने लगा। एक उदास-

---

*फुलका = छोटी रोटी

सी दृष्टि उसने अपने चारों ओर डाली—सन्ध्या का समय था और लोग बाग़ की सैर को निकल आये थे। दायें ओर के लान में दो एक काली मामाएँ लाल-लाल गोरे-गोरे बच्चों को खेला रही थीं। गोरे, गुलगोथने, गुबले-गुबले, बच्चे अपनी नीली-नीली आँखों, सफ़ेदी-मिश्रित हल्के भूरे बालों और अपनी स्वस्थ स्फूर्ति के कारण चेतन को बड़े भले मालूम हुआ करते थे और कई बार वह गोल बाग़ से गुज़रता हुआ उनका खेल देखने को रुक जाया करता था। पर उस अनमनेपन में वे उसे अत्यन्त घिनौने दिखायी दिये। उसे लगा जैसे उनके शरीर का प्रत्येक लोथड़ा और उनके रक्त का प्रत्येक कण अगनित काले बच्चों के मांस और रक्त से बना है। उसे लगा जैसे समस्त काला संसार मामा बना दिन रात गोरे संसार की सेवकाई कर रहा है और उसके मन में आयी कि वह उल्का बनकर इस गोरे संसार पर फट पड़े और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर, उस भूखे काले संसार को मुक्त कर दे।

विकलता से वह उठा। सामने टेनिस-कोर्ट में खेल शुरू हो गया था। अपने गोरे-गोरे शरीर पर श्वेत टेनिस-शर्ट और नेकर पहने एक सुन्दर स्वस्थ रमणी अपना कौशल दिखा रही थी। यद्यपि चेतन को टेनिस अथवा क्रिकेट के खेल बड़े प्रिय थे और स्वयं कभी न खेल सकने पर भी वह इन दोनों खेलों को देखने और उनके टूर्नामेंटों के विवरण पढ़ने में बड़ा आनन्द पाता था, पर उस समय टेनिस-कोर्ट उसे आकर्षित न कर सका। एक बार खेलने वालों की ओर अनमनी-सी दृष्टि डालकर वह घर की ओर चल पड़ा। उसे ऐसा लग रहा था जैसे गोल बाग़ में आये उसे बहुत देर हो गयी है, उसे चलना चाहिए; चन्दा खाना पकाकर बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। इस प्रतीति के साथ ही उसकी कल्पना के सम्मुख तरकारी से भरी कटोरियाँ और गर्म फूली-फूली रोटियों से भरी थाली घूम

गयी।........पर जब कचहरी तथा लॉ कॉलेज रोड की धूल फाँककर वह अपने घर पहुँचा और अतीव उत्सुकता के साथ उसने रसोई-घर में झाँका तो उसके बदन में आग लग गयी—चूल्हे के पास घुटनों में सिर दबाये चन्दा मज़े में बैठी आलू छील रही थी।

"तुम अभी आलू ही छील रही हो और मैं मील भर का चक्कर लगा आया हूँ।" उसने चीख़कर कहा, "खाना पकाना भी नहीं सिखाया किसी कम्बख़्त ने तुम्हें!"

न जाने चन्दा की तबीयत ख़राब थी अथवा उसने चेतन की आकृति पर प्रतिक्षण गहरे होते रोष की रेखाओं को नहीं देखा, इसलिए वहीं घुटनों पर सिर रखे आलू छीलते-छीलते उसने कहा, "खाना पकाना कोई खेल तो है नहीं, पका तो रही हूँ।"

चेतन का शरीर क्रोध से काँपने लगा। उसने बाँह पकड़कर अपनी पत्नी को उठाया और उसे लगभग घसीटता हुआ-सा बड़े कमरे में ले गया। वहाँ चारपाई पर उसे बैठा दिया और बोला, "यहाँ बैठो, देखो, कितनी जल्दी पकाता हूँ खाना!"

चन्दा रोने लगी थी। किन्तु उसकी ओर ध्यान दिये बिना, वह जैसे अंगारों पर चलता हुआ रसोई-घर में आया। आलू लगभग छीले जा चुके थे। उसने उन्हें काटकर धोया और चढ़ा दिया। फिर आटा साना और उसमें मुट्ठियाँ भरकर और पानी छिड़ककर उस पर कपड़ा रख दिया। फिर उसने तरकारी को देखा। अभी पकी न थी। तब कुछ क्षण वह घुटनों पर सिर रखे चुपचाप बैठा विष घोलता रहा।

वह सोचा करता था कि उसकी भावी पत्नी उसके घर को ऐसी ही सफ़ाई और सुघड़ता से रखेगी। उसका रसोई-घर इसी प्रकार धुला-धुलाया रहेगा और टोकरे में चुनकर रखे हुए चमकते-दमकते

बर्तन आँखों को ठण्डक पहुँचायेंगे।—उसे कभी घर की सफ़ाई न करनी पड़ेगी। वह चंचल, चपल, सुघड़ और सलीके वाली होगी। बिजली की गति से वह काम किया करेगी। जब वह सुबह-सुबह दफ़्तर जाया करेगा तो अपने कपड़े धुले-धुलाये पाया करेगा। न उसे पायजामे या शलवार में इज़ारबन्द † डालना पड़ेगा, न कमीज़ के बटन टाँकने पड़ेंगे और न ऐन चलते समय उधड़े-फटे कपड़े सीने पड़ेंगे। वह घर के समस्त झंझट अपनी पत्नी को सौंपकर निश्चिन्त हो जायगा और ऐसी मानसिक शान्ति पायगा, जिसमें महान रचनाओं की सृष्टि होती है। पर उसे मिली यह मोटी-मुटल्ली, निर्जीव, निष्प्राण-सी अकर्मण्य पत्नी, जिसकी हर बात का उसे स्वयं ध्यान रखना पड़ता था, जो घर को तो क्या साफ़-सुथरा रखती, स्वयं भी साफ़-सुथरी न रह सकती थी! एक दीर्घ-निश्वास उसके अन्तर की गहराइयों से निकल गया।

उसकी दृष्टि बर्तनों पर गयी। ज़रा भी चमक न थी उनमें। और जैसे क्रोध के दुगने वेग से वह उठा। सब बर्तन उठा-उठाकर उसने उन्हें नाली के 'खुरे'* पर रखा, मला, धोया और फिर टोकरे में चुना। खुरे पर सेरों कीचड़ जमा हुआ था। मन-ही-मन जलते हुए उसने उसे मल-मलकर साफ़ किया और क्रोध के उस वेग में सारे-के-सारे रसोई-घर को धो डाला। इस ओर से निबट, उसने आटे को एक बार फिर से गूँथ उसकी लोई बनाकर रख दी। तरकारी वह पहले ही उतार चुका था, तवा ऊपर रखकर उसने रोटियाँ सेंकी। फिर थाली परोसी और एक बार निखरे-धुले, साफ़-सुथरे रसोई-घर और चमकते-दमकते बर्तनों को देखकर गर्व से सीना फुला, वह बड़े कमरे में गया और किसी-न-किसी तरह हँसने की चेष्टा करते हुए उसने कहा,

---

† इज़ारबन्द = नारा = बँधना।

*खुरा = नरदवा = मोहड़ी = मोरी का चौतरा।

"चलिए श्रीमती जी भोजन तैयार है ! अब कृपा करके जीम लीजिए और देखिए कि इस बीच में किस प्रकार मैंने रसोई-घर का जीवन सुधार दिया है।"

किन्तु चन्दा वहीं-की-वहीं बैठी रही। न हिली, न डुली। उसने सिर्फ़ इतना कहा, "मुझे भूख नहीं !"

अपनी पत्नी की अपेक्षा अच्छे और सुचारु ढंग से सब काम कर लेने के गर्व ने चेतन के जिस क्रोध को दबा दिया था, यह बात सुनकर वह पूरे वेग से भड़क उठा। भारी-भारी पग धरता हुआ वह रसोई-घर में गया, परोसा हुआ खाना उसने ढक दिया और भूखा ही बाहर निकल गया।

तीन दिन तक दोनों तने रहे। न चन्दा ने खाना खाया, न चेतन ने। भाई साहब समझा-समझाकर हार गये। तीसरे दिन चेतन बीमार पड़ गया और चन्दा की तबीयत भी खराब हो गयी। भाई साहब ने माँ को तार दिया। वह आयी और दोनों को जालन्धर ले गयी।

—o—

३१

अपनी इस मूर्खता के बाद चेतन बीमार रहने लगा था। उसे ज्वर-सा रहता था। सिर में चक्कर आया करते और कमर में पीड़ा रहती। जब वह अपनी समझ से स्वस्थ होकर लाहौर आया था तो भी सर्दियाँ उसे छुट्टियाँ लेते ही बीती थीं। चार दिन अच्छा रहता तो छः दिन बीमार पड़ जाता। उसे अपने ऊपर जो अटल विश्वास था, उसके पाँव डगमगा गये थे।

उन्हीं दिनों उसकी भेंट कविराज रामदास से हो गयी।

कविराज रामदास यौन रोगों का उपचार करने वाले एक प्रसिद्ध वैद्य थे। कम-से-कम उनका नाम बहुत बड़ा था। यौन-सम्बन्धी विषयों में युवकों का पथ-प्रदर्शन करने के हेतु उन्होंने कई पुस्तकें लिखी थीं और ऐसे ढंग से लिखी थीं कि यदि अच्छा-भला युवक भी उन्हें पढ़ लेता तो अपने आपको बीमार समझने लगता और दूसरे ही दिन उनके दवाखाने जा पहुँचता।

चेतन ने भी उनमें से एक पुस्तक पढ़ी थी और भाई साहब की मनाही के होते भी वह कविराज से भेंट करने को उत्सुक था। वह तत्काल चला जाता, लेकिन उसने सुन रखा था कि पाँच रुपये तो केवल कविराज जी के परामर्श की फ़ीस है, दवाई के दाम अलग रहे। और पाँच रुपये तो दूर, वह पाँच आने व्यय करने में भी असमर्थ था।

उन्हीं दिनों उसने अपने एक मित्र से सुना कि कविराज साहित्यिकों का बड़ा आदर करते हैं। यह सुनकर उसके उल्लास का ठिकाना न रहा। उसने अपनी कहानियों का मसौदा लिया, तनिक-सा साहस बटोरा और उनके औषधालय में जा पहुँचा।

बात यह थी कि वह अपनी कहानियों का संग्रह छपवाना चाहता था और प्रकाशक उसे मिल न रहा था। "नाम बिकता है," उसने अपने एक पत्र में अनन्त को लिखा था, "नये लेखक को इस बात की आशा न करनी चाहिए कि साहित्य अथवा कला के नाम पर प्रकाशक उसकी पुस्तक छापकर उसका उत्साह बढ़ायेंगे। उनका साहित्य पैसा है और कला पैसा बटोरने की रीति। अधिकांश उनमें अपढ़ और कला से कोरे हैं। जिसका नाम बिकता है, उसी के पीछे भागते हैं।" और उसने सोचा था कि वह एक-दो पुस्तकें स्वयं छपवायेगा। प्रेस

का उसने प्रबन्ध कर लिया था, पर काग़ज़ के लिए उसके पास पैसे न थे। जब उसने सुना कि कविराज साहित्यिकों, विशेषतया नये साहित्यिकों की सहायता करते हैं तो वह साहस बटोरकर (अपने अध-चेतन मन में उनसे अपनी शारीरिक दुर्बलता के सम्बन्ध में परामर्श लेने की इच्छा को छिपाये) अपनी कहानियों का पुलंदा बग़ल में दबाये, उनके औषधालय की सीढ़ियाँ चढ़ गया।

जब सब रोगी परामर्श ले चुके और वह अन्दर गया तो उसे बैठने का भी साहस न हुआ। उसने तहमद और खादी की क़मीज़ पहन रखी थी। छाती का बटन टूटा होने के कारण बार-बार काज को काल्पनिक बटन से मिलाते हुए, खड़े-खड़े ही उसने अपना परिचय दिया। बताया कि वह एक उदीयमान कलाकार है। उसकी कहानियों का पहला संग्रह तैयार है, एक 'महान आलोचक' ने उसकी भूमिका लिखी है, उसने प्रेस का प्रबन्ध कर लिया है, पर काग़ज़ के लिए उसके पास पैसे नहीं। और झिझकते-झिझकते उसने अपना मन्तव्य प्रकट किया कि यदि वे किसी प्रकार काग़ज़ का प्रबन्ध कर दें तो वह साहित्य-क्षेत्र में चमकने का अवसर पा सके।

कविराज ने उसे बड़े प्यार से बैठाया, उसे प्रोत्साहन दिया और कहा, "मैं काग़ज़ का प्रबन्ध कर दूँगा, तुम चिन्ता न करो!" फिर बातों-बातों में उन्होंने उसे यह भी समझा दिया कि जीवन में सदैव अपनी सहायता आप करनी चाहिए। स्वावलम्बी के लिए किसी के आभार का बोझ सिर पर लेना उचित नहीं। "मन पर भार रह जाता है," उन्होंने कहा, "आदमी ऊँचा उठ जाता है, पर उसकी आँखें झुकी रहती हैं।" और चेतन को इस घोर-सङ्कट से बचाने के लिए उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि वे उससे रुपये वापस लेने के बदले उसी मूल्य की पुस्तकें ले लेंगे। "मैं अपनी नयी पत्रिका 'स्वास्थ्य' के ग्राहकों के लिए तुम्हारी पुस्तक पुरस्कार स्वरूप रख दूँगा," उन्होंने कहा, "जो

भी नया ग्राहक बनेगा, उसे तुम्हारी पुस्तक पुरस्कार-स्वरूप दी जायगी। तुम्हारी पुस्तक भी छप जायगी, उसे अधिक लोग पढ़ भी लेंगे और तुम्हारी दूसरी पुस्तक के लिए क्षेत्र भी बन जायगा।" और वे मूँछों में मुस्कराये।

"जी, जी !" चेतन ने प्रसन्न होकर कहा, "मैं छपते ही आप की सेवा में ले आऊँगा। इस समय आप कागज़ का प्रबन्ध कर दें।"

"वह सब हो जायगा, तुम इसकी चिन्ता न करो। खूब जी लगाकर लिखो।" फिर हँसते हुए उन्होंने कहा था, "पर अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखो, लगता है कि तुम इस ओर ध्यान नहीं देते।"

"जी....जी....!" और एक शर्मीली-सी हँसी के अतिरिक्त चेतन कुछ न कह सका था और दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता हुआ वहाँ से उठ आया था।

वह कविराज जी के औषाधालय से उतरा तो इतना प्रसन्न था जैसे उसे अचानक कोई निधि मिल गयी हो। आते ही उसने कहानी-संग्रह का मसौदा मेज़ पर फैलाया और उसमें एक और पृष्ठ बढ़ाकर समर्पण-स्वरूप लिखा :

"कविराज रामदास जी को
पहली ही भेंट पर जिनके प्रति मन
श्रद्धा से प्लावित हो उठता है।"

—o—

३२

कविराज जी ने न केवल कागज़ से उसकी सहायता करने का वचन

देकर चेतन का साहस बढ़ाया था, वरन् अपनी नयी पत्रिका 'स्वास्थ्य' के लिए उससे स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों पर लेख भी लिखवाये थे और साहित्यिकों की जो सरपरस्ती वे किया करते थे, उसका ज़िक्र करते हुए, उसे उन लेखों के पैसे भी दिये थे।

"अभी पत्रिका नयी है, इसलिए मैं तुम्हें चार आने प्रति पृष्ठ ही दूँगा," उन्होंने कहा था, "पर मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी पुस्तक की भाँति यह पत्रिका भी लाखों की संख्या में बिकेगी। तब तुम्हारा पुरस्कार भी चार आने से चार रुपये तक हो सकेगा।"

चेतन के उल्लास का वारापार न रहा था। एक पृष्ठ के चार आने तो दूर, उसे तो कभी पूरी-की-पूरी कहानी के चार आने न मिले थे।

वह स्वयं नये विषय चुनता और बारह-तेरह घण्टे दफ़्तर में काम करने के बाद घर पर लेख लिखता। इस तरह जो पैसे बनते वे अपने बड़े भाई को देता। भाई साहब की दुकान पर अब एक बड़ा भारी बोर्ड लग गया था। बाहर एक शीशे का और अन्दर प्लाईवुड का पार्टिशन शोभा देता था। वेटिंग-रूम का रूप निखर आया था और परछत्ती के ऊपर भी एक गहरे नीले रंग का पर्दा दिखायी देता था। उसके पीछे भाई साहब ने दोपहर को आराम करने की जगह बना ली थी।

किन्तु जिस इच्छा को लेकर वास्तव में चेतन कविराज से मिलने गया था, वह अभी तक उन पर प्रकट न कर सका था। उसके सिर में पीड़ा कुछ अधिक रहने लगी थी, कमर भी अधिक दुखती थी और चक्कर भी कुछ ज़्यादा आने लगे थे। आख़िर एक दिन झिझकते-झिझकते, उसने अपने स्वास्थ्य की चर्चा छेड़कर अपनी वह इच्छा भी प्रकट कर ही दी। अपने शारीरिक कष्ट की बात कहते हुए उसने कहा, "मैं कई बार आपसे निवेदन करना चाहता था कि यदि आप

भली-भाँति मेरा निरीक्षण कर मेरे लिए कोई औषधि बता दें तो बड़ी कृपा हो।"

कविराज ने एक बार उसके मुख की ओर देखा, निमिष भर सोचा और फिर हँसे। "तुम्हें औषधि की नहीं, आराम की ज़रूरत है," उन्होंने कहा, "दो-तीन महीने के लिए अपने थके हुए मस्तिष्क को विश्राम दो, सैर करो, आराम करो, व्यायाम करो और परहेज़ रखो, तुम ठीक हो जाओगे।" फिर उन्होंने जैसे अपने आपसे कहा था, "दैनिक पत्र का जीवन भी कोई जीवन है, इसमे पिसते हुए आदमी स्वस्थ रह भी कैसे सकता है। कुछ दिनों के लिए इससे छुटकारा पाओ।"

"मैं पहले ही बहुत छुट्टियाँ ले चुका हूँ।" चेतन ने विवशता से कहा, "मुझे दफ़्तर से जितनी छुट्टियाँ मिल सकती हैं, उनसे भी कहीं अधिक!"

"तुम कल आना," उन्होंने तनिक सोचकर कहा, "मैं कोई-न-कोई मार्ग निकालूँगा।"

दूसरे दिन जब वह उनके पास गया तो उन्होंने अपनी पत्नी का उल्लेख किया :

"मैंने बीबी जी से (उनका अभिप्राय अपनी सहधर्मिनी से था) तुम्हारे विषय में बात की थी। उनका हृदय बड़ा कोमल है। अपने पाँवों पर आप खड़े होने का प्रयास करने वाले तुम जैसे युवकों से उन्हें बड़ी सहानुभूति है। जब मैंने उन्हें बताया कि तुम दैनिक पत्र मे किस प्रकार दिन रात काम करके अपना जीवन-निर्वाह करते हो और किस प्रकार तुम्हारा स्वास्थ्य दिन-प्रति दिन गिर रहा है तो उन्होंने मुझसे कहा, "आप उसे अपने साथ शिमले क्यों नहीं ले चलते?"

और कविराज जी ने चेतन को बताया कि वे प्रति वर्ष ग्रीष्म-ऋतु में किसी-न-किसी पहाड़ पर जाया करते हैं। "स्वास्थ्य भी ठीक रहता है

और काम भी अधिक होता है," उन्होंने कहा, "मैं समय को व्यर्थ नष्ट करने के पक्ष में नहीं। धन अपने में कुछ महत्व नहीं रखता—समय ही सबसे बड़ा धन है। मैं सदैव पहाड़ पर जाकर काम करता हूँ और मेरी समस्त पुस्तकें किसी-न-किसी पहाड़ पर ही लिखी गयी हैं।

और उन्होंने बताया कि वे इस बार शिमले जा रहे हैं और चेतन चाहे तो उनके साथ चल सकता है।

"पर नौकरी........" चेतन ने कहना चाहा........

"जीवन होगा तो बीस नौकरियाँ मिल जायँगी।" वे उसकी बात काटकर बोले, "तुम्हें यहाँ कितने रुपये मिलते हैं?"

"चालीस!" चेतन ने कहा।

मैं तुम्हें पचास दे दूँगा, खाना वहाँ किसी होटल से खा लिया करना और मेरे यहाँ पड़े रहना। और तुम क्या चाहते हो?" फिर कुछ देर बाद उन्होंने कहा, "स्वास्थ्य से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं। दफ़्तर से तीन महीने की छुट्टी ले लेना। बाद में स्वास्थ्य अच्छा हुआ तो काम करना, नहीं तो सात-आठ महीने मेरे लड़के को पढ़ा देना। इस बीच में तुम्हें कोई-न-कोई नौकरी मिल जायगी।"

"पर छुट्टी........" चेतन ने कहना चाहा।

"इसकी चिन्ता तुम न करो, मैं तुम्हारे डायरेक्टर को चिट्ठी लिख दूँगा।"

"और काम........"

इस पर कविराज जी ने एक मीठा-सा ठहाका लगाया, "स्वास्थ्य बनाओ भाई, इससे बड़ा काम कौन-सा है? वहाँ तुम स्वास्थ्य बनाने के लिए जा रहे हो। यही तुम्हारे लिए सबसे बड़ा काम है, इतना तुम समझ लो।"

"पर मैं........"

हँसते हुए कविराज जी ने कहा, "भई, काम तुम कोई भी कर

लेना। यह तो बाद की बात है। तुम्हारा पहला काम तो अपना स्वास्थ्य बनाना है।" और फिर हँसते हुए उन्होंने कहा, "मैं शीघ्र ही शिमले के लिए चल दूँगा। मकान और दुकान का वहाँ प्रबन्ध हो चुका है। तुम तैयारी कर लो! काम तो होता ही रहेगा।"

चेतन इतना प्रसन्न हुआ कि आते ही उसने अनन्त को एक पत्र लिखा जिसमें उसने अपने सम्पादक और उन जैसे अगनित लोगों की नीचता का उल्लेख करते हुए कविराज की सहृदयता, करुणार्द्रता और दयाशीलता पर छोटा-मोटा निबन्ध लिख डाला :

> "मेरी भेंट सचमुच ही एक महान आत्मा से हुई है (उसने लिखा) कविराज रामदास का नाम तो तुमने सुना ही होगा। अरे वही जिन्होंने यौन-सम्बन्धी पुस्तकें लिखी हैं। आज तक हम उन्हें एक विज्ञापन-बाज़ वैद्य ही समझते आये हैं। उनके सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें भी सुनते आये हैं। पर मैं तो पहली भेंट में उनका भक्त हो गया। ऐसी सहृदय, महान, उदार आत्मा पायी है उन्होंने।"

न केवल यह, उसने कविराज की पत्नी से अपने अज्ञात परिचय का उल्लेख करते हुए उनकी प्रशंसा में एक 'क़सीदा'* लिख डाला और कविराज के भाग्य को सराहा जिन्हें उन ऐसी सदय और सहृदय पत्नी मिली थी।

रात को जब भाई साहब घर आये तो उसने बड़े उल्लास से उन्हें बताया कि वह शिमले जा रहा है। अपने दफ़्तर से छुट्टी ले लेगा, मज़े से शिमले की सैर करेगा, कहानियाँ लिखेगा, पहाड़ियों पर घूमेगा और खूब मोटा होकर आयेगा।

"पर तुम काम क्या करोगे?" भाई साहब ने ससन्देह पूछा।

---

* क़सीदा = प्रशंसात्मक कविता = प्रशंसा

"काम अभी तो उन्होंने कुछ बताया नहीं। बस इतना कहा है कि सैर करो, खाओ-पियो और स्वास्थ्य बनाओ!"

भाई साहब के मन में कई शंकाएँ उठी थीं, पर चेतन के पास उन्हें निवारण करने का समय न था। वह जाकर अपने सारे मित्रों को यह समाचार देना चाहता था कि वह गर्मियों में शिमला जा रहा है। इसलिए उनकी शंकाओं का समाधान किये बिना ही वह घर से निकल गया था। समय पर दफ़्तर पहुँचने की भी उसने चिन्ता नहीं की।

—o—

३३

जून का दूसरा सप्ताह अभी आरम्भ हुआ था, जब चेतन कविराज के क्लर्क जयदेव, उनके नौकर यादराम और उनकी पत्नी मन्नी के साथ शिमला पहुँचा। वह चला था तो उसका उल्लास अपने में समा न पाता था, पर शिमला पहुँचते-पहुँचते उसका उत्साह बहुत मन्द पड़ गया था।

चेतन के लिए शिमला की सैर विलायत की सैर से कम महत्वपूर्ण न थी। आग उगलती गर्मी में तेरह-तेरह घण्टे काम करने वाले उप-सम्पादक के लिए शिमला के प्रवास की कल्पना स्वप्न से कुछ कम नहीं।

जिस दिन कविराज ने उसे साथ ले चलने का वचन दिया था, उसी दिन से वह शिमला की तैयारियों में लग गया था। विवाह में आयी नर्म-गर्म रज़ाई-दुलाई उसके पास थी ही। किसी प्रकार जोड़-तोड़ करके खादी के दो पायजामे और दो क़मीज़ें उसने सिलवा ली थीं। कोट का उसके पास सर्वथा अभाव था, इसलिए उसने अपने पिता का वही पुराना सरकारी ओवरकोट (जिसे भाई साहब काफ़ी समय तक

पहन चुके थे) फ़िट करवा लिया था। नयी काट के होते भी वह किसी कबाड़ी की दुकान से खरीदा हुआ दिखायी देता था। इतने पर भी जब चेतन नये धुले कपड़ों पर उसे पहनता तो उसके लम्बे घुँघराले बालों और खुले गले के साथ वह उसे कुछ बुरा न लगता था।

कविराज, उनकी दयामयी पत्नी और उनके बच्चे इण्टर में बैठे थे और जयदेव, यादराम और मन्नी के साथ चेतन थर्ड में।

वह इतना प्रसन्न था कि डिब्बे में सोने के लिए यथेष्ट स्थान होने पर भी उसे नींद न आ रही थी। अमृतसर के स्टेशन पर उनके साथ जालन्धर का एक युवक आ बैठा। चेतन को पहचानकर उसने 'नमस्ते' की। चेतन उसे पहचान तो न पाया, पर जब उसे ज्ञात हुआ कि उनके मुहल्ले के निकट का ही रहने वाला है तो उसने बड़े गर्व-स्फीत स्वर में उसे बताया कि वह स्वास्थ्य बनाने के लिए शिमला जा रहा है और उससे यह प्रार्थना भी की कि यदि कष्ट न हो तो उनके घर जाकर वह चेतन की माँ और छोटे भाई नित्यानन्द को उसकी कुशल-क्षेम का समाचार अवश्य दे दे। "कहना," चेतन ने उससे कहा, "चेतन शिमला जाते हुए गाड़ी में मिला था। वह तीन-चार महीने वहाँ रहेगा और स्वास्थ्य ठीक होने पर लौटेगा।"

यह कहकर वह अपने उस जालन्धरी साथी के चेहरे पर ईर्षा-मिश्रित आदर का भाव टटोलने लगा।

कविराज कालका उतर गये थे। वे कार द्वारा शिमला पहुँच रहे थे। "तुम पहली बार शिमला जा रहे हो," उन्होंने कालका स्टेशन पर चेतन से कहा था, "शायद तुम्हें बहुत चक्कर आयें, इसलिए तुम गाड़ी ही से जाओ।" और उन्होंने जयदेव को आदेश दिया था कि वह चेतन के आराम का पूरा-पूरा ध्यान रखे।

उन्हें सपत्नीक मोटर में सवार कराके जयदेव, यादराम और उसकी पत्नी के साथ चेतन शिमला को जाने वाली डिबिया-सी गाड़ी में तीली की भाँति ठसकर जा बैठा था।

कालका से शिमले को जाने वाली इस गाड़ी के डिब्बे में बैठते हुए चेतन के मस्तिष्क में शिमला का चित्र और पहाड़ी रास्तों में चलने वाली इस गाड़ी की सैर का वृत्तांत घूम गया जो उसने अपनी स्कूली किताब में पढ़ा था और वह सदा जिसकी कल्पना किया करता था। मन-ही-मन उसने इस सैर का अवसर देने के लिए कविराज जी को धन्यवाद भी दिया।

किन्तु उसका यह उल्लास शीघ्र ही भंग हो गया और उसकी कृतज्ञता का वेग भी कम हो गया। डिब्बा यात्रियों से इतना भर गया कि उसके लिए सिर तक हिलाना कठिन हो गया। एक-दो बार उसने जयदेव की ओर करुणा भरी दृष्टि से देखा, किन्तु वह स्वयं इस प्रकार बैठा था कि उसके लिए गर्दन तक मोड़ना कठिन था।

'बड़ोग' तक पहुँचते-पहुँचते एक ही जगह बैठे-बैठे उसका शरीर अकड़ गया था। रात का जगा वह घुटने तक फैलाने को तरस गया। इतनी भीड़ थी कि उसका दम घुटने लगा और सिर में असह्य पीड़ा होने लगी। गाड़ी जब स्टेशन पर रुकी तो वह बड़ी कठिनाई से खिड़की से कूदकर बाहर निकल पाया।

बड़ोग के स्टेशन पर दुर्भाग्य से उसे कुछ भूख-सी लगी और उसने स्टेशन पर दो-चार कचौड़ियाँ खा लीं। इसके बाद जाकर जब वह बैठा और गाड़ी साँप की भाँति बल खाने लगी और दायें-बायें गिरमालाएँ बनने-मिटने लगीं तो उसका सिर चकराने लगा। तभी उसके साथ बैठी एक स्त्री ने बाहर को मुँह करके क़ै की। चेतन का अपना जी मतला उठा।........इसके बाद उसे इतना ही याद है कि

जब शिमले के स्टेशन पर जयदेव ने उसे कन्धे से हिलाया तो घुटनों में सिर रखे वह अचेत-सा पड़ा था।

'शिमला को जाओ तो बड़ा मज़ा आता है'—सड़क पर चलते-चलते स्कूल में पढ़े हुए उस लेख की याद आ जाने पर बेज़ारी से सिर हिलाकर चेतन ने एक 'ऊँह' की ! उसके माथे में अब भी पीड़ा थी और शरीर, लगता था, जैसे पत्थरों से पिस गया है। यादराम के झकझोरने पर जब वह गिरता-पड़ता स्टेशन के बाहर आया था तो उसने जैसे पहली बार उस धूप को देखा था जो बाहर पेड़, पौधों, सड़कों और मकानों पर खिली हुई थी। निखरी, धुली, चमकती, तेज़—पर जलाने वाली नहीं, शरीर को हल्की-हल्की गर्मी पहुँचाने वाली। किन्तु चेतन को कुछ भी अच्छा न लग रहा था—जयदेव ने सामान गिनवाकर कुलियों की पीठ पर लदवाया और खुश-खुश उनके पीछे चल पड़ा था। यादराम भी खुश था और छोटे-से घूँघट से मन्नी की मुस्कान भी दिखायी दे जाती थी—लेकिन चेतन को कोई भी चीज़ अच्छी न लग रही थी। घिसटता हुआ-सा वह उनके पीछे चला जा रहा था। उसे लगता था जैसे वह किसी विचित्र वीरान नगर में पहुँच गया है जिस पर किन्हीं अनजाने आक्रमणकारियों ने अधिकार जमा रखा है। अपने साथ चले आने वाले कुली उसे उस नगर के ऐसे वासी लग रहे थे, जो उन विजेताओं के दास बन गये थे और कठिन श्रम का दण्ड भोग रहे थे।

उनके शरीर पर मैले-कुचैले चीथड़े लिपटे हुए थे, जो मैल और पसीने से कपड़े के बदले कीचड़ ही के बने दिखायी देते थे। इतना-इतना भारी बोझा उठा रखा था उन्होंने कि चेतन आश्चर्यचकित-सा उन्हें देख रहा था। देर तक उसकी दृष्टि अपने साथ-साथ जाने वाले कुली पर लगी रही। उसके पाँव में धूल से भरे भारी चप्पल थे, टाँगें

घुटनों तक मैल से सनी हुई थीं, बाहों पर मछलियाँ उभर आयी थीं, पीठ पर सात ट्रंक एक साथ उठाये, लठिया के सहारे वह चला जा रहा था।

तभी एक रिक्शा छनछनाती हुई उसके पास से गुज़र गयी। चार वर्दीपोश कुली उसे भगाये लिये जा रहे थे और एक मोटा, गंजा अंग्रेज़ मज़े से उसमें बैठा समाचार-पत्र पढ़ रहा था। घोड़ों और बैलों के स्थान पर पुरुषों को जुते हुए चेतन ने पहली बार देखा था। बाद में उसे ज्ञात हुआ कि शिमले की माल पर मोटर, इक्का, ताँगा कुछ भी नहीं चल सकता। शिमले के प्रभुओं को आदमी की सवारी अधिक पसन्द है।

लोअर बाज़ार के इस सिरे पर कविराज जी ने अपने लिए औषधालय किराये पर ले रखा था। उस पर उनका बोर्ड उनके आने से पहले लग चुका था। कुछ सामान वहीं उतरवा दिया गया और यादराम को वहाँ ठहरने का आदेश देकर वे आगे बढ़े। पूछने पर चेतन को पता चला कि उनको 'रुल्दू भट्टा' जाना है, क्योंकि निवास के लिए कविराज जी ने मकान वहीं लिया है।

कुछ दूर चलकर वे बायीं ओर मुड़े। सामने एक सुरंग थी जो माल के नीचे-नीचे ईदगाह को जाती थी। उसमें प्रवेश करते ही पहली बार चेतन को अनुभव हुआ कि वह पहाड़ पर पहुँच गया है। ठण्डी भीगी हवा का एक झोंका आया और उसे लगा जैसे मन का सब ताप मिट गया हो। यद्यपि वर्षा ऋतु अभी आरम्भ न हुई थी तो भी पहाड़ में से रिस-रिसकर पानी सुरंग की अर्ध-गोलाकार दीवार को भिगो रहा था और अणु-परमाणुओं-सी नन्हीं-नन्हीं बूँदें हवा में उड़ रही थीं। बिजली के नन्हें-नन्हें बल्ब सुरंग में धूमिल प्रकाश की सृष्टि कर रहे थे और सुरंग के दूसरे दरवाज़े के अर्ध-गोलाकार प्रकाश में से आते हुए मनुष्य बड़े भले प्रतीत होते थे।

रुल्दू भट्टा ईदगाह के नीचे बीस-तीस घरों की एक छोटी-सी बस्ती है, जिसके निर्माण में ईंट-पत्थरों के स्थान पर लकड़ी ही से अधिक काम लिया गया है—लकड़ी की सीढ़ियाँ, लकड़ी के फ़र्श और लकड़ी की छतें।

कविराज ने मकान की दूसरी मंज़िल किराये पर ली थी। सीढ़ियाँ चढ़कर कुली ने सामान रख दिया। चेतन इस बीच में बिलकुल थक गया था। दीवार से पीठ लगाकर वह अपने बँधे बिस्तर पर बैठ गया। लकड़ी के फर्श पर उसने टाँगें पसार लीं और चुपचाप दूसरों को काम करते देखने लगा।

—o—

३४

शिमले के अपने इस निवास में, जहाँ दूसरी कई बातों के सम्बन्ध में चेतन की धारणाएँ बदलीं, वहाँ कविराज की महानता और कविराज-पत्नी की सहृदयता के सम्बन्ध में भी चेतन के विचार बदल गये।

इन तीन महीनों में उसने 'बीबी जी' की कुछ झाँकियाँ ही देखीं और उसे मालूम हो गया कि वे और चाहे जो हों, सहृदय और उदार कदापि नहीं।

बीबी जी की एक झलक उसने लाहौर और फिर कालका के प्लेट-फ़ार्म पर पायी थी। शिमले में कविराज जी के निवास-स्थान पर पहुँचकर जब वह हताश-सा अपने बँधे हुए बिस्तर पर बैठ गया तो उसने जैसे पहली बार आँख भरकर उन्हें देखा।

वे कुलियों से सामान उतरवाकर उसे ठीक जगह रखने की व्यवस्था कर रही थीं। पतला छरहरा शरीर, बत्तीस-पैंतीस वर्ष की आयु,

तीखे नक्श, तिकोन-से चेहरे पर सजती हुई लम्बी नाक, भरे-भरे गाल और गोरा रंग। चश्मा उनके मुख पर सजता था, किन्तु ढूँढ़ने पर भी चेतन को वह स्निग्धता और सौहार्द्र वहाँ दिखाई न दिया जो कविराज जी की बातें सुनकर, उसकी कल्पना ने, उनकी पत्नी की आकृति पर बना लिया था। उनका मस्तक चौड़ा था, किन्तु उस पर तेवर चढ़े हुए थे, भ्रू-भंग थे और ओठ जैसे भिंचे-से थे। पहले उसने समझा कि रास्ते की थकन और परेशानी ने उनके मस्तक पर वे लकीरें बना दी हैं, पर बाद के तीन महीनों में उसने सदैव उन्हें वहाँ पाया और उनके ओठ सदैव भिंचे रहे। चेतन की बड़ी इच्छा रही कि वह उन ओठों पर मुस्कान देखे, पर शिमले के अपने उस प्रवास में उसे वह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। तब उसने जान लिया कि वह सब मुस्कान तो कविराज जी के कथन में थी, उनकी पत्नी के ओठों पर नहीं। रही सहृदयता तो ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये चेतन को पता चलता गया कि वह सहृदयता भी कविराज के शब्दों ही में थी, उनकी पत्नी के हृदय में नहीं और न उनके अपने ही दिल में। उसे यह भी ज्ञात हो गया कि अपने से छोटों के प्रति उनकी पत्नी के हृदय में दया के स्थान पर सदैव एक तीव्र घृणा विराजमान रहती है, जिसे कविराज अपनी वाणी की मिठास में छिपाये रखते

शिमला पहुँचने के पहले दिन तो उसने उन्हीं के साथ खाना खाया और वहीं सोया भी, पर सुबह ही कविराज जी ने उसका बिस्तर दवाखाने पहुँचा दिया। "तुम्हारा मन यहाँ ऊब जायगा," उन्होंने कहा, "यह जगह बाज़ार से दूर है, फिर कुछ दिनों में ही बरसात आरम्भ हो जायगी, प्रतिदिन बाज़ार जाने में तुम्हें कष्ट होगा।" और उन्होंने उसे यह भी सुझा दिया कि शिमले में हर तरह के होटल हैं, जहाँ ७ रुपये से ५० रुपये मासिक तक पर खाना मिल सकता है।

औषधालय में सारी जगह का निरीक्षण करके उन्होंने उसके लिए एक कोना भी नियत कर दिया, जहाँ उसका बिस्तर रात को बिछाया और दिन को उठाया जा सके। इस ओर से निश्चिन्त होकर, मूँछों में हँसते हुए, उन्होंने कहा, "शिमले में तो आधे निवासी फ़र्श ही पर सोते हैं, चारपाइयाँ यहाँ बड़ी कठिनाई से मिलती हैं।" फिर उन्होंने अपनी मिसाल दी थी कि वे जब पहाड़ जाते हैं, सदैव धरती ही पर सोते हैं। धरती पर सोने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। स्वास्थ्य के लिए भी धरती पर सोना बड़ा हितकर है। इससे आदमी की शक्ति बढ़ती है और स्वावलम्बन की भावना पैदा होती है। फिर चेतन के ज्ञान में वृद्धि करते हुए उन्होंने यह भी बताया कि संसार में ७५ प्रतिशत महान् व्यक्ति उन्हीं लोगों में से उठे हैं, जो धरती पर सोने को बुरा नहीं समझते।

किन्तु एक सप्ताह बाद ही यह सब भूलकर वे उसे फिर घर ले गये और उन्होंने उसे एक चारपाई भी दे दी।

कदाचित् उन्होंने यह अनुभव किया कि जयदेव और यादराम की संगति तथा मिडिल बाज़ार का सामीप्य होने के कारण चेतन संतोषजनक रूप से काम नहीं कर पा रहा है। किसी औषधालय में रोगियों के बैठने का कमरा किसी लेखक के लिए उपयुक्त स्थान है भी तो नहीं। उसे दवाखाने गये एक सप्ताह हो गया था और उसने पुस्तक की एक पंक्ति भी न लिखी थी।

"यहाँ तुम्हें धरती पर सोना पड़ता है," उन्होंने एक दिन औषधालय में उससे कहा, "रात को बिस्तर बिछाना और सुबह उठाना एक मुसीबत है। तुम ठहरे लेखक! तुम्हें तो चाहिए कि बिस्तर बिछा रहे, पुस्तकें तुम्हारे आस-पास बिखरी रहें, सोते-जागते, उठते-बैठते, पढ़ने-लिखने की पूरी स्वतन्त्रता तुम्हें प्राप्त हो। घर में एक कमरा तुम्हारे लिए पृथक

कर दिया जायगा। चारपाई का मैं प्रबन्ध कर दूँगा। एकान्त होगा। तुम्हें अपनी पुस्तकें, अपने काग़ज़, अपनी चीज़ें रखने की पूरी सुविधा होगी। तुम अपनी इच्छा के अनुसार उठ-बैठ, लेट-सो सकोगे और फिर यहाँ नहाने के लिए भी कोई जगह नहीं। वहाँ सब प्रकार की सुविधा होगी।

रुल्दू भट्टे के मकान में कविराज जी ने उसे सीढ़ियों के पास वाला कमरा दे दिया।

दूसरे दिन कविराज जी औषधालय को जाने से पहले उसके कमरे में आये। मूँछों में मुस्कराते हुए उन्होंने कमरे की सजावट पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डाली, उसकी प्रशंसा की और बोले, "यह कमरा सिर्फ़ तुम्हारा है, तुम इसमें पढ़ो-लिखो, सोओ-जागो, मालिश अथवा व्यायाम करो, तुम्हें किसी प्रकार की रोक नहीं। अन्य किसी प्रकार का कष्ट यदि हो तो मुझसे कह देना।" फिर रुककर उन्होंने पूछा, "रात को दूध आदि तो नहीं पीते तुम?"

"मैं रात को डेढ़ पाव दूध पीता हूँ।"

"तुम्हें कम-से-कम आध सेर पीना चाहिए।"

"डेढ़ पाव पीने का स्वभाव भी मैंने बड़ी मुश्किल से डाला है।"

इस पर कविराज हँसे, फिर उन्होंने दूध के गुणों पर एक छोटा-सा भाषण दिया और कहा, "यादराम की पत्नी तुम्हारे लिए दूध अँगीठी पर रख दिया करेगी। तुम सोते समय पी लिया करना।" यह चेतावनी उन्होंने उसे दे दी कि वह दस बजे तक घर पहुँच जाया करे, क्योंकि दस बजे सब सो जाते हैं और इसके बाद यदि कोई आये तो बीबी जी बुरा मानती हैं।

कविराज यह कहकर मूँछों में मुस्कराते हुए चले गये, पर चेतन को शीघ्र ही पता चल गया कि बीबी जी केवल दस बजे के बाद आने का ही बुरा नहीं मानतीं और भी बीसियों बातों का बुरा

मानती हैं।

चेतन के वहाँ फिर लौट आने ही को उन्होंने ऐसी टेढ़ी दृष्टि से देखा कि दूसरी सुबह शौचादि के लिए उसे अन्दर के शौचालय में जाने का साहस नहीं हुआ। मन्नी ने उसे बता दिया कि नीचे घाटी में शौचालय बने हुए हैं और वह निश्चिन्त होकर वहाँ निवृत्त हो सकता है। चेतन मन्नी से पानी का लोटा लेकर वहीं निमट आया। नहाने के लिए भी उसने अन्दर स्नान-गृह में जाने का प्रस्ताव नहीं किया। चुपचाप लोटा और बाल्टी लेकर वह रुल्दू भट्टे के नल पर चला गया, जो ऊपर माल को जाने वाले मार्ग के एक किनारे बना हुआ था।

उसके आराम का इतना ध्यान रखने वाले कविराज जी को शायद इसमें कोई विषमता नहीं दिखायी दी। वह नहा रहा था जब वे औषधालय को जाते हुए वहाँ से गुज़रे। उसे सड़क के किनारे नहाते देखकर उन्होंने पूछा, "अच्छा, यहाँ नहा रहे हो?"

"मुझे खुले में स्नान करना भाता है," चेतन ने अपनी हीनता को गर्व का विषय बनाकर कहा।

"तुम बड़े साहसी हो!" कविराज हँसकर बोले और फिर अपने रास्ते चले गये।

और जब बरसात की हवाएँ अपने परिपार्श्व में काले-कजरारे मेघों को लिये हुए आयीं, दिन-रात पानी बरसने लगा और सख्त सर्दी पड़ने लगी, तब भी चेतन साहसी बना रहा! उसी बेछत की, नौकरों वाली टट्टी में शौचादि के लिए जाता रहा और वहीं सड़क के किनारे नल पर नहाता रहा।

कविराज प्रतिदिन गर्म पानी से स्नान करके, सर्दी होने के कारण ओवरकोट पहने, हाथों पर दस्ताने चढ़ाये, छड़ी हाथ में लिये रोज़ उसके पास से निकलते, कई बार अपने मित्रों में उसके साहस का बखान भी किया करते, किन्तु अपने निजी स्नान-गृह के समीप उन्होंने

या यों कह लीजिए कि उनकी सहृदय-पत्नी ने उसे एक दिन के लिए भी फटकने न दिया। यह और बात है कि एक दिन उनके पड़ोसी ने दयाभाव से चेतन को अपने स्नान-गृह में नहाने की आज्ञा दे दी और चेतन ने शीत में खुले नल पर ठिठुरते नहाने के कष्ट से मुक्ति पायी।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, उसे पता चलता गया कि वह तो उसी प्रकार कविराज का नौकर है जिस प्रकार जयदेव अथवा यादराम, कि कविराज दूसरे बीसियों शोषकों की भाँति एक शोषक हैं कि वे उसे शिमले केवल वह पुस्तक लिखवाने के विचार से लाये हैं। उसे इस बात का भी पता चल गया कि पहले भी एक-दो कलाकारों का स्वास्थ्य वे इसी प्रकार सुधार चुके और इस पुण्य का फल वे पुस्तकें हैं जो सहस्रों की संख्या में उनके नाम से बिक रही हैं।

शिमला चलने से पहले कविराज जी ने बड़ी चतुराई से उसे अपने लिए पुस्तक लिखने को राज़ी कर लिया था। हुआ यों कि जब कविराज जी ने उससे कहा कि वह उनके साथ चले, आराम करे, स्वास्थ्य बनाये, वे उसे ख़र्च-पानी के लिए पचास रुपये मासिक भी देंगे तो चेतन ने कविराज जी से कहा कि वे उसे कोई-न-कोई काम अवश्य बता दें। उसके स्वाभिमान को यह स्वीकार नहीं कि वह उसके सिर पर बोझ बनकर जाय।

उसके मन में स्वयं ही वह बात उत्पन्न हुई थी अथवा कविराज के जीवन की घटनाएँ सुनकर उसे अपने स्वाभिमान का ध्यान हो आया था, इसका ठीक-ठाक निश्चय तो नहीं किया जा सकता, पर शिमला ले चलने का प्रस्ताव सुनकर और यह जानकर कि उसे यहाँ काम अधिक न करना होगा, उसने कृतज्ञता का भाव प्रकट किया था तो कविराज जी ने बातों-बातों में अपने जीवन के आरम्भिक संघर्ष की एक घटना उसे सुनायी थी—"मेरे एक मित्र ने मेरी आर्थिक सहायता की थी,"

उन्होंने कहा, "पर उस समय मैं उनके रुपये वापस न दे सकता था, इसलिए मैंने साल भर तक किसी प्रकार का शुल्क लिये बिना उनके बच्चों को पढ़ाया।" वे अपनी रौ में इसी प्रकार की कई घटनाएँ सुना गये, जब अपने सहायकों से जो कुछ उन्होंने पाया, उससे कहीं अधिक उन्हें दिया। चेतन यद्यपि पहले भी इस बात पर ज़ोर देता था कि उसे काम बता दिया जाय, पर यह सब सुनकर उसने बिना काम जाने, उनके साथ जाने से इन्कार कर दिया था।

तब कविराज जी ने, जैसे विवश होकर, उसे बताया था कि उनका विचार बच्चों के जन्म-मरन और लालन-पालन के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखने का है। उन्होंने उसे अमरीका की एक पत्रिका भी दिखायी थी और कहा था कि वह पंजाब पब्लिक-लाइब्रेरी में जाकर देख ले। यदि इस विषय पर कुछ पुस्तकें मिल जायँ तो वे तत्काल लाइब्रेरी के सदस्य बन जायँगे। चेतन उनकी बात समझ गया था और उनकी सहृदयता का बदला देने के लिए उसने मन-ही-मन इस विषय पर उन्हें एक बड़ी अच्छी पुस्तक लिख देने का निश्चय भी कर लिया था।

बातों-बातों में कविराज जी ने उसे समझा दिया था कि पुस्तक उनके नाम से छपेगी। उसमें बच्चों की समस्त व्याधियों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक ज्ञान संकलित होगा और पाठकों को परामर्श दिया जायगा कि पेचीदगी हो तो तत्काल किसी प्रसिद्ध वैद्य या डाक्टर से परामर्श किया जाय।

चेतन पंजाब पब्लिक-लाइब्रेरी से आठ पुस्तकें चुन लाया था। उन सबको पढ़कर उसने पुस्तक के पहले परिच्छेदों का खाका तैयार किया था और पुस्तक लिखने लगा था।

प्रतिदिन दुकान को जाने से पहले हँसकर वे उसके काम का

ब्योरा ले लेते—पूछ लेते कि उसने कौन-सा नया अध्याय लिखा है, वह कौन-सा नया अध्याय लिख रहा है या फिर आगामी अध्याय में वह क्या लिखना चाहता है ? चेतन ने कुछ लिखा होता तो पास बैठकर उसे सुनते । न लिखा होता तो पूछते कि उसकी तबीयत तो ठीक है, वह सैर तो कर रहा है और हँसकर कहते, "कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, आज का दिन आराम कर लो, कल दुगना लिख लोगे ।" और उसी प्रकार मूँछों में हँसते हुए चले जाते ।

एक बार उन्हें कुछ ऐसा लगा कि चेतन उनके अनुमान के अनुसार पूरा काम नहीं कर रहा । तब हँसी-हँसी में उन्होंने उसे जता भी दिया ।

वह दोपहर को खाना खाने मिडिल बाज़ार जाया करता था और साधारणतः घण्टे भर में वापस आ जाता था । उस दिन उसे देर हो गयी । वह खाना खाकर ऊपर से आ रहा था, जब कविराज भोजन और आराम के उपरान्त औषधालय को जाते हुए उसे मार्ग में मिल गये और उन्होंने हँसते हुए पंजाबी में कहा, "घोड़िया, तू कम्म कुझ ज़्यादह नहीं कर रिहा ।"*

यद्यपि 'घोड़ा' उनके प्यार का शब्द था, पर रात को जब चेतन लेटा तो उसे नींद न आयी । प्रत्येक घटना अपने यथार्थ रूप में उसके सामने आने लगी । उसने अनुभव किया—वह, जयदेव, यादराम सब घोड़े ही तो हैं । कविराज की ख्याति की गाड़ी में जुते हुए हैं । यह अनुभूति जैसे एक तीर की भाँति उसके हृदय को भेदती हुई चली गयी । ये इतने क्लर्क, मजदूर, किसान—ये सब घोड़े हैं, विभिन्न गाड़ियों में जुते हुए घोड़े ! अपने आराम और सुख की परवाह किये बिना, पसीने से तर, थकन से चूर, दिन-रात काम किये जाते हैं । इसलिए कि उनके प्रभु सफलता की गाड़ियों में बैठे अपने ध्येय तक पहुँच

*अरे घोड़े, तू कुछ ज़्यादा काम नहीं कर रहा ।

जायँ। बदले में उनको मिलता क्या है? रूखा-सूखा दाना-पानी और बस! उसे पचास रुपये मिल रहे हैं। शिमले जैसे महँगे नगर में पचास रुपये! 'घोड़ा'—एक तीव्र व्यंग्य तथा पीड़ा से वह मन-ही-मन हँसा—'तो वह कविराज को सफलता और ख्याति की गाड़ी में जुता हुआ केवल एक घोड़ा है—उसने सोचा—उसे बड़ी चतुराई से उस में जोता गया है। वह जो पुस्तक लिखेगा, उस पर कविराज का नाम होगा। उनके बाद उनके पुत्र, पौत्र और चाहें तो पर-पौत्र तक उससे लाभ उठायेंगे और वह स्वयं क्या पायगा? ५० रु० प्रति मास के हिसाब से ३ महीनों के केवल डेढ़ सौ रुपये, जिनका अधिकांश वह शिमले ही में खर्च कर जायगा। फिर जिस प्रकार एक घोड़े के अयोग्य होने पर अथवा उसकी आवश्यकता पूरी हो जाने पर उसे हटा दिया जाता है, उसे भी हटा दिया जायगा'........और वह इस भ्रम में था कि उसकी कला से प्रभावित होकर कविराज या उनकी सहृदय पत्नी, उस दैनिक पत्र की चक्की से उसकी रक्षा करने के हेतु, उसे शिमला ले आये हैं—अपने घर का-सा एक व्यक्ति समझकर।........घर का-सा........वह फिर उसी व्यंग्य और पीड़ा से मुस्कराया।........उसने निमिष मात्र को भी न सोचा था कि उसकी स्थिति जयदेव अथवा यादराम से तनिक भी भिन्न न होगी।

तभी एक अदम्य विद्रोह उसके रोम-रोम में भभक उठा। न जाने उससे पहले कौन उनकी सफलता की गाड़ी का घोड़ा बना होगा? उसे यह स्थिति स्वीकार नहीं। वह रस्सी तुड़ाकर भाग जायगा। यदि वह घोड़ा ही है तो किसी की गाड़ी में जुतने की अपेक्षा स्वच्छन्द विचरण करेगा।

दूसरी सुबह जब सदा की भाँति वही व्यावहारिक, मशीनी-सी मुस्कान मूँछों पर लिये हुए कविराज उसके कमरे में आये और उन्होंने हँसते हुए पूछा कि उसने पुस्तक का कोई नया परिच्छेद लिखा है? तो उसने

सब कागज़-पत्र उठाकर उनके सामने रख दिये और कहा, "मुझे छुट्टी दीजिए!" आवेश में वह केवल इतना और कह सका था, "मैं समझता था कि मैं यहाँ स्वास्थ्य बनाने के लिए आया हूँ, पर अब मुझे अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो गया है।"

निमिष मात्र के लिए मुस्कान कविराज के ओठों से विलीन हो गयी। फिर तत्काल उसी मुस्कान को तनिक और फैलाकर उन्होंने कहा, "तो भाई ठीक तो है, तुम स्वास्थ्य बनाने ही के लिए तो आये हो। खूब मालिश करो, व्यायाम करो, सैर को जाओ। तुम्हें रोकता कौन है? रहा काम, सो भाई वह तो तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। वह अनिवार्य नहीं। करो, चाहे न करो। यदि तुम यहाँ से अपने स्वास्थ्य को कुछ भी ठीक करके लौटे तो मेरा तुम्हें यहाँ लाना सफल हो जायेगा।"

वे छड़ी घुमाते हुए चले गये और चेतन उस घायल सर्प की भाँति फुफकारता और अन्दर-ही-अन्दर विष घोलता-सा बैठा रहा जो चोट खाकर झपटा तो हो, किन्तु जिसका वार एकदम खाली गया हो।

—o—

३५

सारा दिन चेतन खिन्न-मन-सा बिस्तर पर पड़ा करवटें बदलता रहा। उसकी आँखों पर से सहसा एक पर्दा हट गया था और जो कुछ उसे दिखायी दिया था, वह उसके सदा आदर्श की दुनिया में बसने वाले मन के लिए अत्यन्त वीभत्स था। उसे अपनी स्थिति की यथार्थता का आभास हो गया था और यह कटु आभास उसके मन-प्राण को एक विचित्र-सी क्लान्ति, एक अजीब से विषाद से भर रहा था। आज तक उसके शिशु-हृदय ने दुनिया का पाउडर और रूज़ से ढका हुआ सुन्दर मुख ही देखा था। उसकी वास्तविक कुरूपता देखकर

उसका मन खिन्न हो उठा। ऐसी कुरूपता भी कहीं है, वह इस बात में विश्वास न करना चाहता था, किन्तु वह जैसे कई गुना होकर उसके सरल हृदय पर अंकित हो रही थी।

वह शोषित है और कविराज शोषक, इस अनुभूति ने चेतन को झकझोर डाला था। वह चाहता था इस पर विश्वास न करे, पर यह विश्वास जैसे आप से आप उसे हुआ जा रहा। इसे रोकने में वह सर्वथा अशक्त था। उसे लग रहा था जैसे उसके हृदय के चिरनिर्मित दृढ़ दुर्ग की एक दीवार यथार्थता की बहिया के प्रबल वेग से बही जा रही है।

'मुझे क्या हो गया है ?' बार-बार यह प्रश्न उसके सामने आता, पर पीड़ा इतनी अज्ञात थी कि उसका केन्द्र ढूँढ़ पाना उसके लिए कठिन था।

जब वह सोचता तो पाता कि जीवन की कटुता से यह उसका पहला ही साक्षातकार नहीं! वह तो जीवन की कटुता ही में उत्पन्न होकर पला और युवा हुआ। यद्यपि अपने जन्म के सम्बन्ध में उसे कुछ अधिक ज्ञात न था, पर उसने माँ से सुना था कि उनके पुराने खण्डहर से मकान में बरसात की एक रात उसका जन्म हुआ था। निरन्तर कई दिन से पानी बरस रहा था, उनका मकान कई जगह से टप-टप चू रहा था और कच्चे फ़र्श पर गढ़े बन गये थे। परदादी गंगादेई कई बार वर्षा के कोप को शान्त करने के लिए जले हुए कोयले आँगन में फेंक चुकी थी, और वे (माँ और परदादी) मकान के गिर जाने के भय से रात-रात भर जागती रहती थीं। धाय को देने के लिए घर में पैसे न थे। परदादी कहीं से (धर्म शान्ति अथवा शुद्ध में) आये हुए बर्तन बेचकर कुछ रुपये जुटा लायी थी और प्रसव के पश्चात् माँ को सोंठ और गुड़ मिले संठोले के अतिरिक्त पँजीरी अथवा अछवानी आदि शक्तिवर्द्धक कोई भी चीज़ न मिली थी। वह तो पूरे चालीस दिन आराम भी न कर पायी थी। परदादी अपनी अन्धी आखों से चूल्हा

झोंकती थी और दो-तीन बार जलते-जलते बची थी, इसलिए ग्यारहवें दिन का स्नान करके ही माँ घर के काम में जुट गयी थी।

चिन्ता, भय, पुष्टिकारक भोजन के अभाव और काम के आधिक्य के कारण माँ का दूध शीघ्र ही सूख गया था और वह चेतन को छै महीने भी अपने स्तनों का दूध न पिला सकी थी। उसके लिए वह बकरी का दूध लेती, पर न जाने क्यों, चेतन को बकरी के दूध से घृणा थी। बकरी ही का नहीं, गाय का हो अथवा भैंस का, उसे सब प्रकार के उपरे दूध से घृणा थी। माँ की छातियों से दूध पीने के लिए वह लालायित रहा करता। न पाने पर रोता, पिटता, पिटने पर और अधिक रोता, यहाँ तक कि उसकी परदादी ने उसका नाम चेतन के बदले चिनकदास रख दिया था।

चेतन को बचपन ही में अपने वातावरण की कटुता का आभास मिल गया था। एक दिन जब वह दूध न पी रहा था और माँ भरी कटोरी हाथ में लिये उसे मना रही थी कि उसके पिता आ गये। एक बार प्यार से, दूसरी बार तनिक कर्कश स्वर में और तीसरी बार गरजकर उन्होंने उसे दूध पीने को कहा। जब इस पर भी उसने कटोरी को मुँह न लगाया तो धड़ से दो थप्पड़ चेतन के पिता ने उसके गालों पर जड़ दिये और क्रोध के आवेश में उसे टाँग से पकड़कर उलटा लटका दिया। वे उसे इसी प्रकार पकड़कर दो-एक चक्कर देते, यदि माँ लगभग रोते हुए इतना न कहती, "लाइए, अब पी लेगा।"

पिता ने उसे फिर सीधा खड़ा कर दिया। उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। चेतन रोया न था। वह सहम गया था। जब माँ ने कटोरी उसके मुँह से लगायी तो उसने बरबस विष के घूँट की भाँति दूध पी लिया, पर दूसरे ही क्षण उसे कै हो गयी। तब उसका मुँह धुलाते हुए, उसकी पीठ पर अतीव दुख से हल्का-सा थपेड़ा जमाते हुए, माँ ने आर्द्र कण्ठ से कहा था, "जा कम्बख़्त ! तेरे भाग्य में दूध

है ही नहीं।"

यह हल्का-सा थपेड़ा जैसे अपने में एक प्रबल प्रचालन-शक्ति रखता था। उसे आगे ही धकेले जाता था। पीठ पर माँ का थपेड़ा खाकर वह चला तो उसने पीछे फिरकर न देखा था। वह धीरे-धीरे आगे ही बढ़ता गया। उस क्रूर पिता के नैकट्य से दूर होता गया।

सारा दिन वह निरर्थक, निरुद्देश्य इधर-उधर भटकता रहा। गालों से लेकर कनपटियों तक उसे सारी जगह सुलगती हुई प्रतीत होती थी। किन्तु वाह्य पीड़ा के अतिरिक्त उसके नन्हें, अपरिपक्व अन्तर के किसी अज्ञात स्तर में भी कुछ-न-कुछ सुलग रहा था—बिलकुल उसी तरह, जैसे अब अपने उस कमरे में बैठे, उसके अन्तर में कहीं कुछ सुलग रहा था और वह उस स्थान को निर्दिष्ट न कर पा रहा था।

वह पिटते समय रोया था, पर ज्योंही आँगन से बाहर हुआ था, उसकी आँखों से अनायास अविरल आँसू बहने लगे थे। दिनभर ऐसा होता रहा था। जब-जब वह अपना हाथ अपने सुलगते गालों पर ले जाता, उसकी आँखों में आँसू आ जाते।

पिटे हुए पिल्ले-सा वह सारा दिन इधर-से-उधर दुबका फिरता रहा था। दोपहर भर भुस की कोठरी में पड़ा रोता रहा था और साँझ समय जब माँ को उसकी याद आयी थी तो वह पानी वाले के सूने क्वार्टर में पीढ़े पर भूखा सोया पड़ा था।

बाहर वर्षा हो रही थी और चेतन अपने कमरे में चुपचाप बिस्तर पर लेटा हुआ था। अपने बचपन की इस घटना की याद आने पर उसकी आँखें भर आयीं। अनायास उसका हाथ अपने गाल पर चला गया। धीरे-धीरे वह उसे सहलाता रहा। वहीं लेटे-लेटे, गाल को सहलाते-सहलाते, उसके सामने अपने पिता की क्रूर आकृति घूम गयी

और फिर बचपन की वे समस्त घटनाएँ, जब वह अपने उस क्रूर पिता के हाथों बुरी तरह पिटा था।

वह पाँच वर्ष का रहा होगा, जब उसके पिता 'सैला खुर्द' स्टेशन पर नये-नये नियुक्त हुए थे। तब उन्होंने उसे अंग्रेज़ी सिखाना आरम्भ किया था। उन्हें विश्वास था कि छः महीने ही में अपने विशेष ढंग से शिक्षा देकर वे चेतन को मैट्रिक में पढ़ने वालों के बराबर ले जायँगे। गाड़ी के स्टेशन से चले जाने के बाद वे घर आ जाते और चेतन को अपने उस विशेष ढंग के अनुसार पढ़ाने का प्रयत्न करते।

सबसे पहले उन्होंने चेतन को गीता के कुछ श्लोक रटाये "नैनम् छिन्दन्ति शस्त्राणि"....आदि आदि। और जब चेतन ने उन श्लोकों को कण्ठस्थ करने में असाधारण मेधा का परिचय दिया तो चेतन के पिता ने उसे सिर, नाक, आँख, कान, मुँह, टाँग, पैर आदि शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों की अँग्रेज़ी बतायी। इसके बाद उन्होंने उसे कुछ अँग्रेज़ी शब्दों के हिज्जे* सिखाने शुरू किये। धीरे-धीरे वे उसे ऐसे शब्दों की अक्षर-रचना पर ले आये जिनमें कुछ अक्षर लिखे तो जाते हैं पर बोले नहीं जाते जैसे white, write, night, might आदि। पिता ने उसे जितने शब्दो और जितने हिज्जे बताये, चेतन ने उन्हें तत्काल रट लिया। पंडित शादीराम ने घोषणा की कि बड़ा होकर वह अवश्य डिप्टी कमिश्नर बनेगा। और शब्दो के बाद वे उसे वाक्य सिखाने लगे।

जब गाड़ी स्टेशन पर आती तो वे अपने इस मेधावी पुत्र को बुला लेते और बड़े गर्व-स्फीत स्वर में गार्डों के सामने उससे अँग्रेज़ी के वाक्य पूछते। जब वह ठीक-ठीक बता देता और गार्ड आश्चर्य-चकित से उस नन्हें से बालक की ओर तकते रह जाते तो चेतन के पिता उसे उठाकर

* हिज्जे = वर्ण या अक्षर-रचना।

चूम लेते। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें, पतली पैनी दूब की भाँति चेतन के कोमल गालों में चुभ जातीं, उसका साँवला रंग और भी साँवला हो जाता और जब पिता उसे नीचे उतारते तो वह भाग जाता और माँ को जाकर अपनी सारी कारगुज़ारी सुनाता। सुनते-सुनते माँ के ओठों पर गर्वीली मुस्कान आ जाती, फिर सहसा वह मुस्कान विषाद की गहरी रेखाओं में परिणत हो जाती। माँ चुपचाप शून्य में देखने लगती और विषाद-रेखाएँ उसके ओठों से फैलकर उसके सारे मुख-मण्डल पर छा जातीं।

तभी एक दिन पण्डित शादीराम ने चेतन को उस समय बुलाया जब गाड़ी जा चुकी थी। बात यह थी कि उनका एक मित्र दसवीं श्रेणी में पढ़ने वाले अपने लड़के के साथ 'राहों' जा रहा था। चेतन के पिता ने उसे गाड़ी से उतार लिया था और खाना खाने का निमन्त्रण भी दे दिया था और देशी शराब का एक अद्धा भी ठेके से लाने के लिए पानी वाले को भेज दिया था। चेतन जब पहुँचा तो उसके पिता ने पहले बड़े अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में उसकी स्मरण-शक्ति और उसकी बुद्धि के चमत्कार का उल्लेख किया और फिर उन्होंने अचानक अपने उस मित्र के लड़के से दो-चार शब्दों के हिज्जे पूछे। कुछ उनकी सूरत, कुछ उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें, कुछ उनकी लाल-लाल आँखें, कुछ उनके स्वर की कर्कशता—उस बच्चे ने कई बार उनकी ओर देखा, पर कुछ उत्तर देने के बदले सहमा-सा चुप बना रहा। तब जैसे विजेता के उल्लास से उन्होंने चेतन की ओर देखा और मूँछों को बल देते हुए कहा, "इधर आओ!" मन-ही-मन वह तनिक डर गया, पर प्रकट साहस बनाये हुए पिता के निकट चला गया।

तभी पानी वाला शराब की बोतल ले आया। बोतल को देखते ही चेतन के पिता की आँखों में लाली के डोरे कुछ और गहरे हो गये और उनमें एक पाशविक-सी चमक झलक उठी। कार्क को खोलते हुए

उन्होंने चेतन से पूछा :

"सफेद की अँग्रेजी क्या है ?"

"ह्वाइट ।"

"यह तुम खड़े कैसे हो, सीधे खड़े रहो !"

चेतन सीधे खड़ा हो गया ।

"हिज्जे करो !"

"डब्लयू....डब्लयू....आई....टी, ई ।"

"क्या ?" चेतन के पिता बोतल को रखते हुए कड़के और सड़ से एक तमाचा चेतन के गाल पर पड़ा और कनपटी तक खाल सुलग उठी। उसने हकलाते और काँपते स्वर में गाल पर हाथ रखते हुए कहा, "नहीं जी, नहीं जी, डब्लयू, एच आई, टी, ई ।"

"पहले क्यों नहीं बताया ?" और एक थप्पड़ उसके दूसरे गाल पर पड़ा और एक मुक्का उसकी पीठ पर। फिर उससे दूसरे शब्दों के हिज्जे पूछे गये थे (वाक्य पूछने की नौबत ही न आयी थी) और न जाने कैसे, उसने काँपते-काँपते जो हिज्जे किये थे, वे सब के सब ग़लत थे। उसके पिता उसे उन्मादी की भाँति पीटने लगे थे और उस गार्ड ने बड़ी कठिनाई से उसे उनके चंगुल से छुड़ाकर दरवाज़े के बाहर किया था।

चेतन स्टेशन के कमरे से निकला तो लज्जा, क्रोध और ग्लानि से उसका नन्हा-सा हृदय भरा आ रहा था। आँसू अनायास उसकी आँखों से बहे जा रहे थे। वह किधर जा रहा है, कहाँ जा रहा है, उसे कुछ बोध न था। वह रोता जा रहा था, उलटे हाथ से आँसू पोंछता जा रहा था और भर आने के कारण बार-बार नाक को ऊपर सुड़कता जा रहा था।

वह घर की ओर न गया था। न जाने क्यों, माँ के सामने यों रोते जाने में उसे लज्जा आ रही थी, शायद उसके नन्हें-से हृदय में कहीं

नन्हा-सा अहम् आ बैठा था और उस अहम् को माँ के सामने यों रोते जाना स्वीकार न था।

वह सीधा माल गोदाम में गया और गेहूँ की बोरियों में मुँह छिपाकर रोता रहा। पके हुए अनाज की सोंधी-सोंधी गन्ध उसके नथुनों में प्रवेश करके एक विचित्र तन्द्रा-सी उत्पन्न कर रही थी। वह सो गया, किन्तु नींद ने उसके मन से उस लज्जा, ग्लानि, भय और आतंक के बोझ को हल्का न किया। वहीं सोते-सोते उसके सामने कुछ वैसा ही भयानक दृश्य आ गया और उसने स्वप्न में अपने पिता को डाँटते सुना। वह डरकर उठ बैठा। उसने सुना, उसके पिता माल गोदाम की ओर आ रहे हैं। वह चुपचाप बोरियों से उतर कर खिसक गया।

माल गोदाम से निकलकर वह खेतों, खलिहानों में घूमता रहा। उसे खाने-पीने की चिन्ता न थी। खो जाने का भय न था। वह घूमता रहा—निरर्थक निरुद्देश्य, निरुत्साह!

वह रहँट पर गया और कुएँ की जगत पर बैठकर चुपचाप रहँट की रूँ-रूँ....रीं-रीं....सुनाता रहा। वह खेतों में गया और कितनी देर तक वहाँ गेहूँ की बालियों को बैलों के खुरों के नीचे पिसकर दानों को छोड़ते तकता रहा। वह चरसे पर गया और मन्त्र-मुग्ध-सा वहाँ खड़ा चरसे की 'लाओ' को बैलों द्वारा खींचे जाते देखता रहा।

किन्तु प्रकट ये दृश्य देखते हुए भी वह उन्हें न देख रहा था। उद्भ्रान्त-सा वह घूमता रहा था। उसकी आँखें तो उन सुखद दृश्यों के स्थान पर कोई दूसरा ही दृश्य देखती रही थीं; अनायास भर-भर आती रही थीं और वह उस हाथ से जो उड़ती हुई मिट्टी के कारण मैला हो चुका था, अपने आँसू पोंछता रहा था। उसके नन्हें-से हृदय में बवण्डर-सा उठता-मिटता रहा था। उसे भारी दुख था। पर वह दुख निर्दोष पीटे जाने का था, सोचने का अवसर दिये बिना पीटे जाने का

था अथवा दूसरे लड़के के सामने पीटे जाने का, इसका विश्लेषण उसका नन्हा-सा मस्तिष्क न कर पा रहा था। उसके गालों की टीस मिट गयी थी, पर उसके नन्हें-से हृदय में जो घाव बन गया था, उसमें असह्य पीड़ा हो रही थी।

वहीं लेटे-लेटे चेतन को लगा कि वह घाव तो अब भी वहाँ है और उसमें पीड़ा उतनी ही तीव्र है। वह आज तक उस पीड़ा को कैसे भूला रहा ? उसके सामने उसका अपना नन्हा-सा उद्भ्रान्त रूप अपनी समस्त व्यथा के साथ आ गया। अपने क्रूर पिता का चित्र भी उसके सामने आया और उसके शैशव का वह दुखद अध्याय जैसे नये सिरे से उसके सामने खुल गया।

सन्ध्या को जब वह थककर और तनिक आश्वस्त होकर घर आया था तो उसके घुटनों तक मिट्टी चढ़ी हुई थी, बाल बिखरे हुए थे, आँखें रोने के कारण उबल आयी थीं और मैले हाथों से बार-बार पोंछने के कारण उसके चेहरे पर धब्बे बन गये थे। माँ उस समय गाय का दूध दुहकर उसे चूल्हे पर गर्म करने जा रही थी। चेतन को इस अवस्था में देखकर उसने उसे छाती से लगा लिया। चेतन चाहता था उसके आँसू न निकलें, पर सहसा उसे रोना आ गया। किन्तु जब उसने देखा कि उसकी माँ भी रो रही है तो वह आप से आप चुप हो गया। तब उसे चुप होते देखकर अथवा अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण माँ ने भी जैसे अपने आँसुओं को बरबस रोक लिया। उसे अपनी छाती से अलग किया और भड़ोली* में उपलों की आग पर सुबह से चढ़े हुए गाढ़े दूध की मलाई उतारकर उसके साथ चेतन को रोटी दी। जब वह खाने लगा तो माँ ने धीरे-धीरे, रसोई का काम करते-करते, चेतन से हिन्दी शब्दों का अँग्रेज़ी अनुवाद, उसके हिज्जे और उन

***भड़ोली = गुरसी = मिट्टी की बनी गहरी सिगड़ी, जिसमें आग पर दूध पकता है।**

समस्त वाक्यों की अँग्रेज़ी सुनी जो चेतन के पिता ने उसे बताये थे। खाना खाते-खाते चेतन ने अपनी माँ को सब शब्द, हिज्जे और वाक्य ठीक-ठीक सुना दिये। वह न कहीं अटका, न कहीं भूला। किन्तु जब रात को पिता ने उसे सोते हुए झकझोर कर उठाया और शराब के नशे में उसे अत्यन्त अश्लील गालियाँ देते हुए डाँटा कि वह इतनी जल्दी क्यों सो गया है और कुछ कठिन शब्दों के हिज्जे पूछे तो चेतन बिना अटके न बता सका। वह अटका कि उसके थप्पड़ पड़ा, थप्पड़ पड़ा कि उसे सब कुछ भूल गया। इसके बाद उसे इतना स्मरण है कि वह भूलता गया और पिटता गया। हुक्के की नली से पिता ने उसे पीटा और एक बार जब पिटता-पिटता वह दीवार तक आ गया और नली बरामदे के खम्भे में लगने से टूट गयी तो पिता ने अपने नशे और क्रोध के आवेश में चूल्हे में से अधजली लकड़ी उठा ली। तब रोते-रोते माँ बीच में आ गयी। तीन-चार लकड़ियाँ उसके लगीं, एक बार चेतन के घुटने पर पड़ा। घुटने का मांस उड़ गया। वह न जाने कितना पिटता यदि परदादी गंगादेई अपनी अन्धी आँखों और कमान-सी कमर को लठिया के सहारे सम्हाले, चेतन के पिता को गालियाँ देती हुई, उनके बीच न आ जाती और चेतन पर खींचकर मारी हुई लकड़ी उसकी पीठ पर न जा लगती और अपनी दादी को पीटने के पाप का ध्यान करके चेतन के पिता का नशा न टूट जाता।

सारी-की-सारी घटना चेतन के सम्मुख घूम गयी और तभी उसे अपनी शंका का समाधान भी मिल गया। वह सोचता था कि उसके मन में इस अन्याय, क्रूरता तथा अत्याचार के प्रति कभी प्रतिक्रिया क्यों नहीं हुई? अब उसे अचानक लगा कि प्रतिक्रिया तो उसके मन में अज्ञात-रूप से होती थी, किन्तु उसका पता उसे न चलता था। वह उसके अर्ध-चेतन मन में होती थी, अपने उन अवसादमय क्षणों में उस प्रतिक्रिया का रूप ज्ञेय होकर उसके सम्मुख आ गया। पिटकर खेतों-खलिहानों में

उसका भटकना; प्रकृति के दृश्यों में निमग्न होकर अपने मन की पीड़ा को भुलाना; बीमार रहकर अपने पिता की चिन्ता का कारण बनना; पिता के सामने कम जाना—यह सब उस प्रतिक्रिया ही का तो अज्ञात-रूप था।

बात वास्तव में यह थी कि उस प्रतिक्रिया को उसकी आँखों से छिपा लेने वाली, उस कटु वातावरण में रहते हुए भी, उसे उससे ऊपर उठा लेने वाली एक प्रबल शक्ति उसके अपने अन्तर में अनजाने ही संचित होती रही थी। वह जब भी कटुताओं की चट्टानों से टकराया तो टुकड़े-टुकड़े होने के बदले, सदा उसी शक्ति के बल पर उभरता रहा। उसी के बल पर खिन्न होकर भी उसने खिन्नता अनुभव नहीं की। दुखी होकर भी दुख को भूलता रहा। निराशा की गहन-निबिड़ता में आशान्वित रहा। उसका वह सन्तोष प्रतिक्रिया के अभाव के कारण न था, वरन् उस आन्तरिक शक्ति के संचय के कारण था।

किन्तु अब वह शक्ति उसकी सहायक क्यों नहीं होती? वह झुँझलाता—कविराज की धूर्तता को देखकर और यह जानकर कि वह शोषित है, वह इतना खिन्न, इतना अन्यमनस्क क्यों हो बैठा? क्यों पहले ही की तरह इस खिन्नता को झटककर स्वस्थ होकर नहीं उठ बैठा?

सन्ध्या का अन्धकार प्रतिक्षण गहरा होता जा रहा था। बाहर अन-वरत वर्षा हो रही थी। मकानों की छतें मुखर हो उठी थीं। रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था। परनालों का पानी शोर मचाता हुआ नालों में मिल रहा था और नालों का पानी उन्मत्त हो उछलता-कूदता नीचे खड्ड में चला जा रहा था। इस समस्त कोलाहल में, बिजली जलाये बिना, अँधेरे ही में चेतन अपने बिस्तर पर अन्यमनस्क पड़ा था। उस सारे कोलाहल में उसे ऐसी नीरवता का आभास हो रहा था जो उसे

निगले जा रही थी। पुरानी स्मृतियाँ नयी बन-बनकर उसके सामने आ रही थीं और वह हर बार रो-सा उठता था। उसे लगता था जैसे सारी दुनिया में वह अकेला है और सारी दुनिया उसका शोषण करने पर तुली हुई है।

यद्यपि वह आज दोपहर को भी बाज़ार न गया था और भूखा ही पड़ रहा था तो भी महज़ खाना खाने के लिए मिडिल बाज़ार जाने की इच्छा उसे बिलकुल न थी। दूध पीकर ही वह सो जायगा, उसने सोच रखा था और वहीं लेटा वह करवटें बदलता, उठता-बैठता, कमरे में चक्कर लगाता अपने मन की गुत्थियों को सुलझाने-उलझाने में निमग्न रहा था।

बाह्य कटुता के निरन्तर प्रहारों ने उसके अन्तर में जिस शक्ति का संचार किया था, वह थी उसको कल्पना-शक्ति! जब भी वह दुखी होता, पिटता तो उस दुख और कष्ट के संसार से निकलकर वह कल्पना के सुखद सुरम्य लोक में जा पहुँचता।

जब वह बहुत छोटा था, तब भी जब दिन के दुख से खिन्न-क्लान्त हो वह रात को लेटता तो सोने से पहले उसकी कल्पना उसके सम्मुख राम और सीता की मूर्तियों को ला खड़ा करती। राम उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते, सीता उसे अपनी गोद में लेकर प्यार करती और वह पिता की मार-पीट, झिड़कियों और गालियों का दुख भूल जाता।

कभी वह वृन्दावन के काल्पनिक कुंजों में कान्ह के ग्वाल-बालों में जा मिलता और गोपियों के संग रास रचाता। उसकी माँ अथवा पर-दादी दिन में उसे जो कहानियाँ सुनातीं, रात को वह उन्हीं का नामक बन जाता। उसके अन्तर के किसी गुप्त स्तर में अपने पिता के दुर्व्यवहार के प्रति घोर प्रतिक्रिया हो रही है, अपने इन सुख-सपनों में यह बात उसे कभी ज्ञात भी न होती।

ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया, उसकी कल्पना-शक्ति उसके सामने नित्य नये संसार बसाती रही। बाह्य-संसार में प्रेम से वंचित रहकर भी वह कल्पना-संसार में जी भरकर प्रेम पाता रहा; बाह्य-संसार में उतना सफल न होते हुए भी स्वप्न-संसार में सदैव सफल-मनोरथ होता रहा। शैशव से लेकर युवावस्था तक यही आन्तरिक कल्पना-शक्ति उसकी सहायक रही, उसकी सारी कटुताओं को भुलाये रही। चंगड़ मुहल्ले का कलुषित वातावरण, समाचार-पत्र की घुटी-घुटी, संकुचित, दम घोटने वाली फ़िज़ा उसकी कल्पना के पारस को छूकर प्रशस्त, विशाल, सुखद, सुरम्य, स्वर्णिम हो जाती। वह सोचता—इस वातावरण से वह एक दिन अवश्य ऊपर उठ जायगा, सम्पन्न, सुखी और सफल होगा। अपने अदम्य आशावाद के सामने वह घोर से घोर निराशा को भी परास्त कर देता।

उसकी कल्पना के सम्मुख जीवन का महासागर अपनी विशालता को लिये हुए हिलोरें लेता था। अपने आपको वह सदैव उसके तट पर खड़े, चंचल-चपल ऊर्मियों को सोल्लास तकते पाता और सोचता—वह नौका लेकर इन उत्ताल तरंगों के वक्ष पर खेलता हुआ दूसरे किनारे जायगा; दूसरे किनारे—जहाँ सफलता है, सम्पन्नता है, सुख है। उसे अभी उपयुक्त नौका नहीं मिली और वह किनारे ही पर भाग-दौड़ कर रहा है। पर वह अवश्य ही उपयुक्त नौका पा लेगा, इस बात का उसे विश्वास था। उसकी कल्पना उसके इस विश्वास की नींव को दिन-प्रति-दिन पक्का करती रहती थी।

लेकिन रुल्दू भट्टे के उस अन्धकार भरे कमरे में लेटे, अपने उन अवसाद के क्षणों में, उसे अपना यह आशावाद मूर्खता से अधिक कुछ न लगा। पीछे मुड़कर जो वह देखता तो उसे लगता कि वह तो सदैव ठगा जाता रहा है, उसकी कल्पना उसे सदैव धोखा देती रही है। उसके काल्पनिक प्रासादों की दीवारें सदैव ढहती रही हैं। तट के जिस-जिस

भाग पर वह जाकर खड़ा हुआ, वह गिरता रहा है। उसके पाँवों के नीचे से मिट्टी सदैव खिसकती रही है और वह उछलकर दूसरी जगह जा खड़ा होता रहा है। कुन्ती के साथ सुखी जीवन बिताने की अभिलाषा, नीला के साथ सुख के संसार की कल्पना, कविराज की सहृदयता का सहारा पाकर असफलता के उदधि को लाँघकर सफलता को प्राप्त करने के स्वप्न—सब मिथ्या, सब झूठ, मरीचिका की भाँति निकट रहकर भी दूर! कविराज ने उसे जो अवसर दिया था, उसे वह नौका ही तो समझा था। किन्तु जिसे वह नौका समझता था वह तो ग्राह निकला। और तभी उस शक्ति का झूठ जो आज तक उसे दुख, दैन्य, निराशा और असफलता से ऊपर उठाती आयी थी, उसके उन अवसाद के क्षणों में कई गुना बड़ा होकर, उसके सामने आ गया। उसका वह सम्बल ही छिन गया। यही कारण था कि जो शक्ति उसे बचपन से लेकर अब तक दुख में सुखी होना सिखाती आयी थी, आज ऐसा करने में नितान्त असमर्थ थी। आज वह अपनी खिन्नता, दुख, अवसाद और निराशा पर विजय पाने में सर्वथा असफल था।

उन निराश क्षणों में जब उसकी आँखों से कल्पना का पर्दा हट गया, उसने सारे संसार को उसके यथार्थ रूप में देखा। उसने पाया कि उसके आस-पास जो संसार है, उसमें दो वर्ग हैं—एक में अत्याचारी हैं, शोषक हैं; दूसरे में पीड़ित हैं, शोषित हैं! यह ज्ञान कि वह पीड़ित और शोषित है, उसे खिन्न किये दे रहा था।

उसे लगता था जैसे वाटिका की वीथियों में घूमते-घूमते उसने किसी सुन्दर, पर विषैले पौधे का पत्ता तोड़कर मुँह में रख लिया है और उसकी जीभ और ओठ ही नहीं, उसका सीना तक जल उठा है। यदि सफलता के लिए केवल श्रम दरकार होता तो वह जान लड़ा देता, किन्तु छल-छिद्र, धोखा-कपट—क्या वह धोखे का धोखे, कपट का कपट से मुकाबला कर सकेगा?—यही उसके दुख का दूसरा कारण था।

उसकी सरलता को पहली बार जग की धूर्त्तता का सामना करना पड़ा था। माँ ने पाप-पुण्य, भलाई-बुराई के जो विचार उसे घुट्टी के साथ पिलाये थे, वे उसे हवा होते दिखायी देते थे। जिस बुराई के साथ वह अन्तर में लड़ता था, वह तो उसे सर्वव्यापी दिखायी देती थी। सत्य शिव, सुन्दर में विश्वास करने वाले उसके विश्वासी, आदर्शप्रिय, भावुक हृदय पर पहली बार जग की व्यवहारिकता का प्रहार हुआ था और उसका मस्तिष्क इतना कच्चा था, चोट इतनी अज्ञात थी कि वह उसके स्थल को न जान पा रहा था। उसे लगता था; जैसे वह अपने विश्वासों की चोटी से गिरता जा रहा है और सहारा पाने के लिए शून्य में हाथ-पाँव मार रहा है।

कविराज तथा उनकी पत्नी की 'सहृदयता,' सहृदयता तो दूर, उनकी दयानतदारी के सम्बन्ध में भी वह अपना पहला विश्वास खो बैठा था। अनन्त को शिमला आने से पहले लिखे हुए पत्र की एक-एक पंक्ति उसके सामने घूम रही थी। अपने इस विश्वास को खो देने का भी उसे दुख था। कविराज के वास्तविक रूप को जानने के साथ ही पहली बार उसे अपनी सरलता अथवा मूर्खता का बोध हुआ था और अपने आपको मूर्ख मानना उसके अहम् को स्वीकार न था।

अन्धकार और भी गहरा हो गया था। वर्षा उसी प्रकार हो रही थी, वह उसी प्रकार खिन्न-मलीन लेटा हुआ था कि उसे कविराज के जूतों की परिचित ध्वनि सुनायी दी। वह हिला तक नहीं। पूर्ववत् लेटा रहा। तब उसके कमरे की बिजली जली और वाटरप्रूफ़ कोट उतारते हुए कविराज जी ने चिन्तित स्वर में पूछा कि बात क्या है? वह इस प्रकार क्यों लेटा हुआ है?

वह चुपचाप लेटा रहा।

कविराज उसकी चारपाई पर आ बैठे। कुछ क्षण तक उसकी

कलाई थामे नाड़ी देखते रहे। फिर उन्होंने कहा, "तुमने व्यायाम अधिक मात्रा में कर लिया है शायद, तुम्हें बस आराम ही करना चाहिए। गर्म-गर्म शरीर से तुमने स्नान कर लिया होगा, और क्या ?" और जैसे उन्होंने उसकी नित्य स्नान करने की सनक को लक्ष्य करके बेज़ारी से सिर हिलाया। उसे हर काम में मध्य-मार्ग ग्रहण करने पर एक छोटा-सा भाषण दिया और अन्त में परामर्श दिया कि उसे उबलते हुए दूध में अंडे हल करके सेवन करने चाहिए। "मैं अभी स्वयं बनाकर तुम्हारे लिए ले आता हूँ," वे व्यस्त होते हुए बोले, "गर्म-गर्म पीकर रज़ाई ओढ़कर सो जाओ, भगवान ने चाहा तो सुबह तक तुम स्वस्थ हो जाओगे !"

यह कहकर वे बरसाती लिये हुए अन्दर चले गये।

'कपटी !' चेतन ने मन-ही-मन कहा। वह ओठों में उपेक्षा से हँसा। फिर उसने करवट बदल ली और बाहों में सिर रखकर अन्यमनस्क लेटा रहा।

—०—

३६

तीन दिन तक कविराज चेतन को दूध और अंडे मिलाकर पिलाते रहे और चौथे दिन (चूँकि इतवार के कारण वह छुट्टी का दिन था) उन्होंने उसे 'चैडविक प्रपात' दिखा लाने का प्रस्ताव किया।

बर्फ़ीले पहाड़ों के हिम-मण्डित धवल-शिखर जैसे प्रातःकालीन धुन्ध से ढककर मलिन दिखायी देते हैं, किन्तु सूर्य के उदित होते ही धुन्ध के छट जाने पर फिर चमक उठते हैं उसी प्रकार चेतन के हृदय की उज्ज्वल चोटियाँ क्षणिक दुर्बलता की धुन्ध से ढक गयी थीं। उसकी

कल्पना के चिर-प्रकाश और उसके हृदय के (आशावाद रूपी) धवल शिखरों के मध्य दुर्बलता-जनित निराशा की धुँधियाली-सी छा गयी थी, किन्तु धीरे-धीरे सूर्य की किरणें धुँधियाली को बेध रही थीं, क्षत-विक्षत हो धुन्ध छट रही थी और उसके हृदय-शिखर पुनः अपनी धवलता, उज्ज्वलता, निर्मलता और अपनी समस्त चमक-दमक पा रहे थे।

वह सोचता—यदि आज वह दुर्बल है तो क्या कभी सबल न होगा? हताश होकर वह बैठ क्यों गया है? सृष्टि में चारों ओर वह दृष्टि जमाता तो उसके अपरिपक्व मन को सब जगह जंगल का नियम (निर्बलों पर बलवान की विजय) क्रियाशील दिखायी देता। यदि इस संसार में बलवान ही को जीत प्राप्त होती है तो वह बल का संचय क्यों न करे? क्या हुआ यदि उसके शारीरिक बल को उसकी कटु परिस्थितियों ने शैशव ही में पंगु बना दिया है, क्या हुआ यदि उसे धन का बल भी प्राप्त नहीं, उसे बुद्धि का बल तो प्राप्त हो सकता है। चाणक्य ने इसी बल के द्वारा नन्द से अपने अपमान का बदला लिया था। उसका राज्य उलटकर चन्द्रगुप्त को न केवल सिंहासन पर बैठाया, बल्कि उसको अपने इंगित पर चलाया। तो फिर वह भी बुद्धि का ही बल क्यों न ग्रहण करे!........और उसी अन्धकारमय कमरे में खिन्न-मन बैठे-बैठे उसे लगा, जैसे वह स्वयं उस बुद्धिशाली का वंशज है। कल्पना-ही-कल्पना में उसने अपने आपको चाणक्य के रूप में देखा और पाया कि धन और बल की सत्ता उसके सामने अकिंचन होकर रह गयी है। अपने आप में उसने अपार बल का अनुभव किया। उसका क्रोध धीरे-धीरे शान्त हो गया। और जब कविराज चैडविक प्रपात दिखा लाने का प्रस्ताव लेकर आये तो आँधी का वेग समाप्त हो चुका था और वातावरण पर हल्की-सी ठण्डी-ठण्डी बयार डोल रही थी।

अपने उस नये आत्मबल के प्रभाव में चेतन ने कविराज की ओर इस प्रकार देखा जैसे कोई बलशाली पुरुष किसी अकिंचन बौने को

ओर देखता है। उसने चैडविक की बड़ी प्रशंसा सुनी थी, किन्तु देखने का अवसर उसे न मिला था। कई दिन से अन्यमनस्क लेटा-लेटा वह उकता भी गया था, इसलिए प्रस्ताव उसने स्वीकार कर लिया ?

मार्ग में कविराज ने उससे अपनी पुस्तक के बारे में दो-तीन विज्ञापन बनवा लिये। वे अपनी वाणी में इतनी मिठास भर लेते थे और फिर इतनी सावधानी से बातें करते थे कि आदमी अनायास ही उनके जाल में फँस जाता था। अपने समस्त नये आत्मबल के होते भी चेतन अभी उनके सामने बच्चा था। न जाने उन्होंने किस प्रकार बातों का क्रम छेड़ा, किन्तु धीरे-धीरे वे उन्हें विज्ञापनबाज़ी पर ले आये। आधुनिक युग में विज्ञापनबाज़ी के महत्व पर उन्होंने छोटा-सा भाषण दे डाला :

"आज का युग विज्ञापनबाज़ी का युग है," उन्होंने कहा, "आज विनम्रता से, गुण के पारखियों की गुणग्राहकता पर विश्वास करके, काम नहीं चलता, बल्कि छत पर खड़े होकर डंके की चोट अपनी चीज़ का, अपने आविष्कार का, अपनी कला का, अपनी कृति का, अपने चरित्र और उसके गुणों का ढिंढोरा पीटने ही से जनता में सुनवाई होती है। सफल व्यक्ति के लिए बुद्धिमान होना, किसी उपयोगी चीज़ का आविष्कार करना अथवा किसी कला-कृति का सृजन करना ही यथेष्ट नहीं, सफल विज्ञापनबाज़ होना भी आवश्यक है। विनम्र व्यक्ति आज की दुनिया में मरु का फूल होकर रह जायगा, जनता के गले का हार बनना उसके भाग्य में नहीं।"

और कविराज अपने प्रिय विषय 'मैं' तक पहुँच गये और बोले, "मेरी सफलता का भेद दूसरी बातों के अतिरिक्त इसमें भी निहित है कि मैंने अपनी औषधियों का, अपनी पुस्तकों का बड़ी चतुराई से विज्ञापन

किया है।" फिर सहसा अपने मन्तव्य पर आते हुए उन्होंने कहा, "मैंने अभी कल दो विज्ञापन बनाये हैं। मैं शिमले में पहली बार आया हूँ। रोगी अभी उतने आते नहीं। आयें भी कैसे ? उन्हें पता भी हो कि मैं यहाँ आ गया हूँ। किन्तु मैं प्रयास कर रहा हूँ कि शिमला और दूसरे निकटवर्ती स्थानों के लोग मेरे नाम से भली-भाँति परिचित हो जायँ। औषधालय अपने में स्वयं एक बड़ा विज्ञापन है। मैं जब भी किसी पहाड़ पर जाता हूँ, वहाँ अपने निजी मकान के अतिरिक्त औषधालय के लिए अवश्य स्थान लेता हूँ। बेकार बैठे स्वास्थ्य बनाना मुझे पसन्द नहीं और घर में काम हो नहीं सकता।"........और कुछ क्षण चुपचाप चलते रहने के बाद कविराज बोले :

"मैं विज्ञापनबाज़ी के नित्य नये ढंग सोचता हूँ। चाहता हूँ कि एक विज्ञापन दूसरे से न मिले। उसमें नवीनता हो, उपज हो, मौलिकता हो।"....और सहसा उन्होंने दो-एक विज्ञापन चेतन को दिखाये।

चेतन चुपचाप उनकी बातें सुनता आया था। एक-दो बार मन-ही-मन उनके दम्भ को कोस भी चुका था और जब कविराज ने विज्ञापन दिखाये तो उसने बड़ी अन्यमनस्कता से उन्हें देखना आरम्भ किया, किन्तु पढ़ते-पढ़ते उसके अन्तर का कलाकार सजग हो उठा। "इनमें सूक्ष्मता नहीं," उसने कहा, "ये विज्ञापन स्पष्ट और अनगढ़ दिखायी देते हैं। और चलते-चलते उसने कविराज की एक पुस्तक का विज्ञापन बना दिया।

पत्थर की गगन-चुम्बी दीवार की भाँति खड़े पहाड़ में बहुत ऊपर, एक छिद्र में से पिघली हुई चाँदी-सा, बीसियों पेड़-पौधों को नहलाता, फुहारें उड़ाता चैडविक प्रपात एक विशाल रजत-पट की तरह लहराता हुआ नीचे गिर रहा था। वह फुहार जैसे बिना स्पर्श मन की सब

खिन्नता, सारी थकन, समस्त क्लान्ति को धो रही थी।

प्रपात के नीचे पहुँचकर कविराज उसके पास ही एक चट्टान पर बैठ गये। चेतन उनसे कुछ अंतर पर बैठा। यद्यपि प्रपात उनसे तनिक दूर गिरता था तो भी उसकी फुहार का कोई-कोई कण उड़कर उन तक आ जाता था। कुछ देर तक दोनों चुपचाप प्रकृति के इस अनुपम सौन्दर्य को देखते रहे। फिर उन्होंने लोअर बाज़ार से ली हुई मिठाई खाकर ठण्डा पानी पिया। और फिर न जाने कुछ उमंग में आकर अथवा चेतन को कुछ उदास देखकर कविराज ने एक गाना सुनाया।

उनके स्वर में इतनी मधुरता, इतनी आर्द्रता और इतनी लय थी कि चेतन चकित-सा, मुग्ध-सा उनका गाना सुनता रहा।

कविराज गा रहे थे और चेतन सोचता था—यह व्यक्ति, जिसे वह केवल एक चतुर व्यापारी, एक हृदयहीन शोषक समझता था, अपने वक्ष में हृदय भी रखता है! उसके मन में अवश्य कभी चाहत उगी है। चाहे अब उस चाहत की चिनगारी दुनियादारी की राख के नीचे दब गयी है, किन्तु वह सर्वथा बुझ नहीं गयी। कहीं उस व्यावहारिकता, चतुरता, व्यापार, प्रवंचना, छल-कपट के नीचे दबी पड़ी है। और चेतन ने सोचा—मनुष्य क्यों अपने आप पर एक आवरण चढ़ाने को विवश है, क्या कोई ऐसी व्यवस्था नहीं जिसमें वह जैसा है वैसा रह सके; उसे छल-कपट, धोखे-धड़ी, शोषण और उत्पीड़न की आवश्यकता न पड़े; वह अपने गुणों को जिला दे; चमकाये; मन्द न पड़ने दे; इस प्रकार कैद न करे, दबाकर न रखे!—कितना दर्द है इस कण्ठ में, कितना सुन्दर है यह गीत, कितना गीला, कैसी मनुहार है इसमें!

शाम होने को आयी थी और चैडविक प्रपात को आने वाला मार्ग बहुत ऊबड़-खाबड़ था। इसलिए जब कविराज ने गीत समाप्त किया तो वे उठ खड़े हुए। एक लम्बी साँस लेकर उन्होंने कहा:

"चलो भाई! इन गीतों का अन्त कहाँ, पर दिन का अन्त आ पहुँचा है।"

वापसी पर कविराज ने अपने जीवन की कहानी छेड़ दी और जाने अथवा अनजाने में वे उसे कितनी ही ऐसी बातें बता गये जो वे शायद किसी और को न बताते।

चेतन जान गया कि चार वर्ष के बदले उन्होंने केवल एक ही वर्ष आयुर्वैदिक कॉलेज में शिक्षा पायी है और जब उन्होंने प्रेक्टिस आरम्भ की थी तो उन्हें आयुर्वेद का उतना ज्ञान न था। पर अपने परिश्रम, अध्यवसाय, निष्ठा और व्यवहार-कुशलता के बल पर उन्होंने इतनी सफलता, धन, वैभव और ख्याति पायी।

चेतन यह भी जान गया कि उन्होंने प्रेक्टिस का आरम्भ न केवल हर तरह की पूँजी के अभाव में किया, बल्कि जब उन्होंने प्रेक्टिस आरम्भ की तो उनके सिर पर नौ हज़ार रुपया कर्ज़ था। कुछ रिश्तेदारों के साथ मिलकर उन्होंने ठेकेदारी आरम्भ की थी और उसमें घाटा आ गया था। पास तो कुछ था नहीं जो दे देते, पर मन-ही-मन उन्होंने उस रक़म को अपने ऊपर एक ऋण मान लिया।

"तब मेरे एक मित्र ने, जिसे मैं बचपन में प्यार करता था, मेरी सहायता की।" उन्होंने बताया, "आयुर्वैदिक कॉलेज में तब एक ही वर्ष में डिग्री मिल जाती थी। घर वालों से मेरी पटती न थी, इसलिए पत्नी को भी लाहौर ले आया और मेरा वह मित्र हम दोनों का खर्च भेजता रहा। फिर वह समय भी आया कि मुझे जिन लोगों का कर्ज़ देना था, उनको मैंने पाई-पाई चुका दी। यही नहीं, बल्कि वे मेरे ऋणी हो गये।"

चेतन का औत्सुक्य उनकी जीवन-गाथा सुनने के बदले उनके मित्र के सम्बन्ध में जानना चाहता था। उसने उनकी बात काटकर पूछा,

"फिर वह मित्र आपसे नहीं मिला ?"

कविराज जी की वाणी गद्‌गद हो गयी। उन्होंने कहा, "एक बार वह औषधालय आया था। तब मैंने उससे कहा, "मैं तुम्हारी क्या खातिर करूँ ? किसी चीज़ के लिए पूछते हुए भी मुझे शर्म आती है, क्योंकि सब कुछ तो तुम्हारा ही है।"

और उन्होंने उसे बताया कि किस प्रकार वे चंगड़ मुहल्ले में रहते रहे और उन्होंने स्वयं अत्यन्त विपन्नता के दिन देखे।............और अपनी रौ में वे एक अभिन्न मित्र की भाँति संगत अथवा असंगत, कथनीय या अकथनीय—सब बातें उसे बता गये। और सन्ध्या समय जब चेतन अपने कमरे में पहुँचा तो उसे लगा जैसे कविराज के प्रति उसके मन में जितना क्रोध था, वह सब पिघल चुका है। और यद्यपि उन्होंने उससे दो-तीन विज्ञापन बनवाकर सप्ताह भर के पैसे वसूल कर लिये थे, यह सब जानते हुए भी चेतन ने वहीं ठहरकर उनकी पुस्तक समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया।

जीवन की धूर्त्तता से उसकी भावुकता का यह पहला समझौता था।

—०—

३७

एक दिन सुबह जब चेतन कविराज की पुस्तक के लिए एक परिच्छेद का ढाँचा तैयार कर रहा था, यादराम ने आकर खुशी से झूमते हुए सूचना दी, "बड़े काका आ रहे हैं।"

कई दिनों से वह राजकुमार (बड़े काका) के आगमन की चर्चा

सुन रहा था। उसके आने से बहुत दिन पहले कविराज जी उसके रहने-सहने, खाने-पीने, पढ़ने-लिखने के बारे में प्रोग्राम बनाने लगे थे। आते ही उसे अपने उपयुक्त मित्र मिल जायँ, इस विचार से उन्होंने अपने पड़ोस के लोगों और उनके बच्चों से मेल-जोल पैदा कर लिया था। उनके घर के सामने पूरब की ओर मि० चावला रहते थे। उनके घर खाने पर निमन्त्रित होकर वे अपने लड़के के लिए वहाँ उपयुक्त वातावरण बना आये। इसी प्रकार रुल्दू भट्टे की नीचे की गली में रहने वालों के साथ भी, जहाँ-जहाँ राजकुमार के समवयस्क लड़के थे, कविराज जी ने मेल-जोल बढ़ा लिया था। चेतन पर भी उनका कृपा-भाव उन दिनों कुछ बढ़ गया था। रात को सोते समय मन्नो के हाथ भेजने के बदले वे स्वयं चेतन के लिए दूध ले आते; उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछते; उसके भाई की प्रेक्टिस का हाल-चाल जानते; उसके उपन्यास की गति-विधि के सम्बन्ध में एक-आध प्रश्न करते कि कितना लिखा गया है और क्या-क्या वह उसमें लिखना चाहता है आदि-आदि। कभी-कभी उससे कोई परिच्छेद सुनाने का अनुरोध भी करते। इन समस्त कृपाओं के बदले में उन्होंने चेतन से वचन ले लिया था कि वह एक-दो घण्टे राजकुमार को अँग्रेजी पढ़ा दिया करेगा। जयदेव को उन्होंने उसे गणित पढ़ाने के लिए पहले ही राज़ी कर लिया था।

राजकुमार के आगमन की बात सुनकर और यह जानकर कि वह उसके कमरे में सोयेगा और उससे पढ़ेगा, चेतन को सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई थी। उस नीम-अँधेरे कमरे में, सारा दिन पढ़ते, नोट लेते, और लिखते-लिखते वह इतना थक जाता था कि किसी की सूरत देखने को, किसी से दो बातें करने को उसका जी तरस जाता था।

यद्यपि वह दिन भर काम में निमग्न रहता था, पर जब भी वह काम छोड़ता, उदासी चारों ओर से उसे घेर लेती और कई बार वह इतना खिन्न, श्रान्त और क्लान्त अनुभव करता कि कलम तक उठाने को उसका

मन न होता और अपनी सारी-की-सारी रंगीनियों के साथ शिमला उसे विशाल मरुस्थल-सा दिखायी देता।

चेतन वास्तव में एक घरेलू व्यक्ति था। अपने पास माँ, भाई, बीवी अथवा किसी घनिष्ट मित्र की उपस्थिति उसे अनिवार्य-सी लगती थी।

अपने इस एकाकीपन से कई बार वह इतना ऊब उठता कि अनन्त को पत्र लिखने की सोचता। पहले भी जब भाई साहब पास न होते या किसी कारण-वश वह उनसे बात न कर पाता था तो वह अनन्त ही के पास जाता था। वह निकट न होता तो उसे पत्र लिखता। किन्तु शिमला आकर चेतन ने अनन्त को कोई पत्र न लिखा था। उसे कई बार इच्छा भी हुई, कई बार उसने संकल्प भी किया, किन्तु सदैव एक भारी संकोच उसके मार्ग की दीवार बन गया। एक बार अपने पत्र में कविराज जी की अत्यधिक प्रशंसा करने के बाद अब सच्ची बात वह किस तरह लिखे ? वह अपने आपको मूर्ख न सिद्ध करना चाहता था। ऐसा करने में कदाचित उसके अहम् को ठेस पहुँचती थी।

वह चन्दा को पत्र लिख सकता था, लिखता भी था। किन्तु चन्दा उत्तर देने में बड़ी सुस्त थी। स्वभाव के इस लक्षण में वह भाई साहब से मिलती थी। चेतन जब कभी भाई साहब को पत्र लिखता तो उत्तर की प्रतीक्षा करते-करते थक जाता। रहा पड़ोसियों से मिलना-जुलना, तो रुल्दू भट्टे में एक भी ऐसा आदमी न था जिसे वह अपने उन उदास क्षणों का साझीदार बना सके। कविराज जी के घर में, क्योंकि उसकी स्थिति नौकरों की-सी थी, इसलिए पड़ोसियों से वह कभी खुल न पाया था। वह सदा उनसे खिंचा-खिंचा-सा रहता। कभी किसी से न मिलता। अपने उसी अँधेरे कमरे में बैठा रहता और उसके सामने अगनित चित्र बन-बनकर मिटते रहते। उसे लगता जैसे एकाकीपन अपने इस्पाती घेरे को उसके गिर्द क्षण-प्रति-क्षण संकुचित कर रहा है

और किसी दिन यह प्रतिक्षण सीमित, प्रतिक्षण परिमित होता हुआ घेरा उसका दम घोट देगा। और वह चाहता कि पुस्तक को ले जाकर कविराज के सामने पटक दे और उसी क्षण लाहौर भाग जाय। लाहौर! जो अपने कूड़े-करकट, धूल और धुएँ के होते भी जीवित है; जीवन के स्पन्दन से प्रतिक्षण धड़कता है। जहाँ इतनी सफ़ाई चाहे न हो, पर इतना शून्य भी नहीं। इतनी नीरवता और निस्तब्धता भी नहीं।

और वह प्रसन्न था कि राजकुमार के आने से न केवल उसका यह एकाकीपन दूर हो जायगा, बल्कि वह अपने इरादे, अपनी स्कीमें, अपनी कहानियों के प्लाट, अपने उपन्यास के परिच्छेद और भविष्य के अपने स्वप्न उसे सुना सकेगा।

वह उस समय काम में व्यस्त था जब यादराम ने उसे राजकुमार के आने की सूचना दी। किताब हाथ ही में लिये वह खिड़की में जा खड़ा हुआ। नीचे राजकुमार के स्वागत को जैसे सारा रुल्दू भट्टा इकट्ठा हो गया था। लेकिन चेतन को बड़ी निराशा हुई, क्योंकि कविराज जी के साथ जिस लड़के को उसने सीढ़ियों पर चढ़ते देखा, उसकी आकृति से किसी प्रकार भी उन गुणों का आभास न मिलता था जिनका बखान बड़े गर्व से कविराज इतने दिनों से कर रहे थे।

"मूर्ख, भरा-पुरा दुम्बा!" चेतन ने मन-ही-मन हँसकर व्यंग्य से सिर हिलाया। राजकुमार अन्दर कमरे में जा चुका था। वह फिर बैठ गया और काम में व्यस्त हो गया।

साँझ की छाया ढलने लगी थी जब अन्दर का दरवाज़ा खुला और कविराज जी अपने पुत्र को लिये चेतन के कमरे में आये।

चेतन चारपाई पर बैठा-बैठा थककर लेट-सा गया था। वह चौंककर उठ बैठा। तब "बैठो-बैठो" कहते और हाथ से उसे लेटे रहने का संकेत कर, वे उसकी चारपाई के निकट आ गये और अपने पुत्र को अपनी

बाँह में भर, अपनी मुस्कराहट को तनिक और फैलाते हुए, उन्होंने दोनों को एक-दूसरे का परिचय दिया। फिर राजकुमार के सामने चेतन की बड़ी प्रशंशा की और उससे कहा, "आज से तुम यहीं सोना। समय निकाल, घण्टा-दो घण्टा इनसे अँग्रेज़ी पढ़ लिया करना।" और यादराम को बुलाकर उन्होंने कहा, "बड़े काका का बिस्तर इधर इनके कमरे में फ़र्श पर लगा दो।"

तब चेतन उछलकर उठा। उसने यादराम से कहा कि उसकी चारपाई उठाकर बाहर सीढ़ियों में रख दे और उसका बिस्तर भी वहीं फ़र्श पर बिछा दे।

कविराज जी ने उसको शाबाशी दी। धरती पर सोने के लाभ पर एक छोटा-सा भाषण दिया और चले गये।

जब बिस्तर धरती पर बिछ गया, चेतन ने अपनी पुस्तकों को फ़र्श ही पर एक ओर क़रीने से चुन लिया और बैठकर काम करने लगा तो उसे लकड़ी के उस फ़र्श पर बैठने में दिक्क़त हुई। खिड़की के बहुत नीचे होने के कारण प्रकाश की और कमी हो गयी। किन्तु जब यादराम निकट फ़र्श पर राजकुमार का बिस्तर बिछा रहा था तो वह शिकायत कैसे करता।

सुबह वह ज़रा देर से जागा और बिना लिहाफ़ से मुँह निकाले दोनों हाथ अपने चेहरे पर फेरते हुए उसने राजकुमार को 'नमस्ते' कही। जब उसे उत्तर न मिला तो उसने लिहाफ़ से मुँह निकाला कि देखें राजकुमार अभी सोया पड़ा है या जाग रहा है किन्तु वह चकित रह गया। न वहाँ राजकुमार था न उसका बिस्तर। यह भी न पता चलता था कि वहाँ कभी किसी का बिस्तर बिछा भी है।

क्षण भर वह उसी रीती जगह की ओर देखता रहा। फिर उसने

सोचा—कविराज दुकान को जायँगे तो उनसे पूछेगा कि राजकुमार चला क्यों गया ? किन्तु कविराज जाते समय उससे नहीं मिले। वे तेज़ी से निकले और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गये। कदाचित् उन्हें जल्दी थी।

तब चेतन ने सोचा कि शायद राजकुमार वहाँ न सोयेगा, शायद धरती पर सोना उसके लिए उतना आकर्षण नहीं रखता। उसे भी अपनी चारपाई वापस ले आनी चाहिए। उस अँधेरे में काम कर आँखें फोड़ने की क्या ज़रूरत है। वह सीढ़ियों की ओर बढ़ा, किन्तु चारपाई वहाँ से ग़ायब थी।

वह दिन भर असमंजस में पड़ा रहा। उससे काम न हो रहा था।

उसे ऐसा लगता था जैसे वह फिर ठगा गया है। तभी मन्नी उधर से गुज़री। चेतन ने उससे पूछा :

"मेरी चारपाई कल यादराम ने वहाँ रखी थी, कहाँ गयी ?"

"रात को बड़े काका के लिए वैद्य जी ले गये।"

"पर उन ब्रह्मचारी जी को तो धरती पर सोना था," क्रोध से जलते हुए चेतन ने कहा।

मन्नी हँस दी, "एक ही रात में बिलबिला उठे पिस्सुओं के मारे। उठकर भाग आये आधी रात को। चारपाई तो और घर में थी नहीं, वही लाकर वैद्य जी ने उनके नीचे बिछा दी।"

चेतन ने चाहा ऐसी फुफकार मारे कि सामने का कमरा जलकर राख हो जाय, किन्तु वह केवल विष घोलकर रह गया।

सारा दिन वह कोई काम न कर सका। बेचैनी के मारे लेटता, उठता बैठता कमरे में चक्कर लगाता रहा।

—o—

३८

कविराज जी नौकरों से छल करते हों, यह बात न थी। छल-कपट (जिसे वे जीवन को सुख से बिताने का एक अत्यावश्यक साधन मानते थे) उनकी प्रकृति का एक अंग बन चुका था। अपने नौकरों से, ग्राहकों से, मित्रों से, बच्चों से, बीवी से, यहाँ तक कि वे अपने-आपसे छल करते थे। दिन-रात झूठ बोलते हुए, जनता को ठगते हुए वे साथ-साथ अपना परलोक सुधारने की भी चिन्ता में मग्न रहते थे। आर्य-समाज के प्रसिद्ध उपदेशक स्वामी शुद्धदेव उनके घर नियमित रूप से वर्ष में एक बार गीता की कथा करते थे, हर महीने हवन-यज्ञ होता था। इसके साथ ही वे कई सभा-सोसाइटियों को दान देते थे और कई धर्मार्थ संस्थाओं का बोझ अपने कन्धों पर उठाये हुए थे और समझते थे कि इस लोक के साथ वे अपना परलोक भी सुधार रहे हैं।

लेकिन चेतन को कविराज जी के इस ढंग, उनकी इस व्यवहार-कुशलता से अतीव घृणा थी। वह स्पष्टवादी था। साफ़ बात पसन्द करता था। इस घुमाव-फिराव में उसे छल की गन्ध आती थी। यदि कविराज उससे साफ़ कह देते—'राजकुमार आ रहा है, चारपाई अब उसके लिए चाहिए'—तो वह तत्काल दे देता। उसे तनिक भी दुख न होता, क्योंकि कविराज जी ने शिमला आने से पहले उससे कह दिया था कि वे सोने के लिए उसे दुकान या मकान का कोई कोना दे देंगे। यह भी उन्होंने उससे कह दिया था कि कदाचित् उसे धरती पर सोना पड़े और चेतन इस बात के लिए तैयार भी होकर आया था। किन्तु उसे इस झूठ और फ़रेब से चिढ़ थी। हर बार नया झूठ। उस झूठ को छिपाने के लिए फिर झूठ और इस प्रकार सारे-का-सारा झूठ का यह जीवन उसके लिए असह्य था। स्पष्ट बात सुनने पर पहले धक्का ज़रूर लगता है, किन्तु आदमी उसे शीघ्र ही भूल जाता है, अथवा उसे यथार्थ जानकर उससे समझौता कर लेता है। किन्तु यह कपट ! यह ऊपर से

उतना कटु मालूम नहीं होता, किन्तु जो व्यक्ति इस कपट का शिकार बनता है, जब उस पर इसकी यथार्थता खुलती है तो उससे जो झटका लगता है, छले जाने का जो खेद उसे होता है, वह हृदय में घाव बना देता है और वह घाव समय पाकर नासूर बन जाता है और कपटी के क्षमा माँग लेने अथवा उससे बदला लेने पर भी नहीं मिटता।

और चाहे उसने उनके लिए पुस्तक लिखने का निर्णय कर लिया था और वह पूरे श्रम से पुस्तक लिख रहा था, किन्तु उस समस्त छल-कपट के लिए उसने उन्हें क्षमा न किया था और वह उस घाव को धीरे-धीरे पाल रहा था।

चेतन के जीवन की ट्रेजेडी उसकी यही बढ़ी हुई भाव-प्रवणता और उससे जनित क्षोभ था। यदि अनजाने में उससे स्वयं छल बन आता तो दूसरे ही क्षण अपने छल को जानकर आत्म-ग्लानि से उसका हृदय भर जाता। प्रतिक्रिया उसे दूसरे किनारे ले जा फेंकती! निम्न-मध्य वर्ग में जो 'मोटी खाल' पैदा होती है—जो मान-अपमान को सह जाती है और अनायास असत्य, उत्कोच, चाटुकारी अथवा छल-कपट का व्यवहार करती है—चेतन के पास उसका सर्वथा अभाव था। उसकी खाल बड़ी पतली थी। मस्तिष्क की नसें उसकी अति कोमल थीं। छोटी-सी बात भी उन्हें बेतरह झनझना देती थी।

उसे चारपाई के इस तरह से छीने जाने का बड़ा दुख हुआ था। कुछ क्षण के लिए क्रोध का लावा उसके अन्तस्तल में पूरे वेग से खौल उठा था और लगता था कि वह एकदम फट पड़ेगा। उसने चाहा था कि उसी क्षण कविराज जी के पास जाय। उनसे कहे—"मुझे अभी चारपाई ले दीजिए! इसी क्षण! रुपये आप मेरे वेतन से काट लीजिए। क्या मेरे सहयोग का मूल्य एक चारपाई भी नहीं! क्या आपने मुझे यादराम या जयदेव समझ लिया है!"

यद्यपि वह भली-भाँति जान गया था कि कविराज की दृष्टि में

उसका महत्व यादराम या जयदेव से अधिक नहीं, उसने अपनी इस स्थिति से समझौता भी कर लिया था, किन्तु बार-बार इसकी याद दिलाये जाने पर उसको, उसकी गर्व-चेतना को, उसके अहम् को दुख पहुँचता था। उस क्रोध के क्षण में उसने यह भी सोचा था कि उसी समय कहीं से तीन-चार रुपयों का प्रबन्ध करके एक चारपाई ले आये। किन्तु ज्यों-ज्यों वह सोचता गया, उसके क्रोध का वेग शान्त होता गया। कविराज जी से और कुछ चाहे उसने न सीखा हो, किन्तु क्रोध के क्षण में सोचना अवश्य सीख लिया था। 'कोई भी बात क्रोध में न करो'— यह उनका कथन था और क्रोध के होते भी चेतन एक ओर अपने वांछित भावी कृत्य और दूसरी ओर उसके औचित्य-अनौचित्य पर अपने मन में विचार करता जा रहा था। उसे लगता था कि अभी कविराज जी के पास जाना तो उसकी मूर्खता होगी। वह जायेगा, शोर मचायेगा, कविराज उल्टा उसे लज्जित करेंगे और उस पर अहसान का बोझ लादते हुए उसे चारपाई ले देंगे। न, वह इस प्रकार चारपाई न लेगा। उसे और किस बात का आराम है जो वह चारपाई लेकर कृतज्ञ हो? वह अभी तक नौकरों की बे-छत की टट्टी में शौचादि से निवृत होने के लिए जाता है; उस सर्दी में कमेटी के नल पर नहाता है, अछूतों की तरह उनके घर में रहता है। तो फिर यदि धरती पर सो लेगा तो उसका कौन-सा अपमान हो जायगा? अब असत्य उनके जीवन का स्वभाव बन गया है, और जब उस असत्य को भली-भाँति जानकर, समझकर वह उनके लिए पुस्तक लिखने को तैयार हो गया है, तब उसी असत्य का एक दूसरा रूप सामने आने पर इतनी आकुलता क्यों? क्यों न सदा के लिए उसी रूप को उनका यथार्थ रूप मान ले। जिस काल्पनिक व्यक्ति के नाम उसने भावुकता-वश पुस्तक समर्पित की थी, उसे क्यों न भूल जाय? उन कविराज को उसकी भावुकतामय-कल्पना ने देखा था, इनको उसके अनुभव ने। तो फिर वह अपने अनुभव को ही पथ-प्रदर्शक क्यों

न माने, क्यों कल्पना का भुलावा खाये और बार-बार उसके मिथ्या होने पर दुख पाये ?

और यह सब सोचकर चेतन स्वस्थ हो गया था। उसका क्रोध तूफ़ान नहीं बना, बवण्डर नहीं बना, एक घुमड़न-सी बनकर अन्दर-ही-अन्दर मिट गया। किन्तु वह घाव जो चेतन के मन में इस कपट के कारण हो गया था, नहीं मिटा; इस घटना से वह कुछ और गहरा ही हुआ।

कविराज जी सुबह उससे आँखें मिलाये बिना गुज़र गये थे। किन्तु शाम को जब वे आये तो सीढ़ियों की खिड़की में से झाँककर उन्होंने पूछा कि वह मज़े में तो है और उसे पिस्सुओं ने तो नहीं काटा। "राजकुमार तो भाग आया उठकर," उन्होंने कहा, "बच्चा है न आखिर।" और वे हँसे।

तब चेतन ने कहा कि वह बड़े मज़े में है, उसके रक्त में इतना विष भरा है कि पिस्सू उसे काटें तो मर जायँ।

इस पर कविराज जी ने खीसें निपोर दीं और अन्दर चले गये।

—o—

३६

राजकुमार उसके कमरे में सोया न था, किन्तु उसके पास पढ़ने के लिए दूसरे ही दिन समय पर आ गया था। चेतन चाहता था, उसे कह दे कि वह पुस्तक लिख रहा है, उसके पास समय नहीं, किन्तु वह कुछ भी न कह सका और चुपचाप उसे पढ़ाने लगा।

जब राजकुमार दूसरे ही दिन पढ़ने आया तो चेतन ने उसके हाथ में आबनूस की एक सुन्दर बाँसुरी देखी। जब वह पढ़ चुका तो चेतन के एक-दो बार कहने पर उसने उसे बाँसुरी बजाकर सुनायी। चेतन

बड़ा प्रसन्न हुआ। राजकुमार तो पढ़ ही चुका था, अपना लिखना-पढ़ना समेट वह राजकुमार के साथ ईदगाह गया और दोनों बड़ी देर तक वहाँ बाँसुरी की धुनों में मस्त रहे।

चेतन को स्वयं बाँसुरी बजाने का बड़ा शौक़ था। जब वह बहुत छोटा था तो हरलाल पंसारी की दुकान पर एक रँगरेज आया करता था। वह इतनी सुन्दर बाँसुरी बजाता था कि चेतन, जहाँ कहीं भी हो, उसकी बाँसुरी का स्वर सुनते ही भाग आता था। पहले पहल शायद उसकी बाँसुरी सुनकर चेतन के मन में बाँसुरी बजाने का शौक़ पैदा हुआ था। वह मेले से एक अढ़ाई आने की बाँसुरी लाया भी था किन्तु उससे फूँक ही न देते बनी थी। हारकर बाँसुरी छोड़, वह मनोविनोद के अन्य साधनों में व्यस्त हो गया था। फिर भी जब कभी कोई मदारी मुहल्ले में आता और एक हाथ से डुगडुगी और दूसरे से बाँसुरी बजाता हुआ तमाशा देखने वालों के घेरे में घूमता तो चेतन का शौक़ फिर दुगने वेग से उमड़ उठता। वह फिर पैसा-पैसा जोड़कर बाँसुरी ख़रीद लाता और तब तक उसमें फूँकता रहता जब तक उसका सिर न दुखने लग जाता। धीरे-धीरे उसे बाँसुरी में फूँक देना आ गया। तब वह महावीर दल में भरती हो गया ताकि दल के बैंड वालों से बाँसुरी की ट्यूनें सीख ले। बैंड वालों की बाँसुरियों को देखकर उसे स्वयं आबनूस की एक बाँसुरी ख़रीदने की इच्छा हुई थी। किन्तु जालन्धर में तब ऐसी कोई दुकान न थी जहाँ से सब तरह के वाद्य-यंत्र खरीदे जा सकें। इसलिए यह इच्छा कई वर्ष तक उसके अन्तर में दबी रही थी। किन्तु उसने पहला अवसर पाते ही बाँसुरी ख़रीदी।

१६२६ की बात है। मैट्रिक करने के बाद कॉलेज में प्रवेश किये उसे कुछ ही महीने हुए थे कि लाहौर काँग्रेस का अधिवेशन आ गया। अनन्त के साथ चेतन भी उसे देखने गया। वे तो कदाचित् कभी जा

न पाते । लाहौर जाने, वहाँ रहने, खाने-पीने और काँग्रेस का अधिवेशन देखने की व्यवस्था वे कैसे करते ? इतना धन कहाँ से पाते ? किन्तु उनके साथ ही, उन्हीं की श्रेणी में, जालन्धर की काँग्रेस कमेटी के प्रधान का पुत्र पढ़ता था । उसने उनको राह सुझा दी । स्थानीय काँग्रेस कमेटी ने काँग्रेस के अवसर पर स्वयंसेवक भेजने का निश्चय किया था और कुछ स्वयंसेवकों की वर्दियों तथा एक ओर के किराये का प्रबन्ध अपने ज़िम्मे ले लिया था । प्रधान का लड़का खास तौर पर लाहौर के ट्रेनिंग कैम्प से ट्रेनिंग लेकर आया था और उसने जालन्धर में ट्रेनिंग कैम्प खोला था । उसी की सहायता और सिफ़ारिश पर वे दोनों यह सुविधा पा गये । चन्द दिन उन्होंने ट्रेनिंग ली और बड़े धड़ल्ले से लाहौर काँग्रेस का अधिवेशन देखने चले गये ।

वहीं अनारकली में एक दुकान पर उसे हारमोनियम और दूसरे वाद्य-यंत्र रखे हुए दिखायी दिये । एक शीशे की आलमारी में आबनूस की बाँसुरियाँ भी थीं । चेतन वहाँ रुक गया । सब कुछ भूलकर वह दुकान में चला गया । उसने भिन्न-भिन्न बाँसुरियों का मूल्य पूछा । उसे जो सबसे अच्छी लगी, उसकी क़ीमत पाँच रुपये थी । वह दो हिस्सों में विभक्त हो जाती थी और उसमें एक कुंजी भी थी । वह यही ख़रीदेगा, इस बात का निश्चय करके वह दुकान से उतर गया ।

इसके बाद पाँच दिन तक वह और वहाँ रहा । अगणित चीज़ें वहाँ देखने को थीं—अगणित ख़रीदने की, पर उसके पास वही पाँच रुपये थे जो उसने अभी तक बचाकर रखे हुए थे—खाना वह (स्वयंसेवक होने के कारण) काँग्रेस के लंगर से खाता रहा और 'अप अप विद माश की दाल,' 'डाउन विद मूंग की दाल'* और वैसे ही दूसरे नारों का आनन्द (जो मन पसन्द चीज़ों के मिलने अथवा न मिलने पर

*माश की दाल की जय, मूँग की दाल का क्षय !

लगाये जाते थे) मुफ़्त में लेता रहा। नहाने-धोने के लिए साबुन-तेल काँग्रेस के स्नान-गृहों में मिल जाता था। इस तरह उसने अपने पाँच के पाँच रुपये बचा लिये थे। वापस जाने का किराया उसने अनन्त से उधार ले लिया और जब वे वहाँ से चले तो उसने जाते-जाते ताँगे से पाँच मिनट के लिए उतरकर वही बाँसुरी खरीद ली।

बाँसुरी पाकर उसे इतनी खुशी हुई कि उसका जी चाहा, वह स्टेशन तक उसे बजाता ही चले। किन्तु सामान के अधिक होने के कारण ताँगे में इस बात की सुविधा न थी। इसलिए उसने रास्ते में बाँसुरी बजाने का लोभ संवरण किया और उसे अपने ओवरकोट के अन्दर की जेब में रख लिया।

स्टेशन पर भीड़ इतनी थी कि टिकट लेना चेतन के बस की बात न थी, इसलिए यह भार अनन्त ने अपने कन्धों पर लिया और चेतन सामान की रखवाली करने लगा। जब अनन्त उस बेपनाह भीड़ में घुस गया और सामान उतारकर चेतन ने गिन लिया तो वह बिस्तर पर मज़े से बैठ, बाँसुरी के दोनों हिस्सों को जोड़, मस्त हो उसे बजाने लगा। वह भूल गया कि वह स्टेशन के मुसाफिरखाने में बैठा है, भूल गया कि स्टेशन पर अपार भीड़ है, टिकट मिलेगा या नहीं, उन्हें रात उसी मुसाफ़िरख़ाने में तो न बितानी पड़ेगी—वह सब कुछ भूल गया और अपने चिर-परिचित गीत एक-एक करके बजाने लगा। कितनी सुरीली थी वह आबनूस की बाँसुरी !

वह उसकी स्वर-लहरी में गुम था टिकट लेकर घबराया हुआ अनन्त आया। साँस उसकी फूली हुई थी, कपड़े अस्त-व्यस्त थे, "तुम यहाँ बैठे बाँसुरी में मस्त हो और वहाँ गाड़ी चलने ही वाली है !" उसने चीख़कर कहा और गेट की ओर लपका।

चेतन ने घबराहट में बाँसुरी उसी तरह कोट के अन्दर की जेब में रखी और कुली के सिर पर सामान उठवाकर वह भी उसके पीछे

भागा। जब बड़ी कठिनाई के बाद वह गाड़ी में सवार हुए और उन्हें अपने बिस्तरों को रखने और उन्हीं पर बैठने की जगह मिल गयी तो चेतन ने अपने बिस्तर पर बैठकर, डिब्बे की दीवार के साथ अपनी पीठ लगा, बाँसुरी निकालने के लिए ओवरकोट के अन्दर की जेब में हाथ डाला। उसका दिल धक से रह गया। बाँसुरी ग़ायब थी। शायद सामान उठाते समय झुकने के कारण जल्दी में गिर गयी थी या भीड़ में किसी ने खींच ली थी। गाड़ी चलने ही वाली थी। अनन्त ने कहा भी कि बैठे रहो, और खरीद लेना, पर चेतन अन्धाधुन्ध लाइनें फलाँगता हुआ वापस वहाँ गया जहाँ वे बैठे थे। किन्तु बाँसुरी वहाँ होती तो भी उस जल्दी में उसे न मिलती और इतनी भीड़ में वह धरती पर पड़ी ही कैसे रह पाती। चेतन की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उद्भ्रान्त-सा वह वापस पलटा।

वह इस तरह पागलों की भाँति इधर-उधर भटक रहा था कि अनन्त यदि बाहर खिड़की में न खड़ा होता तो चेतन अपना डिब्बा कभी न ढूँढ़ पाता। रात के एक बजे जब गाड़ी जालन्धर पहुँची और किसी न किसी तरह रेलवे रोड, पंजपीर और चौरस्ती अटारी पार कर वह घर के दरवाज़े पर पहुँचा तो अन्दर प्रवेश करते ही उसकी आँखों से अनायास आँसू बहने लगे।

राजकुमार की बाँसुरी को देखकर चेतन के हृदय में एक टीस-सी उठी थी। काँग्रेस अधिवेशन के उन सात दिनों कठिन संयम और उस संयम के बाद का वह क्षणिक उल्लास और लम्बी निराशा उसके सामने घूम गयी। किन्तु समय ने उस घाव को काफ़ी हद तक भर दिया था। आबनूस की बाँसुरी तो वह फिर ख़रीद न सका था, पर बाँस की पोरी उसके ट्रंक में अब भी पड़ी थी, जिसे वह कुछ बीवी जी की भ्रू-भंग, कुछ पड़ोसियों के क्रोध और कुछ सामने घर में रहने वाले बाबू

चरणदास की सन्देहशीलता के कारण बाहर न निकाल पाया था। किन्तु राजकुमार के साथ बाँसुरी बजाने का अधिकार पाकर उसने सोल्लास वह बाँस की पोरी फिर निकाल ली थी।

कुछ दिनों के लिए चेतन अपने एकान्त को एकदम भूल गया। अपने अवकाश के समय वह राजकुमार के साथ नीचे घाटियों में उतर जाता और वे दोनों इकट्ठे मिलकर बाँसुरी बजाते।

४०

चेतन का यह नया स्वर्ग चन्द दिनों ही रहा और उन चन्द दिनों में उसके अवकाश का सारा समय राजकुमार से साथ बाँसुरी बजाने और घूमने-फिरने में बीता। इस बीच राजकुमार ने नये मित्र बना लिये, वह उनसे खुल गया और चेतन के साथ सारा वक्त बंशी बजाना उसे अखरने लगा। और चेतन ने भी राजकुमार की सारी तरजें सीख लीं और बाँसुरी बजा-बजाकर सिर दुखा लिया। तब राजकुमार नये मित्रों के पास पहुँचा और चेतन ने साहित्य की शरण ली।

कुछ दिन तक उसने अवकाश के समय में उपन्यास लिखने का प्रयास किया, किन्तु जाने क्यों, भरसक प्रयास करने पर भी उसका उपन्यास आगे न चला। उसने अधिक उपन्यास न पढ़े थे, उपन्यासों के सम्बन्ध में उसका ज्ञान प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासों, बंगाली से अनूदित कुछ उपन्यासों अथवा उन दो-एक अँग्रेज़ी उपन्यासों तक ही सीमित था जो उसने पाठ्य-पुस्तकों के रूप में पढ़े थे और इतनी पूँजी के साथ अच्छा उपन्यास लिखना उसके बस की बात न थी। पर इस यथार्थता को समझे बिना वह लिखे जा रहा था। अपनी भावनाओं

को व्यक्त करने की प्रबल इच्छा उसके अन्तर में निरन्तर अँगड़ाइयाँ लिया करती थी और वह लिखे जाता था। पर उपन्यास-कला पर क्योंकि उसका कोई अधिकार न था, इसलिए उसका उपन्यास बार-बार अटक जाता। अड़ियल टट्टू की भाँति आगे बढ़ने से इन्कार कर देता! जब बीसियों स्लिपें काली करने पर भी उपन्यास ने यथेष्ट प्रगति न की तो एक दिन हारकर उसने सब-की-सब स्लिपें उठाकर एक ओर रखीं और निश्चय किया कि वह पहाड़ी लोगों के जीवन पर कहानियाँ लिखेगा।

किन्तु पहाड़ी लोगों के जीवन का उसे कुछ भी ज्ञान न था। कल्पना की सहायता से उसने जो कहानी लिखी, वह उसे एकदम असम्भव लगी।

तब कहानी छोड़ उसने कविताएँ लिखने का प्रयास किया, किन्तु न जाने उसकी कविता के सोते को क्या हो गया था? यत्न करने पर भी उससे कोई कविता न बन पड़ी। कॉलेज के दिनों में जब उसने कुन्ती को देखा था तो कविताएँ उड़ती-सी, बहती-सी उसके मस्तिष्क में आ जाती थीं। चलता-चलता वह गुनगुनाता तो किसी-न-किसी कविता की पंक्ति बन जाती, पर अब यदि कुन्ती का ध्यान करता तो उसके सामने उसके पति की मृत्यु के दिन देखी हुई उसकी आकृति, अपने विवाह का वह दिन, पिता और भाइयों का झगड़ा और बीसियों दूसरी बातें आ जातीं और कविता न जाने कहाँ पंख लगाकर उड़ जाती।

सिर को झटक, उन दृश्यों को फिर विस्मृति के महागर्त में ढकेलकर वह नीला का ध्यान करता और चाहता कि कोई सुन्दर-सी कविता लिखे। किन्तु इस बार पहले दृश्यों से भी कटु दृश्य उसकी आँखों के सामने घूमने लगते। वह देखता कि नीला उससे रुष्ट है और वह उसे मना रहा है....देखता कि नीला के पिता ने तत्काल उसका विवाह कर दिया है और वह कहीं सुदूर प्रदेश को जा रही है....उसके हृदय को प्रबल आघात-सा लगता और कविता की पंक्तियाँ उसकी पहुँच से कहीं

दूर—कहीं बहुत दूर उड़ जातीं।

और वह सोचने लगता कि आखिर नीला के विवाह की बात सुनकर उसे दुख क्यों होता है? वह स्वयं विवाहित है, अपनी पत्नी से घृणा भी नहीं करता। स्वयं ही उसने पण्डित वेणी प्रसाद से नीला का विवाह कर देने को कहा है। फिर यह पीड़ा कैसी? और वह मन-ही-मन अपने आपसे लड़ता-झगड़ता, कविता लिखने का विचार छोड़, कभी कविराज जी की पुस्तक लिखने में मग्न हो जाता और कभी माल रोड को चल देता।

———

४१

जब चेतन बार-बार उपन्यास या कहानी या कविता लिखने का विफल प्रयास कर थक गया और माल, मिडिल या लोअर बज़ार अथवा जाकू के चक्कर उसकी उदासी और एकाकीपन को कम करने के बदले बढ़ाने लगे तो एक दिन सहसा उसे पता चला कि वह साहित्य के पीछे योंही लट्ठ लेकर पड़ा हुआ है। वह तो संगीतज्ञ बनने के लिए पैदा हुआ है।

वह पाँच नम्बर की सीढ़ियों से होकर खाना खाने जा रहा था कि मिडिल बाज़ार के कोने के एक रेस्तोराँ से उसे गाने की मधुर ध्वनि सुनायी दी।

कौन देस गया पिया मोरा बालम रे
मैं तो वाहु देश की बलिहारी

वहीं सीढ़ियों पर मन्त्र-मुग्ध-सा वह खड़ा रह गया। इतना तरल, मधुर, करुण संगीत था कि उसके पाँव वहीं जमे रह गये। जब वह ध्वनि बन्द हुई तो वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतरने लगा, किन्तु उसे

लगा जैसे वह करुण-मधुर ध्वनि बराबर उसका पीछा कर रही है।

गाना पक्का था और जैसा कि उसे बाद में पता चला 'खयाल मुलतानी' में गाया जा रहा था। न जाने रागिनी ही सुन्दर थी अथवा गाने वाले के स्वर में जादू था, उस समय जब वह फिर अपने आपको एकाकी अनुभव कर रहा था, इस गाने ने उसके एकाकीपन को मिटा दिया, उसकी कल्पना को फिर पंख लग गये और वह फिर नयी बस्तियों में घूमने लगा और घर जाकर जब वह लेटा तो उसके कानों में वही ध्वनि गूँजती रही।

दूसरे दिन दोपहर को वह फिर उसी गली से होकर खाना खाने गया। उसके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने रेस्तोराँ के बाहर एक ओर, पूरी-की-पूरी दीवार को अपनी लम्बाई में लिये हुए, एक बड़ा भारी बोर्ड लगा हुआ देखा जिस पर बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा था :

सिंह-संगीत विद्यालय

एक दिन जब वर्षा हो रही थी और वह अपना वही पुराना ओवर-कोट छाती से कसे खाना खाकर वापस जा रहा था, उसे फिर वही मादक ध्वनि सुनायी दी। तब चेतन रेस्तोराँ से अन्दर चला गया। किचन से उठने वाली घटिया घी और प्याज़ की दुर्गन्ध से उसका दिमाग़ भन्ना उठा। नाक पर रूमाल रखे किचन के सामने से घूमकर वह म्युज़िक कॉलेज के दरवाज़े के सामने आ खड़ा हुआ।

चिक को थामे-थामे उसने देखा—एक छोटा, किन्तु साफ़-सुथरा कमरा है, फ़र्श पर दरी बिछी हुई है जिस पर एक हारमोनियम और तबले की जोड़ी पड़ी है। मंटलपीस पर कमरे की दीवारों के रंग से मेल खाता हुआ एक कपड़ा बिछा है जिस पर एक कलेण्डर, चीनी के फूल-दान और दो चीनी ही के चूहे क़रीने से रखे हैं। तबले और हारमो-नियम के अतिरिक्त कमरे में और कोई साज़ नहीं।

उस कमरे के मध्य एक बारह-चौदह वर्ष का लड़का वही हारमो-

नियम लिये बैठा था। शायद वही मुलतानी का ख़याल गा रहा था और यद्यपि वह खादी का एक धुला साफ़ पायजामा, छपी हुई खादी ही की अचकन और सिर पर रागियों जैसा साफ़ा पहने था, किन्तु रूप-रंग से वह झीवर मालूम होता था। (और चेतन का अनुमान ग़लत न निकला क्योंकि बाद में उसे मालूम हुआ कि वह झीवर ही था) उसे बैठे हुए देखकर चेतन आश्वस्त-सा हो अन्दर दाख़िल हुआ।

"आइए!" किवाड़ के पीछे से आवाज़ आयी। कुछ इस तरह जैसे किसी ने पूछा "कहिए कैसे कृपा की?"

चेतन ने चौंककर देखा दरवाज़े की ओट में दीवार के साथ तीन लोहे की कुर्सियाँ रखी थीं। उनमें से एक पर सुरुचिपूर्ण तथा बहु-मूल्य सूट पहने एक सुन्दर सिख युवक शर्माये हुए मेहमान-सा बैठा था।

"बैठिए!"

चेतन को यह आवाज़ बड़ी मीठी लगी—दोपहर की निस्तब्धता में सहसा बज उठने वाली किसी बैल के गले में बँधी घण्टी के स्वर-सी! चेतन कुर्सी पर बैठ गया!

"फ़रमाइए!" उस युवक ने फिर कहा।

"प्रो० साहब कब आयेंगे?" कुछ और कह सकने में अपने आपको अशक्त-सा पाकर चेतन ने पूछा।

"फ़रमाइए!"

उस स्वर में मिठास के साथ कुछ ऐसा आत्म-विश्वास था कि चेतन ने पूछा, "आप ही प्रो० सिंह हैं?"

उस युवक ने सिर हिलाकर उत्तर दिया कि 'हाँ' तब चेतन निमिष भर के लिए चकित-सा उसे देखता रहा। उसका विचार था कि प्रो० सिंह कोई ईसाई होंगे अथवा कोई केश-रहित सिख। उम्र भी प्रो०

साहब की उसने चालीस-पचास के ऊपर ही समझी थी और रागियों जैसी बड़ी-सी पगड़ी की भी उसने कल्पना की थी। किन्तु उस काल्पनिक व्यक्ति के स्थान पर इस चौबीस-पच्चीस वर्ष के कोमल कान्त सिख युवक को देखकर वह चकित-सा रह गया। चेतन को विश्वास हो गया कि जो मादक स्वर-लहरी वह सीढ़ियों पर खड़ा नित्य सुनता रहा है, वह इसी सुन्दर कण्ठ से निकली होगी। उसका जी चाहा कि किसी प्रकार सामने बैठकर उनका गाना सुने, किन्तु उसके मुँह से तो शब्द भी न निकल रहा था। आख़िर प्रोफ़ेसर साहब ने उसकी मुश्किल हल कर दी, "कहिए कैसे आये?"

"इधर खाना खाने आया करता हूँ," चेतन ने साहस बटोरकर कहा, "आपका बोर्ड पढ़ा। आपसे मिलने का शौक पैदा हुआ। गाना सुनने और सीखने का मुझे शौक है, इसलिए चला आया।"

प्रोफ़ेसर साहब खुश हुए, क्योंकि वे मुस्कराये। चेतन भी खुश हुआ, क्योंकि उसे उनकी मुस्कान बड़ी भली लगी। कुछ और साहस पाकर उसने पूछा, "आप यहीं गाना सिखाते हैं?"

प्रश्न कुछ निरर्थक-सा था, इसलिए प्रोफ़ेसर साहब केवल मुस्कराये।

वे इतना अच्छा मुस्कराते थे कि चेतन शायद फिर कोई ऐसा ही निरर्थक प्रश्न करता, किन्तु उसी समय प्रो० साहब ने अपनी टाई की गिरह को ठीक किया और चेतन को उनके और अपने कपड़ों के अन्तर का ध्यान आ गया। वह ज़रा-सा घबरा भी गया। हकलाते हुए उसने पूछा :

"यहाँ सिखाने की फ़ीस आप क्या लेते हैं?"

"पाँच रुपये।"

चेतन पूछने वाला था कि घर पर सिखाने की फ़ीस आप क्या लेते हैं! किन्तु उसे यह प्रश्न सर्वथा निरर्थक लगा। वह घर पर कहाँ सीख सकता है? कुछ सोचकर उसने पूछा, "आप किस समय

सिखाते हैं ?"

"सुबह दस से एक बजे तक, फिर शाम को चार से छः बजे तक।"

तब चेतन कुछ और न कह सका। वह उठा। चलते-चलते उसने केवल इतना और पूछा कि फ़ीस तो वे पहले ही लेते होंगे। जब उत्तर में प्रोफ़ेसर साहब फिर मुस्कराये तो चेतन ने इतना और कहा कि वह शिमले में कविराज रामदास के साथ आया हुआ है, उन्हीं के साथ काम कर रहा है। पहली को वेतन मिलेगा तो वह उनकी सेवा में उपस्थित होगा।

प्रोफ़ेसर साहब की मुस्कान ज़रा देर तक फैली रही। चेतन स्वभावानुसार 'नमस्ते' और फिर ज़रा घबराकर 'सत श्री अकाल' कह-चला आया।

—o—

४२

सन्ध्या का समय था और पश्चिम में अस्त होता हुआ सूर्य तेज़ आग से चमकते हुए पिघले सोने के-से रंग का हो रहा था। लगता था जैसे किसी अज्ञात, अदृश्य आतप ने साँझ के उस सोने को पिघला दिया है और उसका पीला रंग लाल होता-होता आँच की तीव्रता में उन्नाबी लग रहा है। जाकू के ऊपर बादल गुलनार हो रहे थे और माल की दुकानों के कंगूरों पर उस जलते हुए सोने का अन्तिम प्रतिबिम्ब झलक रहा था।

बगल में अपना नया ख़रीदा सितार दबाये, चेतन रिज पर से होता हुआ माल की ओर जा रहा था। सितार पर गहरे नीले रंग की खादी का ग़िलाफ़ चढ़ा हुआ था, जिसके सिरे पर लाल रंग का फूल बना था। ग़िलाफ़ का नेफ़ा और डोरी भी फूल ही के रंग की थी।

पिछले दो महीने से दस रुपये मासिक अपने बड़े भाई को और सात रुपये ढाबे की भेंट करके शेष जो बचता था, वह चेतन म्युज़िक कॉलेज की भेंट करता आ रहा था। उसने एक दिलरुबा खरीद कर कॉलेज में रख दिया था कि उसके बदले में प्रोफ़ेसर सिंह उसे अपने हारमोनियम पर अभ्यास कर लेने दिया करें। अपने तीसरे महीने के वेतन से उसने यह सितार खरीद लिया था और जो पैसे बचे थे, उनसे गिलाफ बनवा लिया था। सारा महीना कैसे बीतेगा, इस बात की उसे चिन्ता न थी। कलाकार के गर्व से सिर उठाये वह चला जा रहा था। उसे लग रहा था, जैसे उसके पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे, हवा में पड़ रहे हैं। उस काली, कठोर सड़क से वह ऊपर उठ गया है और राग-भीनी साँझ के उस रँगीले सौन्दर्य में उड़ा जा रहा है।

उस समय ही क्यों, प्रायः महीने भर से—प्रायः उसी क्षण से जब उसने पाँच नम्बर की सीढ़ियों पर खड़े होकर सुना था—कौन देश गया पिया मोरा बालम रे—वह धरती से ऊपर उठ गया था। उसके क्षण उन्मन और एकाकी न रहे थे। उसके स्वप्न उसे मिल गये थे।

उसे सपनों ही की आवश्यकता थी—सदैव सपनों ही की आवश्यकता रही थी—फिर वे स्वप्न चाहे नीला का प्रेम पाने के हों; चन्दा के साथ सफल-सुखद जीवन व्यतीत करने के हों; महान् चित्रकार, वक्ता अथवा लेखक बनने के हों; या फिर एक बार पुनः कॉलेज में प्रविष्ट होकर लाहौर के विद्यार्थी-जीवन का आनन्द लूटने के हों। वे स्वप्न ही उसका जीवन थे, जीवन की स्फूर्ति थे। उसी के क्यों, कदाचित् मानव-मात्र के जीवन की स्फूर्ति यही स्वप्न हैं, जो मानव को जीवन की इस ऊबड़-खाबड़ सड़क की कठोरता, इसकी कालिमा, इसकी कंटकाकीर्णता भुलाकर इससे ऊपर उठा देते हैं और मानव हवा में तैरता हुआ-सा अनुभव करता है। ये स्वप्न जितने रंगीन होते हैं उतनी ही लगन से वह इस कठोर, काली, ऊबड़-खाबड़ सड़क पर भागा चला

जाता है।

चेतन के स्वप्न भी उन दिनों आषाढ़ के बादलों की भाँति उमड़े आते थे और चेतन की गति भी इनके साथ तीव्र हो रही थी। काम करने में अब उसका जी लगता था। वह प्रायः रोज़ पुस्तक का एक परिच्छेद लिखता और उसका संशोधन करता आ रहा था। वह इतनी तेज़ी से काम कर रहा था कि पुस्तक लगभग लिखी जा चुकी थी। उसी तेज़ी से वह संगीत की शिक्षा भी ग्रहण कर रहा था। स्वर-अध्याय को पार करके और विभिन्न सरगमों को पकाने के बाद अब उसने एक दो रागनियों के बोल भी सीख लिये थे। किन्तु उसके स्वप्न सदा की तरह उससे कहीं आगे भाग रहे थे। यही कारण था कि यद्यपि उसका संगीत-सम्बन्धी ज्ञान अभी न होने के बराबर था और यद्यपि उसका हाथ अभी ठीक ढंग से हारमोनियम के पर्दों पर चला भी न था, किन्तु उसने दिलरुबा और सितार ख़रीद लिये थे और तबला लेने की चिन्ता में था। उसके पास धन का अभाव था, नहीं उसका बस चलता तो वह सारे-के-सारे बाजे एक ही बार ख़रीद लेता।

ये दोनों बाजे ख़रीद लेने पर चेतन ने बस नहीं की। दिलरुबा के लिए प्लाईवुड का खोल और सितार के लिए यह ग़िलाफ़ उसने बनवाया। दिलरुबा तो ख़ैर कॉलेज ही में पड़ा रहता था, किन्तु यद्यपि उसे सितार लेकर बैठना भी न आता था, वह प्रतिदिन सन्ध्या के समय उसे लेकर कॉलेज जाता और जाते अथवा आते समय सितार को बग़ल में दबाये माल अथवा लोअर बाज़ार का एक चक्कर लगाना न भूलता। इसके अतिरिक्त वह सारा दिन मिज़राब पहने रहता और जब किसी से बात करता तो अनजाने ही में मिज़राब वाली उँगली एक-दो बार अवश्य दिखाता।

यह मिज़राब छोटी थी अथवा क्योंकि उसने पहले कभी न पहनी थी, इसलिए इससे चेतन की उँगली पर निशान बन गया था, पीड़ा

होने लगी थी और अब वह मिडिल बाज़ार के साज़ वाले की दुकान पर जा रहा था कि अपेक्षाकृत कुछ बड़ी मिज़राब ले आये।

शिवालय के पास से होकर चेतन मिडिल बाज़ार में दाखिल हुआ। नानबाइयों की दुकानों से धुआँ उठ रहा था। सन्ध्या के धूमिल प्रकाश को और भी धूमिल बनाने वाले उस धुएँ में कुछ हातो अपने मैले गन्दे शरीरों पर कीचड़ से चीथड़े लपेटे खाना खा रहे थे। चेतन अपने ध्यान में मग्न पथरीली गली में चलता-चलता वाद्य-यंत्रों वाले की दुकान पर पहुँचा और उसने एक मिज़राब माँगी।

उस समय वहाँ एक और व्यक्ति चेतन ही की तरह पुराना ओवर-कोट पहने खड़ा था। चेतन के सामने उसने भी मिज़राब ख़रीदी। चेतन ने उस व्यक्ति को एक नज़र देखा। उसके सिर पर एक तुर्की टोपी थी, किन्तु गंजेपन की हद को पहुँचे हुए उसके मस्तक को छिपाने में वह सर्वथा अशक्त थी। उसके गले में मोटी मखमल की चुन्नटदार कमीज़ और टाँगों में मैला-सा पायजामा था। 'कोई पहुँचा हुआ कलाकार है' —चेतन ने मन-ही-मन सोचा। प्रो० सिंह सितार के उतने विशेषज्ञ न थे, यह उसने सितार ख़रीदते ही जान लिया था, इसलिए चेतन बहुत दिनों से किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में था जो उसे सितार की शिक्षा दे सके। इस कलाकार को देखते ही उसने तत्काल फ़ैसला कर लिया कि वह अवश्य उससे सितार बजाना सीखेगा। जब वह व्यक्ति मिज़राब लेकर चलने लगा तो चेतन ने उसके साथ चलते हुए पूछा, "आप भी सितार का शौक़ रखते हैं?"

कलाकार के ओठों पर एक थकी-सी मुस्कान फैल गयी, "जी, योंही कुछ बजा लेता हूँ!"

चेतन ने समझा अपरिचित कलाकार-सुलभ-विनम्रता से काम ले रहा है। उसने अपना परिचय दिया, प्रो० सिंह से अपने सम्बन्ध का

उल्लेख किया और फिर प्रार्थना की कि यदि वे अपना निवास-स्थान दिखा दें तो वह कभी-कभी आ जाया करेगा। और जब उस अपरिचित कलाकार ने किसी प्रकार की आपत्ति प्रकट न की तो चेतन उसी तरह बग़ल में सितार लिये उसके साथ चल पड़ा।

सूरज कब का छिप चुका था जब मिडिल बाज़ार को पार करके वे माल पर चढ़े और वहाँ से स्टेशन को जाने वाली सड़क की ओर मुड़ गये। सीधी सड़क से हटकर कई दूसरी सड़कों और टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों को पार करके वह अपरिचित उसे जिस कमरे में ले गया, वह किसी कोठी का किचन (बावर्चीखाना) था—अत्यन्त गन्दा और दुर्गन्ध भरा ! पत्थर के कोयले की दुर्गन्ध, अँगीठी के जल चुकने के बाद भी, अभी तक कमरे में बसी हुई थी। चेतन का दम घुटने-सा लगा। कुछ क्षण बाद उसे ज्ञात हुआ कि बावर्चीखाने में केवल पत्थर के कोयले की दुर्गन्ध ही नहीं, बल्कि न जाने कितने प्रकार की मांस-मछली की दुर्गन्ध भी मिली है—इस प्रकार कि उसका विश्लेषण करना कठिन है। इस दुर्गन्ध से चेतन का दम घुटने लगा था, किन्तु जब उस कलाकार ने एक कोने में पड़े हुए मैले-से सन्दूक की ओर संकेत किया तो वह बिना कुछ कहे विमूढ़-सा उस पर बैठ गया।

तब वह कलाकार वहीं एक खूँटी पर टँगा हुआ एक छोटा-सा धुआँसा कछुआ उठा लाया जिसकी चिकारियाँ टूटी हुई थीं और जिसके तूम्बे पर धुएँ की इतनी मैल जमी हुई थी कि असली रंग ही लुप्त हो गया था। तब वहीं एक मैले-से स्टूल पर बैठकर उस कलाकार ने चेतन को सितार का पहला पाठ पढ़ाया :

दिर दा रा, दा रा, दा दा रा

चेतन की समझ में कुछ न आया। उसने पूछा, "आप क्या बजा रहे हैं ?"

"मेरी भैंस के डण्डा क्यों मारा !" कलाकार ने सितार बजाते हुए

गम्भीरता से कहा।

चेतन स्तम्भित-सा उसके मुँह की ओर देखने लगा।

"हमारे उस्ताद ने हमें पहले यही सिखाया था," पहुँचे हुए कलाकार ने कहा, "ज़रा अपना सितार निकालो।"

चेतन का जी वहाँ से भाग जाने को हो रहा था। पर उसने अपना सितार निकाला। तब कलाकार ने चेतन को बताया कि तार पर मिज़राब की चोट से 'दा' कब बजता है, 'रा' कब 'दिर' कब, और उसने बजाया :

दिर दा रा, दा रा, दा दा रा

और गाया

मेरी भैंस के डण्डा क्यों मारा!

चेतन ने यह पाठ कागज़ पर लिख लिया, एक-दो बार सितार पर बजा भी लिया, किन्तु उसे लगा कि यदि वह कुछ और देर उस बावर्चीखाने में बैठा तो उसके सिर में असह्य पीड़ा होने लगेगी। उसकी कनपटियों में दर्द होने लगा था और जी मतला रहा था, इसलिए उसने जाने की आज्ञा माँगी।

किन्तु उस समय वह कलाकार, जो न जाने साहब का बैरा था, जमादार था या धोबी, तन्मय होकर सितार बजाने में लीन था। खानासामा फ्राइंग पैन में जाने किस चीज़ को छौंक रहा था कि धुएँ से चेतन की आँखों में पानी निकल आया और वह खाँसने लगा। बेबसी की दृष्टि से उसने उस कलाकार की ओर देखा—आँखें बन्द थीं और मिज़राब तारों पर चल रही थी।

अन्ततः जब उस कलाकार ने गाना समाप्त करके आँखें खोलीं तो चेतन ने भरे हुए गले से फिर जाने की आज्ञा चाही। कलाकार अपने उस कछुए को साथ ही लिये हुए उस किचन से बाहर निकल आया और चेतन को अपने निवास-स्थान पर ले गया, जो अत्यन्त अँधेरी, सील-भरी, दिये की लौ से प्रकाशित, उस कोठी के सर्वेण्ट्स

क्वार्टर्ज़ की एक कोठरी थी—नौकरों के ये क्वार्टर एक दोमंज़िले छप्पर की सूरत में थे। इस छप्पर में तीन-चार कोठरियाँ नीचे और तीन-चार ऊपर थीं। लकड़ी की एक हिलती-सी सीढ़ी से चढ़कर उस कलाकार के पीछे-पीछे चेतन ऊपर उसकी कोठरी में पहुँचा। और क्योंकि उसे वापस जाने का मार्ग ज्ञात न था और उस कलाकार को उस जैसे प्रशंसक के आगे अपनी कला के प्रदर्शन का कदाचित पहला ही अवसर मिला था, इसलिए उस सील भरी कोठरी के मद्धिम प्रकाश में एक पुरानी-सी चटाई पर बैठकर चेतन को दो-चार गतें और सुननी पड़ीं। उसके हृदय में उस समस्त वातावरण के प्रति कुछ ऐसी घृणा उत्पन्न हो रही थी कि उस समय उस कलाकार ने क्या गाया, उसने कुछ भी नहीं सुना। उसका जी तो उस समय उस कलाकार को एक-दो बार झकझोर, उसके कछुए को उसके सिर पर पटक, उस कोठरी, उस किचन, उस घुटन, उस अन्धकार से एक-दम भाग कर बाहर की स्वच्छ, स्वच्छन्द वायु में साँस लेने को व्यग्र हो रहा था!

जब वह घर पहुँचा तो रात बहुत बीत चुकी थी। वह इतना थक गया था कि वहीं सीढ़ियों पर बैठ गया। चारों ओर शान्ति थी। चेतन ने चाहा, किवाड़ खटखटाये, किन्तु उसे साहस न हुआ। कल्पना-ही-कल्पना में बीबी जी के मस्तक के तेवर उसकी आँखों के सामने घूम गये वह कई बार उठा और कई बार बैठा, पर उसे किवाड़ खटखटाने का साहस न हुआ। फिर न जाने कब नींद ने उस पर अधिकार जमा लिया और सीढ़ियों के कोने में, दरवाज़े और दीवार का सहारा लिये, टाँगों को सिकोड़कर ओवरकोट में छिपाये वह सो गया।

—o—

४३

यद्यपि वह सारी रात बाहर शीत में पड़ा ठिठुरता रहा था, किन्तु इससे उसके संगीत-प्रेम में किसी प्रकार की कमी न आयी थी। कलाकारों को प्रायः ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, उसने मन में सोचा था और संगीत में निपुण होने का निश्चय उसके हृदय में दृढ़ से दृढ़तर हो गया था।

स्वर का यह जादू भी कैसा जादू है! लय और तान में बँधा हुआ सुन्दर कण्ठ से निकला स्वर न जाने कैसा मन्त्र फूँक देता है कि मनुष्य तन्मय हो कर, सुध-बुध बिसरा कर, मन्त्र-मुग्ध-सा हो जाता है। चेतन चाहता था, उसके स्वर में भी ऐसी ही मोहिनी उत्पन्न हो जाय और वह भी अपने स्वर की तरलता से श्रोताओं को मुग्ध कर सके। कैसा होगा वह दिन जब वह तन्मय होकर गायगा और श्रोता उस स्वर के सम्मोहन से विमुग्ध सुनेंगे! उस दिन को लाने के लिए वह कटिबद्ध हो गया

उसकी इस सनक में सहयोग देने और उसके उत्साह को दुगना करने के लिए एक साथी भी उसे मिल गया—दुर्गादास।

एक दिन चेतन इतना उदास और विक्षुब्ध था कि कमरे में बैठना उसके लिए दुष्कर हो रहा था। बात कुछ भी न थी। सुबह-सुबह सामने के मकान में रहने वाले बाबू चरणदास से उसकी झड़प हो गयी थी। वे मिलिट्री एकाउण्ट्स में हैड-क्लर्क थे, उनके अति कुरूप काली-कलूटी दो लड़कियाँ थीं, इस पर भी बाबू साहब ने कुदृष्टि से शायद उनकी रक्षा करने के हेतु बरामदे में मोटी-मोटी चिकें लगा रखी थीं, चिकों के पीछे पर्दे थे और वे स्वयं आठों पहर चौकस बने रहते थे।

उनकी इस सन्देहशीलता को देखते हुए चेतन जब व्यायाम करता था तो अपने कमरे के किवाड़ लगा लेता था। किन्तु कमरे में कोई वातायन नहीं था (और खिड़की क्योंकि उनके बरामदे के सामने

खुलती थी, इसलिए वह उसे भी बन्द कर लेता था।) इस कारण कई बार उसका दम घुटने लगता था और वह कभी-कभी साँस लेने को किवाड़ खोल लेता था। उस सुबह जब उसका दम घुटा, उसने उसी प्रकार मालिश किये, लँगोट लगाये हुए साँस लेने को किवाड़ ज़रा से खोले। तभी बाबू चरणदास ने अँग्रेज़ी भाषा में उसे डाँटा कि वह क्यों यों अपने शरीर की नुमाइश कर रहा है!

चेतन ने स्तम्भित हो सहसा किवाड़ बन्द कर लिये, पर किवाड़ लगाते ही क्रोध से उसका तन-मन जल उठा। शब्द-कोष की सहायता से उसने अँग्रेज़ी में एक जोरदार पत्र बाबू चरणदास को लिखा कि उन्होंने भ्रम-वश उस पर ऐसा आरोप लगाया है और उसने तो केवल दम घुट जाने के कारण किवाड़ तनिक-से खोले थे, उसने उनके उस व्यंग्य पर आपत्ति की और उनसे अपने शब्द वापस लेने को कहा। बाबू साहब ने उससे क्षमा माँग ली, किन्तु उन्होंने कविराज जी से शिकायत कर दी और कविराज जी ने अन्दर से एक पर्दा लाकर चेतन के दरवाज़े पर डाल दिया।

यह घटना प्रकट में बड़ी साधारण थी, पर चेतन के अति भावप्रवण मन पर इसका बड़ा प्रभाव हुआ। उसे अपनी हीनता का एक बार फिर आभास मिला। किन्तु इस बार उसके पाँव नहीं उखड़े। कविराज जी ने जब मीठे शब्दों में उससे पर्दा गिराकर व्यायाम करने के लिए कहा तो वह मन-ही-मन हँस दिया।

परिस्थितियों को उनके यथार्थ रूप में लेना उसने सीख लिया था। इस घटना को उस परिस्थिति में घटने वाली एक अति साधारण घटना समझकर उसने पूर्ववत् काम भी करना आरम्भ कर दिया था।

आरम्भ तो कर दिया था, किन्तु प्रयास करने पर भी वह उसे आगे

न बढ़ा सका था। जब वह कविराज जी के साथ दरवाज़े पर पर्दा लगा रहा था तो क्षण भर को वे पड़ोसी महाशय बरामदे में आये थे और चेतन की निगाहें उनसे चार हुई थीं। कुटिल चातुर्य के साथ विजय के उल्लास की एक हल्की-सी रेखा उनकी आँखों से निकलकर चेतन को उनके ओठों पर फैलती हुई दिखायी दी थी। यही रेखा काम करते-करते अनजाने ही उसके सामने आ जाती। एक बेबस क्रोध से पीड़ित होकर वह मन-ही-मन घायल साँप की तरह बल खाने लगता। सिर को झटककर उस आकृति को मस्तिष्क के पर्दे से हटाकर, वह काम बढ़ाने का प्रयास करता, पर घूम-फिरकर वही विजय के उल्लास से आच्छन्न उनकी आकृति उसके सामने उभरने लगती—वही कुंचित, कुटिल, हास-व्यंग्य-युक्त मुस्कान!

तब सिर को एक ज़ोर का झटका दे और काग़ज़-कलम-दावात पटककर चेतन उठा, उसने किवाड़ लगाये और नीचे की ओर चल पड़ा। इतने दिन उसे यहाँ आये हो गये थे, किन्तु वह कभी नीचे की ओर न उतरा था। उसे उधर जाने का कभी ध्यान न आया था। उत्साह से भरे उसके पग जब भी उठे थे, ऊपर ही की ओर उठे थे। नीचे की ओर भी कुछ है, उसने कभी न जाना था। चलते-चलते चेतन को ज्ञात हुआ कि 'रुल्दू भट्टा' उतना ही नहीं जितना वह समझता था। आठ-दस मकान और उनसे घिरा हुआ एक चौक—उस स्थान की कुल परिधि को वह इतने तक ही सीमित समझता था। किन्तु उस निचले मार्ग पर चलते हुए उसने देखा—मकानों की दो पंक्तियाँ उस मार्ग के दोनों ओर भी बनी हुई हैं। दायीं ओर की पंक्ति कुछ ऊपर को है और बायीं ओर की कुछ नीचे को। चेतन अपने ध्यान में मग्न चला जा रहा था कि उसे एक बड़ा मँडुवा दिखायी दिया—बिलकुल वैसा ही जैसा पुराने ज़माने में सफ़री थियेटरों के लिए बनाया जाता था। अंतर केवल इतना था कि यह पक्का था। उस मँडुवे के परे

मकानों की पंक्तियाँ समाप्त हो गयी थीं और मार्ग नीचे खड्ड को उतर जाता था। मँडुवे को देखकर चेतन को बड़ा कुतूहल हुआ और नीचे की ओर जाने के बदले वह उसके अन्दर चला गया। उसने देखा कि नीचे एक बहुत बड़ा हाल है और वह उसकी बालकनी में खड़ा है।

उस हाल का नाम (जैसा कि चेतन को बाद में पता चला) 'विश्वकर्मा हाल' था। उसके बनाने वाले अपने-आप को देवराज इन्द्र के उस प्रवीण शिल्पी का वंशज बताते थे, जिसने भक्त सुदामा के घर पहुँचने से पहले, भगवान कृष्ण की इच्छानुसार उसके झोंपड़े की जगह एक अपूर्व भव्य प्रासाद निर्मित कर दिया था। यह और बात है कि विश्वकर्मा के ये वंशज इस कलि-काल में निरे बढ़ई होकर रह गये थे। १६१४ के महायुद्ध में जब बढ़इयों में से कुछेक को सरकारी ठेके मिल गये और उन्होंने राशि-राशि धन संचित किया और धन के साथ-साथ उनकी जाति-चेतना भी बढ़ी तो वे विश्वकर्मा के वंशज बन गये। अपनी जाति को संगठित करके उन्होंने एक समाज की नींव रख दी और फिर उस समाज के मिल बैठने के लिए एक भवन का भी निर्माण हो गया।

हाल में जाने का मार्ग नीचे से था। ऊपर का मार्ग तो एक छोटी-सी बालकनी में खुलता था जो चारों ओर बनी हुई थी। इसी ऊपर के मार्ग से होकर चेतन बालकनी में पहुँचा। यह मार्ग साधारणतः महिलाओं के लिए था जो वार्षिक अधिवेशन पर बालकनी में बैठकर तमाशा देखती थीं। किन्तु यह तमाशा तो साल में एक बार होता था, इस लिए बालकनी खाली पड़ी थी, उसमें एक ओर को दो टूटी चारपाइयाँ खड़ी थीं और कुछ लकड़ी का टूटा-फूटा फ़र्नीचर पड़ा था। इस बालकनी के साथ दक्खिन की ओर कमरे बने हुए थे। उत्सुकता चेतन को वहाँ ले गयी। एक कमरे में नंगे शरीर, केवल एक साफ़ा बाँधे एक महाशय चूल्हे में फूँकें मार रहे थे। चेतन के पैरों की चाप सुनकर

उन्होंने सिर उठाया। मँझला क़द, छरहरा शरीर, गोरा रंग, पीठ और वक्ष पर हल्के-हल्के बाल, उम्र शायद कम, किन्तु देखने पर बत्तीस-पैंतीस की, कल्ले धँसे, चुंधी आँखों के गिर्द गढ़े और उन पर चश्मा—चेतन को देखकर नमस्कार के रूप में तनिक-सा हँसते हुए वे उसके पास आये तो चेतन ने देखा कि उनके मुख पर अभी से झुर्रियाँ पड़ने लगी हैं और इस हँसी में एक विचित्र प्रकार का नम्र-भाव है।

"बैठिए, बैठिए!" उन महाशय ने चारपाई की ओर संकेत करते हुए कहा।

चेतन वहाँ बैठ गया और फिर दो घण्टे तक बैठा रहा। जब वह उन महाशय के खाना पकाने, नहाने, खाने, गाना सुनने-सुनाने, कपड़े पहनने, किवाड़ बन्द करके दफ़्तर चलने तक साथ-साथ बातें करने के बाद, कमेटी के नल पर उनका साथ छोड़कर, घर आया तो एक नया उत्साह, एक नयी स्फूर्ति से उसके पाँव जैसे धरती पर न पड़ रहे थे।

इन्हीं महाशय का नाम दुर्गादास

—o—

४४

दुर्गादास जन्म से बढ़ई थे, किन्तु अपने जन्मजात कर्म को छोड़कर, मैट्रिक पास करके वे शिमले के बड़े डाकख़ाने में क्लर्क हो गये थे। क्योंकि वे अपने साथियों से अधिक पढ़े-लिखे थे, इसलिए उस सभा के अवैतनिक उप-मन्त्री भी बन गये और सभा ने उनके रहने के लिए बालकनी के साथ बने हुए दो कमरे दे रखे थे।

वे अपना खाना स्वयं पकाते थे और विचारों से आर्य-समाजी होने के कारण प्रातःसायं सन्ध्या-वन्दन भी करते थे। चेतन को उनसे यह भी ज्ञात हुआ कि उनकी पत्नी का देहान्त हो चुका है, उन्हें उससे

बहुत प्यार था और उसी के हेतु उन्होंने अपना आध सेर रक्त दिया था।

अपनी वयस से जो वे कुछ अधिक लगते थे तो उसका कारण दूसरी बातों के अतिरिक्त उनकी वेश-भूषा भी थी। सिर पर पगड़ी, गले में गबरून की कमीज़ और कोट और टाँगों में उटुंग पायजामा। यह भूषा उनकी आँखों और कल्लों के गढ़ों और उनके गालों पर पड़ने वाली झुर्रियों के साथ मिलकर उनकी वयस को बढ़ा देती थी। जब भी उनके स्वास्थ्य की चर्चा चलती, वे अपनी पत्नी के मर्मान्तक रोग और उसके हेतु किये गये अपने रक्तदान का सविस्तार बखान करते। पत्नी के देहावसान के पश्चात् उन्होंने अभी तक दूसरा विवाह न किया था। जिस दिन चेतन पहले-पहल उनसे मिला, उसे ज्ञात हुआ कि विवाह की ओर से वे वीतराग-से हो गये हैं। उन्हें इच्छा ही नहीं होती। किन्तु धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों चेतन की घनिष्ठता उनसे बढ़ती गयी, उसे लगा कि प्रकट विवाह के प्रति वे जितनी उदासीनता दिखाते हैं, अप्रकट वे उसके लिए उतने ही लालायित हैं। जब भी उनकी बिरादरी के लोग आते तो किसी-न-किसी तरह अपनी स्वर्गीया पत्नी की बात चलाकर वे उस समस्त सेवा तथा त्याग का वर्णन बड़े उत्साह से करते ताकि लड़की वालों को आभास मिल जाय कि उनकी लड़कियों के लिए उनसे अच्छा वर मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अपनी पत्नी की इतनी सेवा, उसके लिए इतना त्याग कोई विरला ही कर सकता है! किन्तु न जाने उनकी आकृति में, उनके पहनावे में, उनके समस्त व्यवहार में क्या बात थी कि लड़कियों वाले मतलब की बात पर मौन साध जाते। वे सहर्ष उनका आतिथ्य ग्रहण कर लेते; उनसे उनकी जमा-पूँजी उधार लेने में भी संकोच न करते;उनके घर ठहरकर उनके हाथों पकायी हुई खीर, दलिया, खिचड़ी या पराठे स्वाद ले-लेकर खाते, किन्तु जब मतलब की बात आती तो ऐसे उड़ जाते मानो जिस लड़की

की ओर दुर्गादास संकेत करते, उनकी नहीं, किसी दूसरे की रिश्तेदार हो।

और दुर्गादास अभी तक विधुर बने हुए थे। उनकी स्वर्गीया पत्नी के गुणों में दिन-प्रति-दिन वृद्धि हो रही थी और उसके लिए उन्होंने जो रक्त दिया था, उसकी मात्रा भी उत्तरोत्तर बढ़ रही थी।

अपने एकान्त का समय दुर्गादास रोटी पकाने अथवा बाजा बजाने में बिताते थे। आठ वर्ष पहले उनके विवाह पर एक साधारण-सा हारमोनियम बाजा भी दहेज़ में आया था। एक-दो आर्य-समाजी गीत उनकी पत्नी जानती थी। वही उससे उन्होंने सीख लिये थे। जब उनका मन उदास होता तो वे चारपाई के नीचे से हारमोनियम निकालकर

तुम हो प्रभु चाँद मैं हूँ चकोरा

या

प्रभु प्रीतम जिसने बिसारा

गाया करते। गाते-गाते वे तन्मय हो जाते। भूल जाते कि उनका स्वर बाजे के स्वर से मिलता है या नहीं। वे आँखें बन्द किये, तन्मय, झूमते हुए, भक्ति-भाव से गाते। उन्होंने 'भजन-पुष्पांजलि' से स्वयं भी कुछ आर्य-समाजी गीत सीखे थे, यद्यपि पत्नी से सीखे हुए ये दो गीत उनको अत्यन्त प्रिय थे। जिस दिन चेतन से उन्होंने सुना कि वह प्रो० सिंह के कॉलेज में गाना सीखता है तो उन्होंने उसको अपने सारे गीत सुनाये—और फिर उससे कुछ सुनाने को कहा।

"मैं तो पक्के गाने ही पसन्द करता हूँ," उन आर्य-समाजी भजनों पर नाक-भौं चढ़ाते हुए चेतन ने कहा, बड़ी शान से बाजा अपने सामने खींचा और यह भूमिका बाँधी कि अब दस बजे हैं, इसलिए वह भैरव के बोल ही सुनायेगा, उसने

स ध, प ध, मप, गम, ग रे गम, गा रे स स

बजाया और जब दुर्गादास ने पूछा कि भाई गीत के बोल भी सुनाओ

तो एक वेत्ता की-सी मुस्कान के साथ 'प्रसिद्ध गाना है' यह विवरण देते हुए चेतन ने गाया :

"जागियो गोपाल लाल, जागियो गोपाल लाल !"

चेतन को तान और पलटों का अभ्यास न था, लय और ताल का भी उतना ज्ञान न था, इसलिए उसने एक-दो बार अस्थाई और अंतरा और बीच में केवल सरगम गाकर बाजा रख दिया, किन्तु इतने ही से दुर्गादास पर उसका रोब जम गया और वहीं, पहली ही भेंट में, यह तय हो गया कि चेतन प्रो० सिंह से जो सीखेगा, उसका अभ्यास दुर्गादास के यहाँ आकर करेगा। दुर्गादास ने यह प्रस्ताव भी किया कि वह चाहे तो काम भी वहीं किया करे—एकान्त जगह है, किसी प्रकार का शोर नहीं और दूनी एकाग्रता से काम हो सकता है। और चेतन ने उनका प्रस्ताव स्वीकार भी कर लिया।

धीरे-धीरे दुर्गादास ने भी वे सब रागनियाँ सीख लीं जो चेतन को आती थीं और सुबह-शाम दोनों तन्मय होकर उन्हें गाने लगे। पहले वे अकेले-अकेले गाया करते। एक दिन भैरवी की एक रागिनी उन्होंने मिलकर जो गायी तो दोनों चौंक पड़े, अपना सम्मिलित स्वर उन्हें बड़ा मधुर लगा। इसके बाद वे प्रायः इकट्ठे ही गाने लगे।

मोरी बैय्याँ पकर झकझोरी
श्याम ! तू तो निपट अनारी
मानत नहीं मोरी !

भैरवी की यह रागिनी उन्हें बड़ी प्रिय थी और वे प्रायः इसे गाया करते थे। प्रत्यूष बेला के उस शान्त-स्निग्ध वातावरण में इस सुकोमल रागिनी को गाते हुए तन्मय होकर वे व्यामोहावस्था को पहुँच जाते।

सन्ध्या को वह कभी-कभी दुर्गादास को म्युज़िक कॉलेज ले जाता। दोनों वहाँ प्रो० सिंह का गाना सुनते, कोई छोटी-मोटी रागिनी सीखते,

किन्तु अभ्यास दोनों घर ही पर करते।

उन्हीं दिनों आर्य-समाज का वार्षिक अधिवेशन आ गया और उसके उपलक्ष में संगीत-सम्मेलन के आयोजन की भी घोषणा की गयी। म्युज़िक कॉलेज में चेतन को पता चल गया कि प्रो० सिंह अपने छात्रों को लेकर इस अवसर पर अवश्य जायँगे और उसने मन-ही-मन निश्चय भी कर लिया कि वह इस अवसर पर गाने का सुयोग अवश्य प्राप्त करेगा।

अकेले गाने का साहस अभी चेतन में था नहीं, इसलिए उसने सोचा कि वह और दुर्गादास इकट्ठे गायेंगे। अधिवेशन पर कवि-सम्मेलन भी हो रहा था और यद्यपि चेतन ने उसके लिए भी कविता लिखी थी—शिमले आने से पहले वह कई कवि-सम्मेलनों में भाग ले चुका था—पर किसी संगीत-सम्मेलन में उसने आज तक भाग न लिया था। इसलिए इस अवसर पर एक संगीतज्ञ के रूप में प्रकट होने की प्रबल लालसा उसके मन में थी। घर पहुँचते ही उसने यह समाचार दुर्गादास को सुनाया, अपने निश्चय की बात भी बतायी और यह भी कहा कि हम दोनों इकट्ठे गायेंगे। सुनकर दुर्गादास की गढ़ों में धँसी हुई आँखें एक अपूर्व ज्योति से जगमगा उठीं। उसी दिन से दोनों मित्र इकट्ठे मिलकर अपने प्रिय गीतों का अभ्यास करने लगे।

यद्यपि आर्य-समाज के उस संगीत-सम्मेलन में कोई बहुत बड़े संगीतज्ञ न आये थे, पर भीड़ काफ़ी थी, क्योंकि विज्ञापन में कई लड़कियों के नाम भी थे। निम्न-मध्य-वर्गीय घरानों की लड़कियों को, जिन्हें वर प्राप्ति के लिए गाने की शिक्षा लेनी पड़ती है, अपनी कला के प्रदर्शन का सुअवसर इन धार्मिक सम्मेलनों के अतिरिक्त कहीं और नहीं मिलता। निम्न-वर्ग के बेकार युवक भी बिना टिकेट तमाशा देख लेते हैं। बेकार समय का इससे अधिक अच्छा उपयोग और क्या हो सकता है। इसीलिए समाज के साधारण अधिवेशनों से कहीं अधिक

भीड़ संगीत-सम्मेलन में थी।

रात चेतन देर से सोया था, पर प्रातःकाल ही उठकर वह दुर्गादास के यहाँ पहुँचा और निरन्तर कई घण्टों तक दोनों इकट्ठे मिलकर गाने का अभ्यास करते रहे थे। दुर्गादास को आते समय संकोच हो रहा था, किन्तु चेतन उन्हें अपने संग घसीट लाया था।

सबसे पहले कुछ लड़कियों ने 'वन्दना' गायी। इसके बाद प्रोग्राम आरम्भ हुआ। किन्तु किसने क्या गाया, चेतन ने कुछ नहीं सुना। मौन रूप से अपने गानों की रिहर्सल करने के साथ-साथ वह इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि कब प्रो० सिंह और उनके छात्रों की बारी आती है और कब वह उनसे कुछ क्षण अपने और दुर्गादास के लिए ले पाता है।

जब आर्य-समाजी भजनीक (जो अपने गाने के साथ भाषण का पुट भी देते रहे) और लड़कियाँ (जिनकी प्रशंसा उनके सौन्दर्य और कण्ठ की मधुरता के परिमाण से कम या ज़्यादा हुई) और दूसरे गवैये गा चुके तो प्रो० सिंह और उनके साथियों की बारी आयी। पहले उनके शिष्यों ने अपनी-अपनी कला के चमत्कार दिखाये। फिर प्रो० साहब ने स्वयं बाजा खींचा। तभी चेतन ने प्रार्थना की कि उसे और दुर्गादास को गाने का अवसर दिया जाय। "तुम अभी सभा में गाने योग्य नहीं हुए!" इतना कहकर प्रो० सिंह स्वयं गाने लगे। उन्होंने बहुत अच्छा गाया। उन्हें कई चीज़ें गानी पड़ीं। कई गीत गाने के बाद प्रोफ़ेसर साहब थक गये, किन्तु समय अभी बहुत न हुआ था। संयोजक चाहते थे कि वे और कुछ देर तक गायें। तभी चेतन ने एक बार फिर साहस करके अपनी प्रार्थना दोहरायी और उस जल्दी और घबराहट में जब श्रोता तालियाँ पीट रहे थे, 'एक और' 'एक और' के नारे लगा रहे थे और संयोजक उनसे कम-से-कम एक गाना और गाने का अनुरोध कर रहे थे, प्रो० सिंह ने चेतन की ओर संकेत करते हुए कहा, "अब कुछ क्षण

के लिए ये गायेंगे, मेरे ही शागिर्द हैं, मैं ज़रा साँस ले लूँ।" तब संयोजक महाशय ने सोल्लास इस बात की घोषणा कर दी कि अब प्रो० साहब के दो नये शागिर्द गायेंगे, जिसके बाद वे स्वयं अपने संगीत से श्रोताओं को मुग्ध करेंगे। और अपने उस उल्लास में संयोजक महोदय ने चेतन और दुर्गादास को संगीत-विद्या में विशारद बना डाला।

घोषणा को सुनकर दोनों धड़कते हुए दिलों के साथ आगे आये। दुर्गादास ने बाजा आगे खींचा। दोनों की आँखें मिलीं—कौन-सा गाना गाया जाय? और जैसे आँखों-ही-आँखों में दोनों ने निश्चय कर

'मोरी बैय्याँ पकर झकझोरी।'

लिया। बाजा बजने लगा और वे गाने लगे।

दोनों तन्मय भाव से गा रहे थे कि चेतन की दृष्टि सामने बैठे दो गवैयों की ओर गयी। वे हँस रहे थे। उसने प्रो० सिंह की ओर देखा। उनका माथा सिकुड़ गया था और वे तिलमिला रहे थे। चेतन को लगा कि उनका स्वर नहीं मिल रहा। वह आनन्द नहीं आ रहा, जो उन्हें सदैव इस गीत को गाने में आया करता था। उसने दुर्गादास की ओर देखा। वे आँखें बन्द किये, तन्मयता से झूमते हुए, आधी रात की भैरवी गा रहे थे। अचानक सामने बैठे हुए गवैये ज़ोर से हँस पड़े। इसके बाद जैसे हँसी छूत की तरह फैल गयी। तभी चेतन को ध्यान आया कि उन्हें तो 'खम्माच' गाना था। उसने चाहा दुर्गादास से कहे कि दूसरा राग लगाओ :

बैय्याँ न पकर मोरी........

किन्तु उसी क्षण प्रोफ़ेसर सिंह ने आगे होकर बाजा थाम लिया और उनका प्रिय शिष्य वही भीवर कुमार अपनी सुरीली आवाज़ से गाने लगा :

कौन देश गया पिया मोरा बालम रे

दर्शकों की हँसी एकदम थम गयी। चेतन को इतनी लज्जा आयी

कि वहाँ एक क्षण भी ठहरना उसके लिए असम्भव हो गया। दुर्गादास की समझ में कुछ भी न आ रहा था। अपनी गढ़ो में धँसी हुई आँखों की पलकें, मरती हुई तितली के पंखों-सी फटफटाते हुए, वे आश्चर्य-चकित-से चारों ओर देख रहे थे। किन्तु चेतन बिना किसी से आँख मिलाये पिछले दरवाज़े से निकला और रात के अँधेरे में चोरों की भाँति घर की ओर भाग चला।

४५

तीन दिन तक चेतन बाहर न निकला था। उसे लगता था जैसे सारा नगर उसकी असफलता को जान गया है। वह बाहर निकलेगा तो लोग अँगुलियाँ उठायेंगे कि वही संगीत-विशारद हैं जो रात के ग्यारह बजे भैरवी गा रहे थे। कमरे के एकाकीपन से उकताकर वह एक दिन दोपहर को सीढ़ियों के छज्जे पर आ खड़ा हुआ था, पर जाने क्यों सामने के बरामदे में खड़ी बाबू चरणदास की साँवली बड़ी लड़की उसे देखकर मुस्करा दी और वह हड़बड़ाकर मुड़ा। उस बेचारी ने चाहे उसका गाना सुना भी न हो, पर चेतन को लगा, जैसे वह मुस्कान उस घटना की ओर ही संकेत कर रही है। घोंघे की भाँति वह अपने खौल में आ बैठा और माल अथवा लोअर बाज़ार तक जाना तो दूर रहा, वह रुल्दू भट्टे के चौक तक जाने का भी साहस न कर पाया था।

न जाने वह कब तक इस प्रकार उस अँधेरे कमरे में पड़ा रहता, यदि चौथे दिन प्रो० सिंह ही के यहाँ बना, उसका एक नया मित्र नारायण उसे न आ पकड़ता।

"अरे भई, क्या हो गया तुम्हें जो छुट्टी के दिन भी इस अँधेरी कोठरी में बन्द पड़े हो?" नारायण ने कहा, "चलो आज जाकू का

राउण्ड लगायें और शाम को तुम्हें स्वामी शुद्धदेव की कथा सुनवायें। एक बार सुनोगे तो ज़िन्दगी भर याद रखोगे!"

चेतन ने कुछ उत्तर देने का प्रयास किया, पर अस्फुट बड़बड़ाहट के अतिरिक्त उसके ओठों से कुछ भी न निकल सका।

तब चश्मे के पीछे से अपनी आँखों की चमकती रेखा को कटाक्ष के रूप में चेतन पर डालकर नारायण ने कहा, "बाहर तो आओ! देखो तो कैसे बादल घिर के आये हैं! ऐसे में कोई भलामानुस कमरे में बैठा रह सकता है? ऐसे में तो जी चाहता है दिन भर शिमले की सड़कों पर घूमते रहें।"

और दफ़्तर के वातावरण में सूख जाने वाला रस जैसे इन बादलों को देख, नव-जीवन पा, नारायण की आँखों में उमड़ने लगा।

"मेरा जी कुछ स्वस्थ नहीं," चेतन ने कहना चाहा, किन्तु नारायण जैसे उसे बरबस घसीटता हुआ-सा बाहर आया। कमरे के किवाड़ लगाकर दोनों नीचे उतरे।

घण्टों शिमले की सड़कों पर घूमने और शाम को नारायण के होटल में खाना खाने के बाद वे माल की ओर को मुड़ने लगे तो अचानक चेतन ने कहा, "मैं तो वापस जाऊँगा, नारायण।"

"तो क्या स्वामी शुद्ध देव की कथा सुनने न जाओगे? अभी आरम्भ होगी नौ बजे। कथा क्या कहते हैं अमृत बरसाते हैं!"

"इस समय अमृत की भी इच्छा नहीं!" और उसने विदा लेने को हाथ आगे बढ़ाया।

किन्तु नारायण ने उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर वापस मुड़ते हुए कहा, "चलो मैं इधर ही से समाज-मन्दिर चला जाऊँगा।"

बायीं ओर घाटी पर तैरती हुई, जल-बिन्दुओं से भारी, बोझीली बयार अज्ञात रूप से हल्के-हल्के बह रही थी। अदृश्य फुहार जैसे निःस्वन पंखों के सहारे उड़ रही थी। उसके स्पर्श से गाल, नाक, मुँह,

आँख सब ठण्डे हुए जा रहे थे। सहसा बादल बाज़ार में बढ़ आये थे। बाज़ार की रोशनियाँ सिमट कर बत्तियों के गिर्द छोटे-छोटे वृत्तों में समा गयीं और चलते-चलते लोग छायाएँ बन कर रह गये। अचानक चेतन की ऐनक के दोनों शीशे धुँधले हो गये। ऐनक उतार कर उसने कमीज़ के छोर से उन्हें पोंछा, किन्तु शीशे अच्छी तरह साफ़ न हुए और जब उसने ऐनक को फिर नाक पर रखा तो सब चीज़ों पर विचित्र-सा झीना, झिलमिला पर्दा छा गया। बिजलियाँ और बत्तियाँ सब झिलमिलाती-सी दिखायी देने लगीं। उसने फिर ऐनक को साफ़ की, किन्तु वह साफ़ न हुई। उसकी क़मीज़ कदाचित गीली हो चुकी थी और उसकी ऐनक के नमदार शीशों के छूकर उड़ता हुआ वाष्प पानी बन जाता था। हारकर उसने ऐनक उतार ली और अन्धों की भाँति चलने लगा।

वे समाज-मन्दिर के पास पहुँच गये थे। बाहर अहाते ही से स्वामी शुद्धदेव का गहरा गम्भीर स्वर हाल में गूँजता हुआ आ रहा था। उनकी कथा शायद आरम्भ हो चुकी थी। चेतन अपनी उन मानसिक उलझनों में इस हद तक उलझा हुआ था कि नारायण कब उसका हाथ थामे उसे हाल में ले गया, उसे मालूम नहीं हुआ। वह तब चेता जब वह नारायण के साथ पीछे हाल की दीवार से लगी ठण्डी बेंच पर बैठ गया।

स्वामी जी तब बड़े मनोयोग से भक्ति की महिमा का बखान कर रहे थे :

"जो मनुष्य भगवान के योग से दूर है, भक्ति-धर्म में रत-नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिरता को नहीं लाभ कर सकती। निश्चयात्मक बुद्धि ही को स्थिर-बुद्धि कहा गया है और वह निश्चय तब तक होना कठिन है, जब तक आत्म-परमात्म-स्वरूप की उपलब्धि न हो जाय!"

चेतन ने पहले के शब्द नहीं सुने। 'आत्म-परमात्म' शब्द से वह

तनिक चौंका। स्वामी जी तब कह रहे थे :

"आत्म-परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति केवल धर्म-मय-भक्ति योग से होती है। भक्ति-रहित जन को भावना भी नहीं मिलती। शुद्ध भावों का उसके भीतर अभाव बना रहता है। ध्यान में, विचार में, मनन में, श्रद्धा और विश्वास में वह डाँवाँडोल बना रहता है। एक बात में उसकी चित्तवृत्ति नहीं ठहरती। ऐसे भावना-हीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती। वह सदा अशान्त, चंचल-चित्त रहता है। उसे सुख कहाँ मिलेगा? शान्ति कैसे मिलेगी?"

शान्ति-शान्ति-शान्ति! चेतन ने बेज़ारी से सिर हिलाया और उठ खड़ा हुआ। इतनी कटुताओं, विषमताओं, भूख, बेकारी, ग़रीबी, अवहेलना, उपेक्षा में घिरा कोई स्वाभिमानी, स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति शान्ति-लाभ कैसे कर सकता है?

और समाज-मन्दिर से निकल कर वह सीधा रुल्दू भट्टे के अपने उस कमरे में पहुँचा और गयी रात तक बिस्तर पर करवटें बदलता रहा। शिमला ने एक दिन के लिए भी उसे अपने में न समोया था। परायेपन का जो आभास कविराज के घर, रुल्दू भट्टे के वातावरण और शिमले के उस दिखावे के जीवन में उसे लगा करता था, वह जैसे पूरे दल-बल के साथ उस पर छा रहा था। और वह उसी दिन वहाँ से भागकर अपने उसी जालन्धर और लाहौर के जीवन में अपनेपन को पा लेना चाहता था। प्रातः के चार बजे होंगे, जब उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि अब वह एक दिन को भी शिमला न रहेगा, पुस्तक तो उसकी समाप्त हो ही चुकी है, सवेरे ही कविराज जी को सौंपकर कह देगा कि वह वापस जाना चाहता है।

न जाने इस निर्णय से उसे सन्तोष हो गया अथवा उसके तन-मन दोनों थक कर चूर हो चुके थे कि यह निश्चय करके जब वह लेटा तो उसे तत्काल नींद आ गयी।

सुबह अभी वह बिस्तर से पूरी तरह उठा भी न था कि मन्नी ने खिड़की में हाथ बढ़ा कर एक पत्र उसके सामने कर दिया :

"आप की चिट्ठी आयी है बाबू जी," उसने कहा, "कल वैद्य जी ने दी थी, पर आप तो बहुत देर में आये ।"

चेतन ने लेटे-लेटे हाथ बढ़ा कर लिफ़ाफ़ा ले लिया, फाड़ा और वहीं लेटे-लेटे पढ़ा और सहसा रज़ाई को एक ओर फेंक, उछलकर उठ बैठा ।

"मन्नी, मैं जा रहा हूँ !" उसने सहसा कहा ।

"कहाँ ?"

"घर !" मेरी साली की शादी है ।"

—o—

४६

"एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को, चलो भाई कोई एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को !"

एक पाँव ताँगे के बम पर और दूसरा अगले पायदान पर रखे खुले गले का कुरता और एड़ियों के नीचे लटकता हुआ तहमद पहने, ताँगे पर खड़ा बायें हाथ से लगाम को हिलाता और दायें से मूँछों को ताव देता हुआ ताँगे वाला आवाज़ लगा रहा था, "चलो भई कोई एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को, चलो कोई एक सवारी....ी....ी....ी"

चेतन को बड़ी सड़क पार करके बस्ती के अड्डे की ओर बढ़ते हुए देखकर उसने आवाज़ लगायी—

"बैठिए बाबू साहब, बस एक ही सवारी दरकार है ।"

अगली सीट पर एक जगह ख़ाली थी । चेतन चुपचाप वहाँ जाकर

बैठ गया, किन्तु ताँगे वाला चला नहीं। तहमद को ऊपर खोंसते हुए, घोड़े को हण्टर जमा कर उसने ताँगे को वहीं अड्डे पर एक चक्कर दिया और यद्यपि चार सवारियाँ पूरी हो चुकी थीं तो भी उसने ज़ोर से हाँक लगायी—

"चलो भई कोई एक सवारी बस्ती ग़ज़ाँ को !"

चेतन चुप बैठा रहा। पहले की तरह वह ज़रा भी नहीं झल्लाया। एक और सवारी के पैसे भी उसने नहीं दिये। अपने विचारों में मग्न बैठा वह चुपचाप सामने के मकान की ओर देखता रहा, जिसके परनाले से गन्दा पानी निरन्तर अड्डे के नाले में गिर रहा था।

वह प्रातः जालन्धर पहुँचा था। घर पहुँचकर माँ के पाँव छुए और आशीर्वाद पाने के बाद जब उसने चन्दा के बारे में पूछा तो उसे पता चला कि चन्दा तो सात दिन से बस्ती गयी हुई है। नीला की बारात आज ही आने वाली है और उसका साला रणवीर दो बार चेतन के सम्बन्ध में पूछ गया।

तब सितार और दिलरुबा (जिनसे उसका प्रेम कब का ख़त्म हो गया था और जिनके साथ चिटें लगाकर उसने सुन्दर अक्षरों में 'चन्दा के लिए' लिख रहा था) एक ओर रखकर, नहा-धो, कपड़े बदल वह बस्ती की ओर चल दिया था।

चल तो दिया था, किन्तु उसका मन जाने को तनिक भी न हो रहा था। एक विचित्र प्रकार का संकोच उसके मन में कहीं से आ बैठा था। उसके सामने आ गयी थी नीला, उसके साथ बीती हुई घड़ियाँ, इलावलपुर के वे दिन, उसकी अपनी मूर्खता; नीला का होने वाला विवाह और बीसियों दूसरी बातें ! और उसे संकोच होता कि इलावलपुर की अपनी उस मूर्खता के बाद वह कौन-सा मुँह लेकर नीला के सामने जायगा।

कभी वह सोचता कि नीला उस घटना को भूल गयी होगी, अपने

विवाह की प्रसन्नता में उसे वह सब याद न रहा होगा। और यह सोच-कर वह अपेक्षाकृत त्वरा से पग धरने लगता, किन्तु दूसरे क्षण उसे खयाल आता, यदि वह न भूली? यदि वह प्रसन्न न हुई?....और उसकी गति मन्द पड़ जाती। इसी प्रकार तीव्र-मन्द गति से चलता-चलता वह बस्ती के अड्डे पर पहुँचकर ताँगे में आ बैठा था। किन्तु उसकी विचार-धारा न टूटी थी। उसे पता नहीं कब ताँगा चला, कब बस्ती के अड्डे पर पहुँचा, वह कब उतरा और बस्ती का टेढ़ा-मेढ़ा बाज़ार पार कर पण्डित वेणी प्रसाद के मकान के सामने जा पहुँचा।

ड्योढ़ी पार करते ही सबसे पहले जिससे उसका साक्षात्कार हुआ, वह थी स्वयं नीला। आँगन के कोने में नाली पर अपनी पतली बाँह बढ़ाये हुए वह बैठी थी। उसकी कलाई पर जोंकें लगी हुई थीं और उसका लहू पीकर धीरे-धीरे फूल रही थीं।

पल-भर के लिए चेतन उस गोरी-गोरी कलाई और उससे चिमटी हुई उन भूरी-भूरी जोंकों को देखता रहा। फिर वहाँ से हटकर चेतन की दृष्टि उसके मुख पर गयी। उसे लगा जैसे वह कुछ पीली हो गयी है। उसे लगा जैसे नीला कुछ दुबली हो गयी है। परन्तु उसने यह भी पाया कि पीली-दुबली होकर वह पहले से भी सुन्दर दिखायी देने लगी है। वह शायद 'माइयाँ' बैठी थी, क्योंकि उसके कपड़े मैले थे और उन पर जगह-जगह पीले उबटन में धब्बे पड़े हुए थे। उन मटमैले कपड़ों में भी उसकी देह का सोना जैसे कुन्दन बनकर दमक उठा था। यौवन अभी पूरे वेग से न उतरा था और वह उस अर्ध-विकसित कली-सी लगती थी जिसे सूर्य के स्नेह-स्पर्श ने अभी फूल न बनाया हो।

एक रूखी-सी 'नमस्ते' चेतन की ओर फेंककर नीला फिर अपनी कलाई से चिमटी हुई जोंकों को देखने लगी।

चेतन का समस्त संकोच जैसे पूरे वेग से लौट आया। उसके पास से होकर वह चुपचाप दालान की ओर बढ़ गया और लोहे की खाली कुर्सी पर जा बैठा।

क्या शिमले से जालन्धर तक इतनी दूर वह केवल यही रूखी-फीकी नमस्ते पाने के लिए आया था? उसे खेद हुआ, वह क्यों चला आया इस विवाह में। इलावलपुर की घटना के बाद उसे कभी नीला के सम्मुख न आना चाहिए था।

उसने कनखियों से नीला की ओर देखा। चेतन की ओर पीठ किये वह निरन्तर उन जोंकों को देख रही थी। एक बार भी पलट कर उसने चेतन की ओर न देखा था। कदाचित् वह उस घटना को न भूली थी, उसने उसे क्षमा न किया था। वह क्यों चला आया वहाँ? और उसका जी चाहा कि वापस भाग जाय। किन्तु तभी उसकी बड़ी साली गोद में अपने डेढ़-दो वर्ष के रिरियाते बच्चे को उठाये हँसती-मुस्कराती वहाँ आ गयी।

"नमस्ते जी!" बच्चे को पुचकारते हुए उन्होंने चेतन का अभिवादन किया।

निमिष भर के लिए चेतन के कानों में नीला के वे शब्द गूँज गये जो उसने इलावलपुर में अपनी इस बड़ी बहन के गृह-जीवन के बारे में कहे थे। इस फूहड़ को कौन इंजीनियर पसन्द करेगा?—चेतन ने सोचा, किन्तु प्रकट उसने हँसकर कहा, "नमस्ते मीला जी, कहिए प्रसन्न तो हैं।"

"कहिए कब आये?" मीला जी बोलीं, "आपकी राह देखते-देखते तो आँखें पक गयीं।"

"आज ही सुबह आया हूँ," चेतन बोला और फिर उसने नीला की ओर देखकर कहा, "नीला की बाँह में क्या कष्ट है?"

"फोड़ा उठ आया था कलाई पर, हकीम ने जोंकें लगाने का आदेश

दिया है।"

"व्याह स्थगित क्यों नहीं कर दिया आपने ?"

"लड़के को (दूल्हे को) फिर छुट्टी नहीं मिल सकती। बड़ी मुश्किल से एक महीने की छुट्टी लेकर आया है। सेना की नौकरी ठहरी, फिर जगह समीप हो तो भी कुछ हो सकता है। किन्तु बर्मा से तो बार-बार नहीं आया जा सकता।"

"बर्मा !" चेतन के दिल को धक्का-सा लगा, "क्या करता है वह ?"

"मिलिट्री एकाउएटेएट है रंगून में।"

तब चेतन के सामने नीला का पीला, दुर्बल मुख घूम गया। उसके गले में गोला-सा आकर अटक गया। आर्द्र होकर उसने कहा, "पर आपने बड़ी दूर तय की नीला की शादी।"

उत्तर में उसकी साली ने बताया कि लड़का अढ़ाई सौ रुपया मासिक पाता है और नाते में उनका देवर होता है—उनके ससुर के बड़े भाई का लड़का। बड़ा नेक, सहृदय और परिश्रमी है। पाँच वर्ष हुए, उसकी पत्नी मर गयी थी। इसके बाद उसने विवाह नहीं किया। एक से दूसरे स्थान पर बदली होती रहती थी, एक जगह टिक न पाता था। अब उसे विश्वास है कि शीघ्र ही उसकी बदली पंजाब में हो जायगी, इसलिए उसने लिखा था कि उसके लिए लड़की देख ली जाय। उन्हें पता चला तो उन्होंने झट नीला की सगाई वहाँ कर दी।

अपनी इस क्रियाशीलता पर अपने-आप हँसते हुए मीला जी ने बच्चे के निरन्तर रिरियाने पर एक हल्का-सा थपेड़ा उसकी पीठ पर जमाते हुए कहा, "कम्बख़्त इतना बड़ा हो गया है, फिर भी मेरी जान खाये जाता है।" तभी शायद काम में व्यस्त चन्दा उधर से गुज़री। तब चिल्लाकर उसे चेतन के लिए कुछ लाने का आदेश देकर चेतन

का बड़ा साला पड़ोसिन से बात करने को बढ़ गया और वह मर्माहत-सा वहाँ बैठा रह गया।

रंगून, विधुर (पाँच वर्ष का) और मिलिट्री एकाउण्टेण्ट—ये तीनों शब्द उसके कानों में बार-बार गूँजने लगे। चेतन ने एक बार फिर नीला को देखा। उसके हाथों से जोंकें उतार ली गयी थीं। फोड़े का उभार कम हो गया था। रक्त-स्राव के कारण उबटन की केसर से मिला उसका पीलापन कुछ और अधिक बढ़ गया था। उसकी आयु पन्द्रह-सोलह वर्ष की थी, पर उस समय वह तेरह की दिखायी देती थी। यह कली खिलने से पहले ही विंध जायगी और फिर धीरे-धीरे मुरझा जायगी। चेतन के हृदय में टीस-सी उठी। यदि वह इलावलपुर में पण्डित वेणी प्रसाद से वह सब न कहता तो क्या नीला इतनी जल्दी काले कोसों दूर, एक विधुर मिलिट्री एकाउण्टेण्ट की दूसरी पत्नी बनने जाती? अपनी मूर्खता की गुरुता और भी बढ़कर चेतन के सामने आने लगी। उसके लिए वहाँ बैठना दुष्कर हो गया। वह उठा, पर तभी अपने गोल गुलगोथने मुख पर मृदु हास बिखेरती हुई, तश्तरी थामे चन्दा वहाँ आ गयी।

सारा दिन चेतन चोरों की भाँति नीला से बातें करने का अवसर ढूँढ़ता रहा। वह अवश्य उससे रुष्ट थी। वह इतने महीनों के बाद आया था, यदि वह रुष्ट न होती तो अपनी मुखर चंचलता से घर भर को गुँजा देती। विवाद में उसकी चंचलता रुक जाय—चाहे वह उसका अपना ही क्यों न हो—ऐसा सम्भव न था। पर वह तो ऐसा यन्त्र-चालित-सी घूमती थी, जैसे विवाह उसका अपना नहीं, किसी दूसरी सर्वथा अपरिचित लड़की का हो। चेतन से वह कन्नी काटती रही। सहेलियों, बहनों, भावजों या पड़ोसिनों में घिरी रही। दो-एक संक्षिप्त शब्दों या एक-आध वाक्य के अतिरिक्त उन दोनों में कोई भी बात न हो सकी थी।

"नीला, कैसी हो ?"

"अच्छी हूँ !...."

और वह किसी सहेली से कोई बड़ी महत्वपूर्ण बात करने चल दी।

"नीला, तुम तो दुर्बल हो गयी हो।"

"नहीं तो, जीजा जी।...."

और सहसा भावज से कोई आवश्यक मन्त्रणा करना उसे याद आ गया।

"नीला, अब तो बड़ी दूर चली जाओगी।"

"हाँ, जीजा जी !...."

"नीला, तुम मुझसे रुष्ट हो ?"

"नहीं, जीजा जी !...."

और इससे अधिक उत्तर चेतन उससे न पा सका था। उस छोटे से आँगन में एक साथ इतना कुछ हो रहा था। इतनी चहल-पहल थी, इतने लोग आ-जा रहे थे और फिर इस सब कोलाहल में उसकी बड़ी साली अपने देवर के स्वभाव, वेतन, रहन-सहन आदि का बखान निरन्तर इस प्रकार करती रही थी कि नीला से सदा को बिछुड़ने से पहले उससे खुलकर बातें कर लेने, उससे क्षमा माँगकर हल्का हो लेने का अवसर चेतन न पा सका था। झल्लाकर खाने के बाद वह ऊपर चौबारे में निवाड़ के पलंग पर जा लेटा था।

रंगून के उस विधुर मिलिट्री एकाउण्टेण्ट की प्रशंसा न जाने चेतन को क्यों अच्छी न लगी थी। लेटे-लेटे उसके मन में सहसा विचार उठा कि नीला के इस मौन का कारण कदाचित् कहीं इतना अच्छा दूल्हा पाने का गर्व तो नहीं। उसकी साली नीचे आँगन में फिर किसी पड़ोसिन

के सामने अपने देवर की प्रशंसा कर रही थी, अपनी बहन के भाग्य को सराह रही थी और लड़का रोक लेने में उसने जिस त्वरा से काम लिया था, उसकी प्रशंसा वःह और पा रही थी। चेतन के लिए वहाँ लेटे रहना कठिन हो गया। अपने भावी पति के इन गुणों को सुनकर नीला की आकृति पर कैसे भाव आते हैं, यह जानने के लिए वह आतुर हो उठा। झपाके के साथ वह नीचे गया। दालान के अँधेरे कोने में घुटनों पर ठोड़ी टिकाये, अपने दोनों हाथ पैरों पर रखे, नीला चुप बैठी थी। न जाने वह अपनी बहन की कोई बात सुन भी रही थी या नहीं। चेतना-हीन, भावना-हीन-सी वह बैठी थी। बहाने से जब चेतन उसके पास जा बैठा तो नीला ने ठोड़ी के बदले गाल अपने घुटनों पर टिका-कर मुँह दूसरी ओर कर लिया। क्या नीला रो रही है ? चेतन का हृदय धक्-धक् करने लगा। क्या उसे इस विवाह का दुख है ? और चेतन मन-ही-मन सान्त्वना-भरे, पश्चात्ताप-भरे, क्षमा-भरे कुछ शब्द सोचने लगा। पर तभी उसकी सास ने नीला को आवाज़ दी। (बारात आने वाली थी और उससे पहले किसी रस्म का पूरा होना आवश्यक था।) नीला उठकर आँगन में गयी तो प्रकाश में चेतन ने देखा कि नीला के मुख पर रोने जैसा कोई चिन्ह नहीं। वहाँ दर्प की भी कोई भावना नहीं। राग-द्वेष, उल्लास-विषाद्, सुख-दुख का कोई भी भाव वहाँ नहीं। एक विचित्र, कठोर, कठिन उदासीनता ही वहाँ छायी है। चेतन विमूढ़-सा खड़ा रह गया।

तभी बाहर बारात के आने का शोर मचा और उसकी सास ने उसे बारात के स्वागत को जाने के लिए कहा।

बस्ती के एक एडवोकेट से माँगी हुई ब्यूक कार में दूल्हा के रूप में जो व्यक्ति मुँह पर सेहरे लगाये बैठा था, उसे देखकर न केवल चेतन को किसी प्रकार की ईर्ष्या नहीं हुई, बल्कि नीला के भाग्य और भविष्य

पर उसका हृदय करुणा से भर आया ।

क्या यही वे देवर महोदय हैं, जिनके गुण सुबह से गाये जा रहे थे ? बस्ती के एक दरवाज़े से बस्ती के दूसरे दरवाज़े के बाहर धर्मशाला तक (जहाँ बारात के ठहराने का प्रबन्ध था) बारात के साथ जाते-जाते, उसके उतरने और नाश्ते आदि का प्रबन्ध करते-कराते चेतन ने इस मिलिट्री एकाउण्टेण्ट दूल्हे को हर कोण से देख लिया । गंजी होती हुई चाँद पर जवानी की यादगार के रूप में चन्द बाल, आँखों के नीचे बढ़ते हुए गढ़े, उभरे हुए जबड़े, पिचके हुए कल्ले, (जहाँ हँसने से तो दूर, मुस्कराने ही से झुर्रियाँ पड़ जाती थीं) कृत्रिम दाँत और पैंतीस से चालीस को पहुँचती हुई उम्र, यह था वह 'लड़का' जिसे श्रीमती प्रमिला देवी ने अनदेखे ही अपनी छोटी बहन के लिए चुना था ।

बारात को धर्मशाला में उतारकर जब चेतन घर पहुँचा तो उसने रसोई-घर की चौखट में खड़ी अपनी सास को अपनी बड़ी साली से कहते पाया :

"तुमने देखा न था लड़के को, नीला ?"

चेतन की बड़ी साली ने आँखों में आँसू भर लिये, "मुझे क्या पता था चाची कि इतनी उम्र है, वह तो बर्मा ही में था, जब मैं ससुराल गयी, मुझे तो चित्र दिखाया गया था । पिता जी नीला की सगाई जल्दी करने पर ज़ोर दे रहे थे । अढ़ाई सौ रुपया लड़के का वेतन था । मैंने रोक लिया ।"

"बेचारी नीला !" चेतन की सास ने दीर्घ निश्वास छोड़ा, "वह तो बच्ची है अभी !"

अपनी सास के ये शब्द तीर की भाँति चेतन के अन्तर में बैठ गये । उसके लिए वहाँ बैठना, नीला से आँखें मिलाना कठिन हो गया । वह फिर ऊपर चौबारे में चला गया और जाकर अनबिछे पलंग

पर लेट गया।

नीला के पिता ने जल्दी की और उसकी बहन ने अनदेखे, अनजाने (रिश्ते में बहुत दूर के) देवर का केवल चित्र देखकर, उससे अपनी छोटी बहन की सगाई कर दी। पर उनकी इस जल्दी की तह में था क्या? इलावलपुर की वह छोटी-सी घटना, जब नीला ने अपने उस डरपोक जीजा जी के बालों पर हाथ फेरते हुए अपना स्नेह प्रकट किया था! क्या वह इतना बड़ा अपराध था, इतना बड़ा पाप था कि उसको जीवन भर उस बूदम मिलिट्री एकाउण्टेण्ट से बाँध दिया जाय? उसने क्यों नीला के पिता से वह सब कहा? क्यों वह चुप न रहा? उसे लगा जैसे इस प्रकार नीला का गला घोंटने में समस्त दोष उसी का है। आत्म-भर्त्स्ना से उसका गला भर आया, उसके सामने नीला और उसके दूल्हा का चित्र साथ-साथ आया और उसके जी में आयी कि जाकर नीला के सामने फ़र्श पर माथा पटक दे और उस समय तक न उठाये जब तक वह उसे क्षमा न कर दे। तभी उसने सुना कि चौबारे के बाहर दो स्त्रियाँ धीरे-धीरे मिसकौट कर रही हैं :

"लड़की का गला घोट दिया बहन ने, ललतो की माँ! कुछ सुना तुमने, चालीस-पैंतालीस वर्ष का होगा दूल्हा।"

"और नीला तो अभी बच्ची है," ललिता की माँ बोली।

"मैंने तो यह भी सुना, ललतो की माँ कि यह तो उसकी तीसरी शादी है।"

"तीसरी!" ललिता की माँ आश्चर्य प्रकट कर रही थी कि किसी ने नीचे से आवाज़ दी, "ललतो की माँ, छन्ने भरने जा रही हैं हम, आओ जल्दी!"

और ललिता की माँ अपनी साथिन को साथ लिये नीचे चली गयी!

"तीसरी शादी!"—ये दो शब्द हथौड़े की निरन्तर चोटों की भाँति

चेतन के मस्तिष्क को ठकोरने लगे और लेटे रहना उसके लिए कठिन हो गया। वह फिर उठा।

नीचे आँगन में मुहल्ले भर की स्त्रियाँ इकट्ठी हो रही थीं। रणवीर और उसकी पत्नी रस्सी, डोल और मिट्टी के छन्ने (कूज़े-कुल्हड़) लिये हुए उन्हें भरने के लिए चलने को तैयार थीं। चेतन के नीचे उतरते-उतरते स्त्रियाँ रणवीर को आगे-आगे किये, नीला को झुरमुट में लिये, छन्ने भरने की रस्म पूरी करने के लिए चल दीं। चेतन चुपचाप उनके पीछे हो लिया।

डोल के ऊपर भरकर आने पर उसे फिर कुएँ में उलटती, रणवीर को सताती, गाती, हँसी-ठठोली करती, बस्ती के विभिन्न कुओं से छन्ने भरती हुई स्त्रियाँ जब दरवाज़े के बाहर उस धर्मशाला की ओर को मुड़ीं, जिसमें बारात उतरी थी तो चेतन उनके साथ नहीं गया, वह सीधा चलता गया। धर्मशाला के आगे की दो-एक दुकानें और लकड़ी के टाल पीछे रह गये। चेतन चलता गया, यहाँ तक कि वह खेतों के समीप पहुँच गया। तब वह एक खेत की मेड़ पर हो लिया।

तृतीया का चाँद रात के उस पहले पहर ही में क्षितिज की गोद में सो गया था। तारे अपनी टिमटिमाती हुई ज्योत्सना से रात के बढ़ते हुए अन्धकार को भरसक दूर रखने का प्रयास कर रहे थे। खेतों की मेड़ों पर जहाँ-तहाँ उगे हुए शीशम के घने पेड़ अपनी सत्ता की सारी भयावहता के साथ प्रहरियों-से खड़े थे। चारों ओर निस्तब्धता छायी हुई थी। केवल दायीं ओर पेड़ों के झुरमुट में रहँट निरन्तर रिरिया रहा था और दूर धर्मशाला में छन्ने भरती हुई स्त्रियाँ गीत गा रही थीं। चेतन को लगा जैसे रहँट के रिरियाते संगीत में और उन स्त्रियों के गाने में कोई अंतर नहीं। वे भी जैसे उस रहँट ही की भाँति रिरिया रही थीं। उनकी रूह का कोई तार जैसे उनके संगीत में न था, केवल प्रथा की पूर्ति के लिए उनके ओठ हिल रहे थे।

चेतन रहँट के पास ही पड़े हुए एक पुराने शीशम के तने पर बैठ गया। कोई कुत्ता ज़ोर-ज़ोर से भूँक उठा, एक चमगादड़ पंख फटफटाता हुआ ऊपर से गुज़र गया और फिर सन्नाटा छा गया। दूर धर्मशाला में स्त्रियाँ छन्ने भर और इस बहाने नीला को दूल्हा के दर्शन कराके चली गयीं। किन्तु चेतन वहीं बैठा रहा और रहँट उसी तरह रीं-रीं करता रहा।

४७

"जीजा जी, जीजा जी ?"

करवट बदलकर चेतन ने आँखें खोलीं। सामने के दरवाजे से नवोदित सूर्य की धूप सीधी उसकी आँखों में पड़ रही थी। वह जान न सका कि गहरी नींद से उसे यों झकझोरने वाला कौन है ? किन्तु दूसरे क्षण सूर्य की किरणों को सीधे चेतन के मुख पर पड़ने से रोकता हुआ उसका बड़ा साला रणवीर उसके सामने आ गया।

"जीजा जी, हुनर साहब आये हैं।'

"हुनर साहब ?" चेतन ने व्यंग्य भरी दृष्टि रणवीर के उल्लसित मुख पर डाली और करवट बदलते हुए कहा, "तुम चलो रणवीर, मैं कुछ देर बाद आता हूँ।"

रणवीर आशा करता था कि हुनर साहब जैसे प्रसिद्ध कवि का नाम सुनते ही उसके जीजा जी उछलकर उठेंगे और उसके साथ नीचे को भाग चलेंगे, किन्तु चेतन की अन्यमनस्कता और उसकी दृष्टि के व्यंग्य को देखकर उसे अधिक अनुरोध करने का साहस न हुआ। "वे सुबह से आये हुए हैं। मैं पहले भी दो बार आपको बुलाने आया था, पर आप सोये हुए थे। हमारे सामने के मकान की बैठक में ठहरे हैं।

आप वहीं आइयेगा।" एक ही साँस में यह सब जैसे चेतन की गर्दन के पृष्ठ-भाग को सुनाकर रणवीर चलने को हुआ। किन्तु फिर कुछ रुककर उसने इतना और कहा, "हुनर साहब एक बड़ा सुन्दर सेहरा लिख रहे हैं।"

"सेहरा!"—चेतन मन-ही-मन हँसा। न जाने इस सेहरे की रचना में किस-किस कवि की कृति पर डाका पड़ेगा, न जाने वह (अभी लिखा जाने वाला) सेहरा पहले कितने दूल्हों और उनके सगे-सम्बंधियों को प्रसन्न कर चुका होगा और उसके बल पर 'हुनर' साहब ने कितनी जेबों को हल्का करने का 'हुनर' दिखाया होगा? रणवीर की आँखों में जो उल्लास और उसकी वाणी में जो उत्साह था, उसे देखकर चेतन को अपना उस समय का उल्लास और उत्साह स्मरण हो आया, जब पहली बार हुनर साहब से उसकी भेंट हुई थी। मन-ही-मन रणवीर की मूर्खता पर दया-भाव से हँसकर उसने आँखें मूँद लीं।

चेतन सारी रात जागता रहा। बारात के आने से लेकर विवाह-संस्कार के अन्तिम मन्त्र तक खोया-खोया-सा प्रत्येक रस्म को देखता रहा था। नीला के इस अनमिल विवाह पर उसे अतीव दुख था और यद्यपि वह अपने मन को कई तरह से समझा चुका था, किन्तु फिर भी हृदय के किसी कोने में वह अपने-आपको उसका दोषी समझता था। नीला जीते जी, उसके देखते-देखते, क़ब्र में डाली जा रही थी और वह विवश था। और फिर ये बाजे, ये रस्में, ये गीत! जिस चीज़ ने उसकी मानसिक पीड़ा और भी अधिक बढ़ा दी थी, यही गीत थे। उसने ज्यों ही दूल्हा को देखा था उसके कानों में 'सोहाग' के वे बोल गूँज उठे थे जो उसने घर में प्रवेश करते ही सुने थे—

चन्दन दे ओड़ले क्यों खड़ी नी बेटी!
चन्दन दे ओड़ले!

मैं ते खड़ी आं बाबल जी दे कोल, बाबल वर लोड़िए।
नी बेटी !
केहो जेहा वर लोड़िए ?
बाबल, ज्यों तारियाँ विचों चन्न विचों कान्ह,
कन्हैया वर लोड़िए !*

साँझ को देर तक रहँट के पास रहने के बाद जब वह लौटा था तो घोड़ी की रस्म कभी की समाप्त हो चुकी थी और लगनों की तैयारियाँ हो रही थीं। दूल्हा वेदी के नीचे आ बैठा था, पण्डित जी हवन की आग सुलगा रहे थे और आँगन में वर और वधू-पक्ष के लोग इकट्ठे हो चुके थे। चेतन चुपचाप जाकर आँगन की दीवार से पीठ लगाकर बैठ गया था।

नीला का विवाह आर्य-समाजी रीति के बदले सनातनी ढंग से हो रहा था। पण्डित वेणी प्रसाद स्वयं आर्य-समाजी विचारों के थे, किन्तु मध्य-वर्गीय घरानों में प्रायः लड़की के पिता का धर्म, वर अथवा उसके पिता के विचारों के अनुसार बदलतारहता है। वे समस्त रस्में जिनका अभाव चेतन को अपने विवाह पर खटका था, अपने समस्त गुण-दोषों के साथ यहाँ विद्यमान थीं। भाँवरें भी सनातनी ढंग से हो रही थीं। जब गठरी-सी बनी नीला को दो बालिश्त का घूँघट काढ़े वेदी के नीचे खारे पर बैठा दिया गया तो सामने बरामदे में बैठी हुई स्त्रियों ने गीत छेड़ दिया :

---

*ऐ बेटी तू चन्दन के पेड़ की ओट में क्यों खड़ी है ?
मैं तो बाबल (पिता) के हुजूर में खड़ी हूँ क्योंकि मुझे वर चाहिए !
ऐ बेटी तुझे कैसा वर चाहिए ?
ऐ पिता जैसे तारों में चाँद और चाँद में कान्ह, वैसे ही मुझे भी कन्हैया-सा वर चाहिए !

ओह दिन याद कर कान्हा........

कान्हा ! और चेतन के कानों में फिर सुहाग के वे बोल गूँज उठे। 'कैसा कान्ह वर ढूँढ़ा है नीला के लिए !' उसने मन-ही-मन कहा और एक व्यंग्यमयी मुस्कान उसके ओठों पर फैल गयी। कौन लड़की है जो चाँद-सा वर नहीं चाहती ? किन्तु चाँद-सा वर क्या सभी को सुलभ है ? उनकी बात तो दूर रही जो स्वयं कुरूपा होने पर भी चाँद-सा वर चाहती हैं, पर उन युवतियों में से भी कितनों को ऐसा वर मिलता है जो हर प्रकार से ऐसे वर के योग्य हैं ? प्रतिदिन कान्त-कामिनी तरुणियाँ, अनमिल युवकों, अधेड़ों अथवा विधुरों के संग बाँध दी जाती हैं और ये अपढ़ स्त्रियाँ अपने गीतों में निरन्तर उन्हें कान्ह और कन्हैया बनाया करती हैं। क्या इनके आँखें नहीं ? क्या ये चुप नहीं रह सकतीं ? यदि लड़की का गला घोंटना ही अभीष्ट है तो क्या यह 'सत्कार्य' मौन रूप से नहीं हो सकता ? क्या इन बाजों-गाजों और बेचारी लड़की के जले हुए जी को और भी जलाने वाले इन गीतों के बिना काम नहीं चल सकता ? चेतन ने देखा उन गाने वालियों में उसकी सास भी थी, जिसने साँझ ही को भरे हुए गले से कहा था—'और नीला तो अभी बच्ची है,' और वह पड़ोसिन भी थी जो बोली थी, 'लड़की का गला घोंट दिया बहन ने ललतो की माँ !' यन्त्र-चालित-सी वे इन घिसे-पिटे गीतों को भावना-रहित, निर्लिप्त भाव से गा रही थीं। उनके लिए जैसे इन गीतों को गाना विवाह की इस रस्म की पूर्ति का एक अंग मात्र था।

और चेतन को यह सब सोचते-सोचते उन समस्त रस्मों से घृणा हो उठी—उन अन्धी-बहरी रस्मों से—जो भावनाहीन चक्की की भाँति मानवों के हृदय और जीवन पीसे जा रही थीं। क्या कभी ऐसा समाज न बनेगा जो इन रस्मों से स्वतन्त्र हो या जहाँ ये रस्में देखें, सुनें, अनुभव करें और समय के अनुसार (बलिदान चाहे बिना) अपना, चोला बदलती रहें।

अपने मनोभावों का, उस पीड़ा का जो उसके अन्तर में प्रति पल तीव्रतर हो रही थी, विश्लेषण करते-करते चेतन नीला की मानसिक स्थिति के सम्बन्ध में सोचने लगा। वह क्या सोचती होगी ? वे गाने और रस्में उसके मन पर क्या प्रभाव डाल रहे होंगे। उसने आँख उठाकर नीला की ओर देखा। गठरी-सी बनी वह चुपचाप बैठी विवाह संस्कार में योग दे रही थी। चेतन को लगा, जैसे वह मिट्टी का एक बड़ा-सा लौंदा बन गयी है और उसके अन्तर की बिजली सदा के लिए बुझकर रह गयी है।

आँगन की दीवार से पीठ लगाये वह इसी प्रकार खौलता रहा था और विवाह की जंजीर नीला के गिर्द कठिन से कठिनतर होती गयी थी। वह बैठा रहा था और पण्डित ने अन्तिम मन्त्र पढ़कर वर के बड़े भाई को बधाई दी थी और स्त्रियों ने अलसाये हुए कण्ठों से नया गाना छेड़ दिया था।

रणवीर के चले जाने के बाद चेतन ने फिर सोने का प्रयास किया। पर उसकी मुँदी हुई आँखों के समक्ष रात की घटना अपने छोटे-से-छोटे ब्योरे के साथ घूमने लगी और उसके विशृङ्खल विचार और भी बिखर उठे। उसकी नींद एकदम उड़ गयी। उसकी आँखें भी मुँदी न रह सकीं। उसने करवट बदल ली। दिन बहुत बढ़ आया था। प्रकाश से कमरा जगमगा रहा था। नीचे खूब चहल-पहल थी। पर वह उठा नहीं। वहीं लेटा चुपचाप शून्य में देखता रहा।

यदि वह नीला के पिता को सब बात न बताता, उसकी विचार-धारा ने एक दूसरा मोड़ लिया—तो करता भी क्या ? क्या वह चन्दा को छोड़ सकता था ? क्या नीला से विवाह कर सकता था ? और वह मन-ही-मन हँसा। उस आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति में यह कब सम्भव था। फिर यदि नीला का विवाह किसी सुन्दर, स्वस्थ, तरुण

से होता तो क्या वह इतना दुख मानता। तब उसका यही कृत्य जो पाप बनकर रह गया था, पुण्य हो जाता। बारात में उसका परिचय एक अति सुन्दर-स्वस्थ लड़के के साथ हुआ था। उसका नाम था त्रिलोक और वह नीला के जेठ का लड़का था। चेतन ने सोचा, यदि नीला का विवाह चचा से न होकर भतीजे से होता तो कितना अच्छा होता! पर त्रिलोक शायद किसी सम्पन्न किन्तु मूर्ख, कुरूप लड़की से ब्याहा जायगा और चचा उस लड़की का पति बनेगा जो कदाचित् भतीजे के लिए उपयुक्त थी। और चेतन को लगा कि उसके, नीला के, त्रिलोक के, इस जर्जर मध्य-वर्ग के समस्त स्त्री-पुरुषों के गिर्द रूढ़ि-ग्रस्त समाज की लौह-दीवारें खड़ी हैं। क्या ये दीवारें कभी न गिरेंगी? क्या इनकी चारदीवारी में घुटकर मरने वाले स्वतन्त्र होकर कभी सुख की साँस न ले सकेंगे?

बाहर गली में बाजे बजने लगे। बारात कदाचित् खाना खाने के लिए आ रही थी। चेतन उठा। अँगुलियों में अँगुलियाँ डालकर उसने एक लम्बी अँगड़ाई ली और अपने उन्मन विचारों को सिर के एक झटके से दूर करने का प्रयास करते हुए वह बाहर निकल गया।

—०—

४८

नहा-धोकर जब वह गली के चौक में गया तो बारात खाना खा चुकी थी और खादी का कुर्ता-धोती पहने, बड़ी श्रद्धा से हाथ में काग़ज़ लिये हुए हुनर साहब खड़े थे। रणवीर ने बड़े गर्व-स्फीत शब्दों में उनकी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया था और वे सेहरा पढ़ने वाले थे। चेतन ने सोचा था कि सेहरा पढ़ गया होगा। उसके जी में आया कि मुड़ जाय, किन्तु इस प्रकार आकर चला जाना किसी को बुरा न लगे, इस

विचार से वह एक ओर जाकर चुपचाप खड़ा हो गया।

सेहरा पढ़ने से पहले हुनर साहब ने एक छोटा-सा भाषण देना आवश्यक समझा। बताया कि उनका सम्बन्ध वर तथा वधू दोनों पक्षों से है। जन्म उन्होंने जालन्धर में लिया था, किन्तु युवावस्था उनकी अमृतसर में बीती है। इसलिए यद्यपि वे वधू-पक्ष की ओर से आये हैं तो भी उन्हें अधिकार होता है कि वर का सेहरा पढ़ें। और इस तरह वर के साथ अपना नाता स्थापित करके उन्होंने सेहरा पढ़ना आरम्भ किया।

वही पुरानी तरज़ और वही पुराने विचार—सेहरे और दूल्हे की प्रशंसा में चाँद-तारों को उपमाएँ। हर शेर के बाद चेतन सोचता—क्या इस कवि को दिखायी नहीं देता कि दूल्हे के मुख से एक भी उपमा मेल नहीं खाती। रात स्त्रियों के गीतों को सुनकर उसके हृदय में क्रोध का जो बवण्डर उठा था, वह इस सेहरे को सुनकर फिर हरहरा उठा। तभी हुनर साहब ने उपस्थित सज्जनों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हुए शेर पढ़ा :

ये तार हैं सेहरे के गर सीमीं शुआएँ तो
अपने में है आरिज़ भी दूल्हे का महे-कामिल*

चेतन और न सुन सका। अधेड़ उम्र के इस गंजे विधुर को पूर्णिमा का चाँद कहना! चेतन को लगा कि न केवल सेहरा पढ़ने वाला ही अन्धा है, बल्कि सुनने वाले भी आँखों से वंचित हैं। उसका ध्यान सहसा रणवीर की ओर गया। विस्फारित नेत्र, सिर से पैर तक मानो कान बना वह खड़ा था। ऐसा लगता था जैसे हुनर साहब के मुखारविन्द से निकला हुआ प्रत्येक शब्द अमृत समान वह पी रहा है। चेतन ने चाहा जाकर दो थप्पड़ उस बूदम के मुँह पर जमा दे। सेहरा पढ़ने

***सेहरे के तार यदि चाँद की किरणें हैं तो वर का मुख भी पूर्णमासी का चाँद है,**

के लिए हुनर साहब को बुला लाया है! यदि कहीं उसकी अपनी बहन इस जैसे दूल्हे से ब्याही जाती, चेतन ने सोचा तो वह सेहरे के बदले मरसिया † पढ़ता, फिर चाहे उसके पिता मार-मारकर उसकी चमड़ी ही क्यों न उधेड़ देते।

पर उसनें रणवीर से कुछ भी नहीं कहा, केवल मन-ही-मन उसे गधे की उपाधि से विभूषित करके और दाँतों में उसे 'गदहा' पुकारकर वह चुपचाप वहाँ से खिसक आया।

नीला गठरी-सी बनी दालान के एक कोने में बैठी थी। सहानुभूति का एक अथाह सागर उसके लिए चेतन के हृदय में ठाठें मार उठा। वह उसके पास पड़ी हुई लोहे की कुर्सी पर जा बैठा। किन्तु नीला ने उस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। वह बैठी रही और पाँव के अँगूठे से धरती पर बे-नाम से चित्र बनाती रही।

चेतन नीला से कुछ कहना चाहता था। पर क्या कहे, उसे सूझ न पड़ा। वह चुपचाप बैठा रहा और नीला ही की भाँति पाँव के अँगूठे से धरती पर बे-नाम से चित्र बनाने लगा।

सहसा बाहर ज़ोर-ज़ोर से बाजे बज उठे। शायद हुनर साहब ने सेहरा खत्म कर दिया था और बारात वापस जाने को तैयार थी। तभी बाहर आँगन में चेतन को अपनी बड़ी साली के ये शब्द सुनायी दिये, "चले आओ इधर त्रिलोक, यह रही तुम्हारी चाची।"

दूसरे क्षण हँसत-लजाता त्रिलोक दालान की चौखट में आ खड़ा हुआ। चेतन उसके लिए कुर्सी छोड़कर अलग हो गया।

"नीला यह है त्रिलोक, तेरे जेठ का लड़का।"

चेतन की दृष्टि उस नवयुवक पर गयी। पंच-शर-हस्त मदन-सा सुन्दर! फिर उसने नीला की ओर देखा—रति क्या इससे अधिक

† मरसिया = किसी के देहान्त पर पढ़ी जाने वाली कविता।

रूपवती होगी ?

तभी त्रिलोक ने कहा, "चाची जी नमस्ते !"

नीला ने आँख उठाकर देखा। चेतन को लगा जैसे क्षण भर के लिए नीला की दृष्टि त्रिलोक के मुख पर रुकी, उसका पीला-सा मुख लाल हो उठा और उस अँधेरे में उसकी उदास आँखों में एक अज्ञात-सी चमक कौंध गयी।

४९

साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे
बाबला असाँ उड़ जाना।
साडी लम्बी उडारी वे
ख़बरे किस देस जाना ?*

आधी रात की निस्तब्धता में यह करुण गीत, जैसे किसी दूरस्थ प्रदेश से आकर निरन्तर चेतन के कानों में दर्द उँडेल रहा था। उसका गला भरा आ रहा था और आँखें आर्द्र हो चली थीं।

नीला की शादी हो गयी थी। चेतन अपनी पत्नी को वापस जालन्धर ले आया था। यद्यपि चन्दा इतने दिनों के पश्चात् उससे मिली थी और यद्यपि रात के आकाश पर बादल रिमझिमा रहे थे और ऋतु अत्यन्त सलोनी और सुहानी थी, किन्तु चेतन का मन जैसे एकदम निस्पन्द-सा हो गया था।

*** हमारा तो चिड़ियों का झुण्ड है, ऐ पिता, हम चिड़ियों सरीखी भिन्न-भिन्न दिशाओं में उड़ जायँगी।**

ऐ पिता, हमारी उड़ान बड़ी लम्बी है, न जाने किस-किस देश जायँगी ?

चन्दा ने एक-दो बार बात चलाने का भी प्रयास किया, पर चेतन के संक्षिप्त उत्तरों ने उसे हतोत्साह कर दिया था। वह कई दिनों की थकी हुई थी, इसलिए चेतन की उदासीनता ने उसके शरीर में सोयी हुई नींद उसकी पलकों में भर दी थी और वह चेतन से शिमले की बातें पूछते-पूछते सो गयी थी।

उसका इस तरह सो जाना चेतन को बुरा लगा था, परन्तु उसका ध्यान उस समय अपने अथवा अपनी पत्नी के मानापमान की ओर न था। उसके सामने तो नीला की बिदाई का दृश्य बार-बार आ रहा था और उसके कान निरन्तर सुन रहे थे—वही मधुर-करुण गीत :

साडी लम्बी उडारी वे खबरे किस देस जाना !

लम्बी उड़ान ! कितनी लम्बी !! कहाँ जालन्धर और कहाँ रंगून ? न जाने सदियों पहले अपने मायके और सहेलियों से दूर, अपनी ससुराल में बैठी किसी दुःखिनी की भावनाएँ उस करुण गीत में फूट पड़ी थीं। सदियाँ बीत गयीं, पर उस दुःखिनी की परवशता उसी प्रकार बनी हुई है।

चेतन सोचता था, इस गीत को सुनकर नीला के हृदय पर क्या बीत रही होगी ? कितना पूरा उतरता था उसकी स्थिति पर यह गीत

साडी लम्बी उडारी वे.......

बाहर वर्षा थम गयी थी। चेतन अपनी पत्नी के साथ बरसाती में लेटा था। वह उठकर छत पर चला आया। बादल छटकर नीलाम्बर पर बहे जा रहे थे। हल्की-हल्की बयार चल रही थी। दूर सामने के मकान की ओट में छिपा हुआ पंचमी का चाँद अपनी मन्द ज्योत्सना से काली छत को बादलों की बराबरी करने से रोक रहा था। चेतन के देखते-देखते रजत-वक्र सींग की नोंक-सी छत के ऊपर बादल से बाहर निकलने लगी। आकाश में कई जगह फटे हुए मेघों में नीलिमा चमक उठी, नीचे के अन्धकार में खोये-खोये से मकानों

की रेखाएँ उभर आयीं। धीरे-धीरे वह वक्र-सींग बाहर निकल आया, कुछ क्षण तक बहते हुए बादलों पर तैरता रहा, फिर शायद कोई भयानक काला बादल चढ़ दौड़ा और वह जैसे एक ओर से निकला था, वैसे ही दूसरी ओर से बढ़ती हुई उस कालिमा में डूब गया। मकान की छत फिर बादलों की बराबरी करने लगी। मकानों की रेखाएँ फिर तिमिर के उस बढ़ते सागर में डूब गयीं।

चेतन कुछ क्षण छतपर चक्कर लगाता रहा, फिर सीमेंट की ठण्डी गीली रौस (शहनशीन) पर बैठ गया। बायीं ओर मकानों की छतों के ऊपर दिखायी देता हुआ 'बरने पीर' का नीम एक बड़ा-सा धब्बा बनकर रह गया था। चेतन निर्निमेष उस धब्बे की ओर देखता रहा, फिर उसी धब्बे पर नीला के बिवाह की समस्त घटनाएँ अपने छोटे-से-छोटे ब्योरे के साथ चित्रित हो उठीं।

दिन भर चेतन उखड़ा-उखड़ा-सा घूमता रहा था। अपने सहपाठी मित्रों को उसने उनके घरों से जा, खोज निकाला था और उनकी संगति में किसी-न-किसी प्रकार समय का गला घोंटकर, वह सन्ध्या को अपने चौबारे में जा लेटा था। जब बारात खाना खाने आयी थी तो वह अस्वस्थता का बहाना करके वहीं लेटा रहा था।

किन्तु जब बारात जाने लगी और बाजे बजने लगे तो उसके लिए वहाँ लेटे रहना कठिन हो गया था। उठकर वह आँगन की मुँडेर पर जा बैठा और जब नीचे आँगन में उसने त्रिलोक की आवाज़ सुनी तो उसका दिल धक-धक करने लगा।

नीचे चची और जठीए (जेठ के लड़के) में क्या बातें हुईं, यह चेतन न जान सका, क्रिन्तु जब त्रिलोक चला गया तो वह सब जानने के लिए आतुर हो उठा। अपनी छोटी साली शीला को अपने 'जीजा जी' के लिए पानी का गिलास लाने का आदेश देकर वह फिर अन्दर चारपाई पर जा लेटा था। जब शीला गिलास ले आयी तो उसने

एक घूँट भरकर गिलास को सिरहाने के ताक में रख दिया और अपनी उस नन्हीं-मुन्नी साली को गोद में लेकर पूछा, ''नीचे कौन आया था शीलो ?

और भोली-भाली शीला ने अपने जीजा जी की प्यार भरी गोद में बैठे-बैठे सब कुछ बता दिया था कि और कौन आता, त्रिलोक आया था। नीला बहन से हँसी-मज़ाक करता रहा। बेचारी नीला लजा-लजाकर रह गयी, पर उसे लज्जा न आयी।

और अपने जीजा जी के गले में बाहें डालकर उसने कहा, "आप तो बड़े 'बीबे'[१] हैं जीजा जी, पर त्रिलोक बड़ा 'गोला'[२] है ?"

"क्या मज़ाक किये त्रिलोक ने तुम्हारी बहन से शीलो ?"

पर शीलो बेचारी इस सम्बन्ध में अपने जीजा जी को कुछ न बता सकी। चेतन ने उसे गोद से उतार दिया और चुपचाप जाकर फिर बिस्तर पर लेट गया।

रात को चन्दा उसे स्वयं खाना खिलाने आयी थी और उसने चेतन को बताया कि सुबह ही नीला विदा हो जायगी। वर को शीघ्र ही अपनी नौकरी पर जाना है, इसलिए तीन से अधिक 'रोटियाँ' वे लोग नहीं चाहते, सुबह नाश्ते के बाद ही वे नीला को विदा कराके ले जायेंगे। चन्दा ने उससे यह भी प्रार्थना की थी कि यदि उसका जी वैसा ख़राब न हो तो नीला की विदाई के समय चेतन को अवश्य नीचे जाना चाहिए। गौना साथ ही दिया जा रहा था, इसलिए चन्दा ने उसे बताया था कि पहले नीला सुबह ही विदा होकर बारात के अड्डे (धर्मशाला में) जायगी। फिर जब बारात नाश्ते को आयगी तो साथ ही उसे भी लेती आयगी और दस बजते-बजते दूसरी और अन्तिम विदाई हो जायगी। चन्दा ने पाँच रुपये भी उसके सिरहाने रख दिये थे कि विदाई के समय वह नीला के हाथ में रख दे।

---

१ बीबा = अच्छा, २ गोला = बुरा, ३ दावतें

चेतन ने कुछ उत्तर न दिया था। रुपये उसने तकिये के नीचे रख लिये और चुपचाप लेटा रहा था। तब चन्दा ने पूछा, "क्या आपका जी बहुत खराब है?"

"नहीं-नहीं, कोई ऐसी बात नहीं, मैं दे दूँगा शगुन के रुपये!" और चन्दा आश्वस्त होकर नीचे चली गयी थी।

पर चेतन का जी वास्तव में ख़राब था! तन से न सही, मन से वह अस्वस्थ था। वहीं लेटे-लेटे एक बार फिर उसके सामने इलावलपुर की घटना घूम गयी। किस तरह उसकी बीमारी की ख़बर सुनते ही नीला उसकी सेवा-शुश्रूषा में आ जुटी थी, उन चार-छै दिनों में वह कितना उसके समीप आ गयी थी। किन्तु अब?....वह कितना भी बीमार क्यों न हो जाय, वह न आयगी। चेतन का जी चाहा, वह सचमुच बीमार पड़ जाय, मरणासन्न हो जाय। वह मर रहा है, यह सुनकर तो वह एक बार अवश्य आयगी। मरकर वह अपने उस पाप का प्रायश्चित कर देगा जो उसने अनजाने ही नीला का जीवन नष्ट करने में किया था। तब उसकी विकृत-अस्वस्थ कल्पना के सामने उसकी अपनी मृत्यु का दृश्य भी घूम गया—वह मर रहा है। चन्दा उसके सिर को गोद में लिये बैठी है। उसकी सास, उसकी माँ, उसके भाई सब आँखों में आसू भरे उसके आस-पास बैठे हैं। बाहर बाजे बज रहे हैं। नीला को जाना है। वह रुक नहीं सकती। उसके मिलिट्री-एका-उण्टेण्ट पति सैनिक-नियन्त्रण से बँधे हैं। उन्हें रंगून पहुँचना है। उनकी नव-परिणीता पत्नी के 'जीजा जी' की बीमारी या मौत, कोई भी घटना उन्हें नहीं रोक सकती। जाने से पहले नीला क्षण भर के लिए आती है। अपने जीजा को मरणासन्न देखकर दो आँसू आपसे-आप उसके गालों पर ढुलक आते हैं। फिर वह चुपचाप उसके चरणों को छूकर, मुँह फेरकर भाग जाती है........

और चेतन की रात करवटें बदलते बीत गयी थी। दूर किसी मुर्ग ने प्रातः की बाँग दी थी जब उसका मस्तिष्क थककर सो गया था।

सुबह जब वह जगा था तो बारात नाश्ता खाकर जा चुकी थी। नीला की पहली बिदाई हो चुकी थी और वह दूसरी और अन्तिम बार जाने को तैयार थी।

"जीजा जी उठिए, जीजा जी उठिए!" शीला के निरन्तर झकझोरने से वह उठा था और यद्यपि उसने 'चलो मैं आता हूँ शीलो,' कहकर फिर लेटने का प्रयास किया था, किन्तु शीला ने उसे सोने न दिया था, "चन्दा बहन ने आपको बुलाया है," उसने उसे फिर झकझोरा था, "नीला जा रही है।"

वह उठकर बैठ गया था और शीला नीचे भाग गयी थी। पर चेतन नीचे न गया था। मन में उसने निश्चय कर लिया था कि जब नीला लम्बा-सा घूँघट निकाले अपने बड़े भाई या चाचा की गोद में बैठ, अपने वर के पीछे-पीछे ताँगे में जाकर बैठ जायगी तो वह बिना उससे आँखें मिलाये उसके हाथ में पाँच रुपये की भेंट दे आयगा।

न जाने क्यों, न जाने कहाँ से, एक अज्ञात संकोच उसके मन में आकर बैठ गया था। वह सोचता भी था कि वह किससे रूठा हुआ है? नीला से? उससे रूठने का उसे क्या अधिकार है? इसका उत्तर उसे न मिला था। किन्तु उत्तर न पाकर उसके मन का संकोच कम न हुआ था और न वहाँ से वह हिला ही था।

अभी शीला को गये चन्द ही मिनट हुए होंगे कि चन्दा भागी-भागी ऊपर आयी...."चलिए भी! आप अभी तक यहीं बैठे हैं।"

"तुम घबराओ नहीं," चेतन ने अपनी पत्नी को आश्वासन देते हुए कहा था, "मैं जाकर नीला को शगुन दे आऊँगा। अभी मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं।"

"आपका जी ठीक नहीं तो आराम कीजिए," चन्दा घबरा गयी थी, "क्या करूँ, इतना काम है नीचे कि आपके पास बैठ नहीं पायी। नीला की विदायगी हो जाय तो आपके सिर में तेल मल दूँगी। लाइए रुपये दे दीजिए, आपकी ओर से मैं उसको शगुन दे दूँगी।"

किन्तु चेतन को यह स्वीकार न था। चन्दा को तसल्ली देते हुए बोला, "नहीं, नहीं, कोई ऐसी बात नहीं, तुम चलो मैं आता हूँ।"

और चन्दा के जाने के बाद वह इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि कब बाजे बजने लगें, कब नीचे स्त्रियाँ नीला को लेकर गाती हुई चलें तो वह भी नीचे उतरकर उनके पीछे हो ले।

तभी बाजे बजने लगे और स्त्रियों ने गीले, भारी स्वर में गाना आरम्भ किया।

साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे
बाबल असाँ उड़ जाना
साडी लम्बी उडारी वे
खबरे किस देश जाना

चेतन के जी को कुछ होने-सा लगा था। उसे अपने-आप पर क्रोध हो आया था। क्यों उसने चन्दा को रुपये न दे दिये। उसका जी कहीं भी जाने को न हो रहा था। वह चाहता था, वहीं लेटा रहे और इतने दिन से मन में एकत्र होने वाली पीड़ा को आँखों के रास्ते बहा दे।

क्षण भर को वह फिर लेट गया। जब बाजे दूर चले जायँगे तब वह उठेगा, उसने मन-ही-मन सोचा और करवट बदली। पर तभी सीढ़ियों में उसे गहनों-कपड़ों में लदी नीला छम-छम करती हुई आती दिखायी दी।

चेतन उठकर बैठ गया। उसका हृदय धक-धक करने लगा।

नीला चौखट में आकर खड़ी हो गयी। दोनों हाथ बाँधकर मस्तक

तक ले जाते हुए उसने लगभग आर्द्र स्वर में कहा, "जीजा जी, नमस्ते, मेरी भूल-चूक क्षमा कर दीजिएगा।"

वह तेज़ी से मुड़ने को थी कि चेतन ने उठकर उसका हाथ थाम लिया। उसके क्रोध, ईर्षा, दर्प, संकोच, मान, अपमान की चट्टानें जैसे नीला के एक ही वाक्य से पानी-पानी होकर बह गयीं।

"नीला, मुझे क्षमा कर दो, मैंने सचमुच तुम्हारा बड़ा अपराध किया है! और वह उसके चरणों में झुक गया।

"जीजा जी, आप क्या करते हैं!" नीला ने उसे कन्धों से थामा, और फिर पीठ मोड़कर वह सिसकी को दबाती हुई नीचे को भाग गयी।

बादलों की नयी तहें आकाश पर छा गयी थीं, पंचमी के चाँद की ज्योत्सना गहरे अन्धकार में जा छिपी थी, मकान, उनकी छतें, बरसातियाँ और बरने पीर का नीम—सब अन्धकार का अंग बन गये थे। एक-दो बूँदें चेतन की नाक पर गिरीं। उसके विचारों का क्रम टूट गया। गीली रौंस पर बैठे-बैठे उसकी कमर दुखने लगी। वह उठा, अन्दर बरसाती में चला गया और चुपचाप बिस्तर पर जा लेटा।

बाहर ज़ोर ज़ोर से वर्षा होने लगी और आँगन के जँगले पर पड़ी हुई टीन की चादरें वर्षा के निरन्तर थपेड़ों से क्रन्दन कर उठीं।